भारतीय पुनर्जागरण
और
मदनमोहन मालवीय

लेखक
डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी
समाजविज्ञान विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी



विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

BHARTIYA PUNARJAGARAN
aur
MADANMOHAN MALVIYA

(Indian Renaissance and Madan Mohan Malviya)

By

DR. KRISHNA DUTTA DWIVEDI

1981

प्रथम संस्करण : १९८१
मूल्य : चालीस रुपये

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी

मुद्रक
स्पेशल प्रिंटर्स
..लका, वाराणसी-२२१००५

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध 'पुनर्जागरण और परिवर्तन के सन्दर्भ में मदनमोहन मालवीय के सामाजिक विचारों का अध्ययन' शीर्षक इस शोध प्रबन्ध का पुस्तकीय नामकरण 'भारतीय पुनर्जागरण और मदन-मोहन मालवीय' किया गया है। इस अध्ययन में महामना मालवीय को शोध विषय की इकाई के रूप में लेकर समाज वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। महामना मालवीय का सारा जीवन समाज की सकारात्मक क्रियाओं मे ही लगा रहा और वह सामाजिक परिवर्तन और ध्रुवीकरण के प्रतीक माने जा सकते हैं, जिसका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक अनमोल उदाहरण है, साथ ही साथ वह भारतीय परम्पराओं में पूर्ण विश्वास रखते थे और मौलिक मूल्य उनके जीवन में पूर्णत. समावेश पा चुके थे।

सामाजिक विचारक के रूप में महामना मालवीय ने कोई ग्रन्थ लेखन-कार्य पाश्चात्य समाज वैज्ञानिको की परम्परा मे नही किया है; किन्तु उन्होने अपना व्यापक कार्य समाजरूपी प्रयोगशाला मे किया था। अतः उनकी वैचारिकी उनके कार्यों में अभिव्यक्त होती है। काशी हिन्दू विद्यालय जैसे विशाल आधुनिक शिक्षा केन्द्र की स्थापना करने वाले महामना मदनमोहन मालवीय का कार्यक्षेत्र भारतीय स्वाधीनता संग्राम मे भी अग्रणी रहा है। वे कई बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष रहे है। उन्होने देश का कई पीढियों तक नेतृत्व किया था। उनका नाम देश के उच्चतम नेता तिलक, गाधी आदि की श्रेणी में लिया जाता है। ऐसे महान् व्यक्ति का अध्ययन समाज तथा राष्ट्र के लिए नि सन्देह उपयोगी माना जायगा। समाज विज्ञान के क्षेत्र में यह अध्ययन अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस अध्ययन में व्यक्ति और समाज का व्यष्टि और समष्टि के रूप में एकीकृत करके, अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन समाजविज्ञान के क्षेत्र में एक नवीन अध्ययन और परम्परा का आरम्भ है। इस अध्ययन में भारतीय समाज का सजीव स्वरूप चित्रित किया गया है। महामना मालवीय समाज में

परिवर्तन और नवीनता की स्थापना हेतु अपनी वैचारिकी का सजीव स्वरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना द्वारा क्रियान्वित करने की दिशा में क्रियाशील दिखायी पड़ते हैं, जहाँ धर्म, दर्शन, कला के साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी की शिक्षा का राष्ट्रीय स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। वह बेकारी समस्या के समाधान हेतु अपने विश्वविद्यालय में उपभोग्य वस्तुओं का उत्पादन और वितरण प्रणाली विकसित करके, युवकों को इस योग्य बनाना चाहते थे कि वे अपनी जीविका स्वतः अर्जित कर सकें। प्रस्तुत अध्ययन में भारतीय पुनर्जागरण-कालीन समस्याओं तथा समाज सुधारकों राजा राममोहन राय, दयानन्द, विवेकानन्द, दादाभाई नौरोजी, तिलक, गोखले, गांधीजी आदि के कार्यों और विचारों का भी महामना की वैचारिक पृष्ठभूमि में तुलनात्मक समाज वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है।

इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ग्रन्थ की वैज्ञानिकता और रोचकता ग्रन्थ में आद्योपान्त बनी हुई हैं। कहीं भी पाठक ऊब अथवा बोरियत नहीं महसूस करेगा। भाषा शैली भी बड़ी ही बोधगम्य और सारग्राही है। इस ग्रन्थ से समाज विज्ञान, राजनीति विज्ञान, इतिहास आदि के विद्यार्थी भी लाभान्वित होंगे। इसमें भारत के नवीन परिवर्तनोन्मुख समाज का चित्रण किया गया है। अतः यह अध्ययन समाजविज्ञान में अनूठा है। मैं इस महान् प्रयास के लिए लेखक को बधाई देता हूँ कि उन्होंने महामना के आदर्शों और वैचारिकी को समाजशास्त्र के वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सरल बोधगम्य शैली में इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

रा० ना० सक्सेना
(रामनारायण सक्सेना)
कुलपति
काशी विद्यापीठ, वाराणसी

दिनांक १-८-८१ ई०

भूमिका

भारतीय समाज सुधारकों एवं राष्ट्रीय नेताओं में समाज को सर्वाधिक प्रभावित करने वाले राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, दयानन्द, दादाभाई नौरोजी, बालगंगाधर तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय, गांधी, नेहरू, पटेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। निःसन्देह उक्त भारतीय विचारकों में कोंत, दुर्खीम, मार्क्स, पैरेटो, मैक्स वेबर, हॉर्न हाउस आदि के समान अकादमिक विचार नहीं हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह प्रश्न बार-बार उभरकर सामने आता है कि क्या भारतीय सामाजिक विचारकों की उपेक्षा कर दी जाय, अथवा उन्हें अपनी बौद्धिक संवेदनशीलता का अंग बनाया जाय। पश्चिमी समाज और संस्कृति में विकसित आधुनिक समाजविज्ञान की अवधारणाएँ किस सीमा तक इन विचारकों पर लागू होती हैं, कठोरता से वर्तमान समाज वैज्ञानिक अवधारणाओं को भारतीय विचारकों पर लागू करने पर इनके विचारों के मूल तत्व का विकृत होना स्वाभाविक है। अतः विश्लेषण में अत्यावश्यक समाज वैज्ञानिक बन्दिश नहीं लगायी गयी है।

वर्तमान अध्ययन, भारत के आधुनिक सामाजिक आन्दोलन-कालीन विचारकों में से, पं० मदनमोहन मालवीय के विचारों एवं कार्यों से सम्बन्धित है। भारतीय संस्कृति मूल के विचारकों को पाश्चात्य विचारकों की श्रेणी में रखना उचित नहीं होगा। पश्चिम के स्वाधीन देशों के विकसित औद्योगिक समाजों के विचारक कोंत, दुर्खीम, मार्क्स आदि अपने देश और समाज के पर्यावरण की समस्याओं का प्रतिपादन करते हैं। आधुनिक भारत के स्वाधीनता संग्रामकालीन सामाजिक विचारक उपनिवेशवादी शासनाधीन समाज की गतिविधियों से उत्पन्न समस्याओं के विचारक हैं। उस समय देश के समक्ष अशिक्षा तथा जाति, वर्ण, अस्पृश्यता, ...

बाल विवाह आदि रूढ़िमूलक सामाजिक समस्याओं के साथ राजनीतिक स्वाधीनता प्राप्त करने की राष्ट्रीय समस्या थी।

मानव का मानवीय अस्तित्व समाज मे निहित होता है। समाज सामाजिक रीतियो, परम्पराओ, प्रथाओं, रूढ़ियों, संस्कृतियो आदि के जाल से निर्मित अद्भुत समुच्चय है। प्रत्येक समाज की पृथक् संस्कृतियाँ होती है, जिनके अन्तराल में समाज की अपनी समस्याएँ होती है। समाज मे कुछ ऐसे व्यक्ति होते है, जिनकी विलक्षण प्रतिभा, नेतृत्व एवं नीति की छाप अमिट रूप से उस समाज और सस्कृति पर पड़ती है। समाज का योगदान इन व्यक्तियों के व्यक्तित्व निर्माण में महत्वपूर्ण होता है। इन विशिष्ट व्यक्तियो का समाज के स्वरूप को निर्धारित करने एवं उसमे परिवर्तन लाने में विशेष योगदान रहता है। परिस्थिति को प्रमुख मानने वाले व्यक्ति समाज के निर्माण मे व्यक्ति की भूमिका अपेक्षाकृत कम मानते है, परन्तु दूसरी ओर महान् व्यक्ति सम्प्रदाय (great man school) के विचारक यह स्वीकार करते है कि परिस्थितियो का महत्व और उनकी सामाजिक उपयोगिता वही तक होती है जहाँ तक समाज के कतिपय महान् व्यक्ति उसे समाजोपयोगी बना पाते है। इस शोध प्रबन्ध की कुछ सीमाएँ है। यहाँ भारतीय पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में मालवीयजी को अध्ययन की इकाई के रूप मे लिया गया है और उनके सामाजिक चिन्तन एवं कृतित्व का भारतीय सामाजिक पर्यावरण की पृष्ठभूमि मे सरल भाषा मे विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

मालवीयजी की शिक्षा क्षेत्र के अतिरिक्त भारतीय सुधारवादी आन्दोलनो एवं राष्ट्रीय आन्दोलनो मे महत्वपूर्ण भूमिका रही है। महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के अनुसार—'समाज को उनकी अनेक देनें है।' 'वह भारतीय राजनीति के वरिष्ठ सदस्य थे।' अतीव व्यस्त राजनीतिक एव शैक्षिक जीवन मे समयाभाव-वश वह अपने विचारो को पुस्तकीय रूप मे व्यक्त नही कर सके है। अतः अन्यान्य स्रोतों से उनके विचारों एवं कार्यों का संकलन करने मे बड़ी कठिनाइयो का सामना करना पड़ा है। इस शोध कार्य का विशेष योगदान यही हो सकता है कि पुनर्जागरण, परिवर्तन एव राष्ट्रीय आन्दोलन को समस्त भारतीयता के केन्द्र विन्दु के रूप मे महामना मदनमोहन मालवीय के विचार एवं कार्य, भारतीय सस्कृति एवं परम्परा के सातत्य की रक्षा करते हुए भी समाज को आधुनिकीकृत करते है।

इस दुरूह कार्य में शोधकर्ता को प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अनेक लोगो ने सहयोग प्रदान किया। उनके प्रति शोधकर्ता हृदय से आभारी है। भारतीय पुनर्जागरण, परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण का प्रतीक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शिक्षा के क्षेत्र मे मालवीयजी की सबसे बड़ी देन हैं। इस विश्वविद्यालय की अपनी विशेषताएँ है। विश्वविद्यालय के उच्चाधिकारियों की बहुत दिनों से यह अभिलाषा थी कि मालवीयजी का समाजवैज्ञानिक अध्ययन (भारतीय लोकभाषा में) भारतीय राष्ट्र और समाज की आधुनिक पृष्ठभूमि की विवेचना के लिए अतीव आवश्यक है। इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक प्रोफेसर सुरेन्द्रकुमार श्रीवास्तव की प्रेरणा के परिणामस्वरूप लेखक ने यह शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत करने का दु साहस किया है। अतः प्रोफेसर सुरेन्द्रकुमार श्रीवास्तव के प्रति आभार प्रकट करना शोधकर्त्ता का परम धर्म हैं। लेखक उनके प्रति आभारी हैं।

समाजविज्ञान के वयोवृद्ध विचारक माननीय प्रोफेसर आर० एन० सक्सेना, (सम्प्रति कुलपति, काशी विद्यापीठ, वाराणसी) ने जिन्हें मालवीयजी के समय में हिन्दू विश्वविद्यालय का छात्र होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, मालवीयजी के सम्बन्ध में अनेक सामाजिक तथ्यों को बताने तथा विचारों की गहन विवेचना से सम्बन्धित कार्य करने मे अपना अद्वितीय योगदान दिया है। अत शोधकर्त्ता उनके प्रति विशेष आभारी है।

लेखक सुझाव, दिशा-निर्देशन आदि के क्षेत्र में अनेक प्रकार के सहयोग के लिए राजनीति विज्ञान के अध्यक्ष प्रोफेसर मनोरजन झा के प्रति अतीव आभारी है, जिनके विशेष प्रयास से इस शोध प्रबन्ध का प्रस्तुत होना सम्भव हो सका है।

लेखक माननीय डॉ० सत्येन्द्र त्रिपाठी, डीन, कुमाऊँ विश्वविद्यालय के प्रति हृदय से आभारी है, जिन्होंने अपनी व्यस्त समय सारिणी में से समय निकाल कर शोध-प्रबन्ध मे अपने मूल्यवान योगदान की कृपा की है।

इस शोध प्रबन्ध की विषय-वस्तु स्थापना, समाजवैज्ञानिक विश्लेषण, अध्ययन का आद्योपान्त परीक्षण, दिग्दर्शन, लेखन आदि कार्यों में डॉ० हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव, रीडर, समाजविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का विशेष योगदान प्राप्त हुआ है। अत शोधकर्त्ता विशेष रूप से उनका ऋणी एव कृतज्ञ है।

इस शोध प्रबन्ध में पुनर्जागरण सम्बन्धी योगदान लेखक को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, राजनीतिशास्त्र विभाग के रीडर, डॉ० हरिहरनाथ त्रिपाठी से प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त डॉ० त्रिपाठी ने अन्य आवश्यक परामर्श भी प्रदान किया है। अत. लेखक उनका आभारी है।

लेखक समाजविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रीडर, डॉ० गोपालसिंह नेपाली, डॉ० (श्रीमती) सुरिन्दर जेतली, व्याख्याता—डॉ० सुदर्शन कुमार गोयल, डॉ० ओमप्रकाश गुप्त तथा डॉ० अखिलेश्वरलाल श्रीवास्तव का भी आभारी है, जिनकी प्रेरणाएँ एवं सुझाव समय-समय पर मिलते रहे हैं।

भाषा-सम्पादन के लिए शोधकर्त्ता हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार एवं समालोचक श्री देवनारायण द्विवेदी भूतपूर्व अध्यक्ष, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, (दैनिक 'आज' के सचालक) का आभार पितृऋण के रूप में स्वीकार करता है। लेखक विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी के अध्यक्ष श्रीयुत पुरुषोत्तमदास मोदी का विशेष आभारी है, जिन्होने पुस्तक के राष्ट्रीय महत्व को ध्यान में रखकर इसके प्रकाशन का दायित्व वहन करना स्वीकार किया।

—कृष्णदत्त द्विवेदी

समाजविज्ञान विभाग, काशी हिन्दू
विश्वविद्यालय, वाराणसी–२२१००५
१५ अगस्त, १९८१ ई०

विषय-सूची

अध्याय—१

शोध का प्रारूप

अध्ययन का प्रयोजन

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। प्रत्येक समाज की विशेषताओं में वहाँ की विशेष सांस्कृतिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, लोक-रीतियाँ, देश की राजनीतिक गतिविधियाँ, प्रथाएँ आदि समाहित होती हैं। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य भारतीय स्वाधीनता संग्राम के सेनानी एवं शिक्षा-जगत् के क्रान्तिकारी विचारक पण्डित मदनमोहन मालवीय के विचारों और कार्यों का पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में सामाजिक अध्ययन करना है, जो भारतीय समाज की संस्कृतियों, परम्पराओं और व्यवस्थागत मान्यताओं से समन्वित रूप से ओत-प्रोत रहे है।

आधुनिक भारत के सामाजिक विचारक उपनिवेशवादी शासनाधीन समाज की गतिविधियों से उत्पन्न समस्याओं के विचारक हैं। भारतीय समाज पाश्चात्य औद्योगिक समाज की तुलना में पिछड़ा है। पाश्चात्य समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या बिखरते हुए समाज को पुनर्गठित अथवा निर्देशित करने की थी, जबकि भारत की प्रमुख सामाजिक समस्या अपनी संस्कृति की रक्षा और स्वाधीनता प्राप्त करने की थी। नि सन्देह भारतीय सामाजिक विचारकों में कोंत, दुर्खीम, मार्क्स, पैरटो, मैक्सवेबर और हाबहाउस ऐसे विचारक नहीं हुए हैं।

यहाँ एक गम्भीर प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीय सामाजिक विचारकों की उपेक्षा कर दी जाय अथवा भारतीय पर्यावरण में फलीभूत उनके विचारों को अपनी बौद्धिक संवेदनशीलता का अंग बनाया जाय। हम इस पक्ष में हैं कि पाश्चात्य औद्योगिक आधुनिक समाज की उपर्युक्त विचारधारा के परे भारतीय सस्कृति और परम्परा-उन्मुख आधुनिक भारतीय प्रगतिशील विचारकों के विचारों का भी समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण होना चाहिए।

एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि आधुनिक समाजवैज्ञानिक अव-धारणाएँ (concepts) इन विचारकों पर कहाँ तक लागू होती हैं। यदि यही

कठोरता से वर्तमान समाजवैज्ञानिक अवधारणाओं को इन पर लागू किया जायगा तो इनके विचारों का मूल तत्त्व विकृत हो जायगा। अतः इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए इस अध्ययन की विवेचना सरल एवं बोधगम्य भाषा में करने का प्रयास किया जायगा।

प्रत्येक समाज में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनकी विलक्षण प्रतिभा की छाप अमिटरूप से उस समाज और संस्कृति पर पड़ती है। यद्यपि समाज का योगदान इन व्यक्तियों के व्यक्तित्व-निर्माण में महत्वपूर्ण होता है, परन्तु फिर भी अन्य साधारण व्यक्तियों की अपेक्षा इतिहास के इन विशिष्ट व्यक्तियों का समाज के स्वरूप को निर्धारित करने एवं उसमें पुनर्जागरण की चेतना द्वारा परिवर्तन लाने में विशेष योगदान रहता है। अतः समाजवैज्ञानिक अध्ययन के लिए किसी समाज विशेष के ऐसे व्यक्तियों के विचारों का सामाजिक अध्ययन महत्वपूर्ण है।

विषयवस्तु-चयन का महत्व

भारतीय आधुनिक सुधारवादी विचारकों के इतिहास में अनेक महान् समाज-सुधारक एवं प्रगतिशील व्यक्ति हुए हैं, जिनमें राजा राममोहन राय, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, दयानन्द, दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक, गोपाल-कृष्ण गोखले, महामना मदनमोहन मालवीय, मोहनदास कर्मचन्द गांधी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विशिष्ट भारतीय समाजसुधारकों के प्रयासों ने भारतीय समाज और संस्कृति के वर्तमान स्वरूप को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनमें कुछ के विषय में पर्याप्त जानकारी और संकलित सामग्री है और कुछ के विषय में पर्याप्त जानकारी होते हुए भी एक स्थान पर व्यवस्थित सामग्री उपलब्ध नहीं है। भारतीय विचारधारा को समझने के लिए ऐसे विचारों का समाजवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन आवश्यक है। अतः इस शोध प्रबन्ध में पं० मदन-मोहन मालवीय के सामाजिक विचारों एवं कार्यों को प्रस्तुत विषय की इकाई के रूप में लेकर अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के लिए विषय-चयन में विषय की इकाई के रूप में मालवीयजी के विचारों को चयन करते समय उनकी अन्यान्य विशेषताओं के अतिरिक्त शोधकर्ता ने प्रमुख विशेषता के रूप में यह भी पाया कि स्वाधीनता संग्राम कालीन प्रायः सभी उच्चकोटि के गांधी, नेहरू, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि नेताओं तथा विचारकों ने मालवीयजी के राजनीतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक विचारों एवं व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो विचार व्यक्त किया है, वैसा विचार अन्य किसी भी भारतीय नेता अथवा सामाजिक विचारक के प्रति किसी ने व्यक्त नहीं किया है। गांधी, नेहरू आदि नेताओं के लिए मालवीयजी के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षिक आदि विशिष्टता-प्रदर्शक विचार भी विषय-चयन के क्षेत्र में प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, उनमें निम्नलिखित बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—

१. भारतीय राष्ट्रीय पुनर्जागरण, परिवर्तन एव स्वाधीनता सग्राम की प्रतिनिधि सस्था काग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष महात्मा गाधी के शब्दो मे 'अपनी युवावस्था से आज तक उन (मालवीयजी) की देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न है।....मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूँ, उनके विचारो मे ऐक्य है।....'

'देश के सार्वजनिक जीवन की उनकी अनेक बडी देनें है। उनका सबसे बडा कार्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय से मुझे हार्दिक प्रेम है। कट्टर एवं पुराने विचार के होते हुए भी उनके विचार समाज के विषय मे बड़े ही उदार है।'[2]

२ पं० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों मे—'भारतीय राजनीति मे मालवीयजी ही एकमात्र ऐसे अगुआ थे, जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, अपितु काग्रेस के उदारवादी तथा उग्रवादी वर्ग को मिलाने की एक कडी के रूप मे काग्रेस की, जो भारतीय स्वाधीनता के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य रही, सेवा की।'[3]

३ डॉ० राजेन्द्रप्रसाद के अनुसार—'जब-जब काग्रेस का अस्तित्व संकट में पड़ा मालवीयजी ने ही उनका मार्गदर्शन किया। उनका काग्रेस से मतभेद होता था, परन्तु उन्होंने कभी काग्रेस को छोडा नही। वह नयी पुरानी पीढी के लोगों के बीच सेतु की भाँति काम करते थे।'[4]

४. समाज सुधार, धर्म, राजनीति, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण आदि अन्यान्य क्षेत्रो के अतिरिक्त स्वाधीनता सग्राम की संस्था काग्रेस का एकाधिक पीढियो तक उन्होंने नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन किया था।

५. वही ऐसे नेता है जो पण्डित नेहरू के शब्दों में—अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा के कारण भारतीय राजनीति के वरिष्ठ सदस्य है तथा राजनीति में उनके विचारों से सहमत न होने वाले लोग भी उनका सम्मान और विशेष आदर करते थे।[5]

६. शिक्षा के क्षेत्र मे उन्होने अपने विचारो के अनुसार प्राचीन धर्म-दर्शन, कला-साहित्य आदि की राष्ट्रीय शिक्षा के साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, चिकित्सा-विज्ञान, तकनीकी विज्ञान, कृषि विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन वाले काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी विशाल संस्था का निर्माण किया था, जिसका राष्ट्र निर्माण में अपना विशेष योगदान रहा है। अतः पुनर्जागरण और परिवर्तन के क्षेत्र में, रोजगारपरक उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का आधुनिक व्यवहृत स्वरूप समाज मे अपना विशेष महत्व रखता है। इस प्रकार शिक्षा, समाज-सुधार और राष्ट्रीयता के क्षेत्र मे मालवीयजी एक प्रगतिशील एवं आधुनिक विचारक है। इसके अतिरिक्त राजनीतिक, सामाजिक व्यक्तित्व और कृतित्व की अनेक विशेषताओं के

कारण वह शिक्षा, राजनीति, समाज-सुधार आदि के क्षेत्रों मे अपना विशिष्ट स्थान रखते थे। यही कारण है कि स्वाधीनता संग्रामकालीन प्रायः सभी उच्चकोटि के हिन्दू तथा मुस्लिम नेताओ के बीच वह सदैव एक रूप मे समादृत रहे है।

मालवीयजी के विषय मे भारतीय नेताओ के विचारो को देखने पर हम पाते है कि उनमे विचारो को सामाजिक उपयोगिता की दृष्टि से क्रियात्मक रूप देने की विशेष क्षमता थी। पश्चिम के आधुनिक विचारक जहाँ अपने विचारों को समाजवैज्ञानिक शब्दजाल मे व्यक्त करने की अद्वितीय क्षमता रखते है, वही मालवीयजी अपने विचारो को समाजोपयोगी व्यावहारिक रूप प्रदान करने में अधिक निपुण दिखायी देते हैं। जैसे—हिन्दू-मुस्लिम धार्मिक एकता को दृढ करने के क्षेत्र में वह मन्दिर के साथ मसजिद का निर्माण कराते हैं। देश के बहुभाषा, बहुधर्म बाहुल्य के बीच राष्ट्रीयता की भावना के साथ स्वदेशीकरण और देश-भक्ति के नाम पर जर्मनी का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए देश का राष्ट्रीय चरित्र विकसित करना चाहते हैं। गांधीजी की अध्यक्षता में गोवधबन्दी आन्दोलन आरम्भ करवाने के साथ वह गोशालाओ द्वारा सभी सम्प्रदाय को शुद्ध दुग्धाहार से लाभान्वित कराने के लिए अनेक गोशालाओ का निर्माण कराते हैं। अस्पृश्यता-निवारण के भाषणो की अपेक्षा वह अस्पृश्यता को अशास्त्रीय सिद्ध करने के लिए सार्वजनिक सभा का आयोजन कराकर सभी वर्णो की एकता के लिए ब्राह्मण से अन्त्यजपर्यन्त के लिए एक ही मण्डप मे बिना भेद-भाव के मंत्रदीक्षा कार्यक्रम का आयोजन करते हैं, आदि उनके वैचारिक कृतित्व का व्यावहारिक पक्ष भी दिखायी पड़ता है, जो उनके विचारों की साकार अभिव्यक्ति है। वैचारिकों के कृतित्व की उक्त विशेषता मालवीयजी की अपनी विशेषता है। इस प्रकार वह अपने शिक्षा, पुनर्जागरण एवं परिवर्तन आदि से सम्बद्ध विचारो को साकार रूप प्रदान करते है काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी विशाल संस्था की स्थापना द्वारा। यहाँ कला-साहित्य, धर्म-दर्शन आदि के आधार पर उनकी पराधीनता काल में ज्ञान-विज्ञान, प्राविधिकी, कृषि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि विषयो के अध्ययन-अध्यापन के माध्यम से परोक्ष रूप से आत्मनिर्भर कुशल युवा सेनानियों एवं प्राविधिज्ञों को तैयार करने की उनकी योजना थी। भारतीय ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति-सुधार हेतु वह लगान में कमी करने, कम ब्याज दर पर बैंक द्वारा ऋण देने की व्यवस्था करने, जमीदारी शोषण व्यवस्था विरोध, रेल राष्ट्रीयकरण, स्वदेशी प्रसार, राष्ट्रीय उद्योगो की स्थापना आदि विविध सुधारवादी कार्य-क्रमो पर बल देते हैं। अतः उक्त विषय-चयन में उनके विचारों एवं कार्यो को अतीव महत्वपूर्ण मानकर, इस अध्ययन के लिए उनके विचारो एवं कार्यो को विषय की इकाई के रूप मे चयन किया गया है। मालवीयजी के विचारों को भारतीय परम्परागत शाश्वत मूल्यों के केन्द्र बिन्दु में स्थित पाया गया है, किन्तु उनके विचार वैचारिक परिधि की स्वच्छन्दता की दिशा मेंपुनर्जागरण एवं

का प्रयास किया था। उनके विचारों में उनके पूर्ववर्ती तथा समवर्ती समाज-सुधारकों के विचारों में समता थी। भारतीय समाज व्यवस्था के सातत्य को शाश्वत रखते हुए मालवीयजी भारतीय समाज व्यवस्था को अनुकूली (adaptive) बनाना चाहते थे।

आधारभूत संप्रत्यय (Basic concept)

पुनर्जागरण (Renaissance)

इस शब्द के साथ पुनरुत्थान का इतिहास जुड़ा हुआ है, जिसके अनुसार १४वीं शती के आते-आते यूरोप में प्राचीन रोमीय साम्राज्य के ध्वंस में उत्पन्न अवस्था और अव्यवस्था शान्त हो गयी थी। पुनर्जागरण की कल्पना के प्रचार का श्रेय इटली के (पुनर्जागरण के प्रथम इतिहासकार बर्कहार्ट को है, यद्यपि रेनेसा (पुनर्जागरण) शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रसिद्ध फ्रांसीसी इतिहासज्ञ एवं दार्शनिक मिशेलेट ने १९वीं शती के पूर्वार्द्ध में किया था।[6] आक्रमणकारी नूतन जातियाँ पुरानी लातीनी जातियों द्वारा सुसंस्कृत, स्वधर्म (ईसाई धर्म) में दीक्षित और आत्मसात् कर ली गयी थीं। उस समय यूरोपीय संस्कृति में एक नवीन जीवन का संचार हुआ था, जिसका वेग लगभग १६वीं शती तक बना रहा। यह युग मोटे तौर पर दो सौ वर्षों (१३५०-१५५०) का माना जाता है। इस युग में नये-नये अन्वेषण और आविष्कार हुए, धर्म और दर्शन का नया सस्करण किया गया, कला और विज्ञान की नयी साधना का समारम्भ हुआ, राजनीति और समाज व्यवस्था में मौलिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। पश्चिमी यूरोप विशेषतया इटली, नेदरलैण्ड, स्पेन, फ्रांस, जर्मनी तथा इग्लैण्ड--एक नयी चेतना से अनुप्राणित हुए, जिसका प्रथम उन्मेष इटली में देखने को मिलता है। इस प्रकार यूरोप का एक प्रकार से नया जन्म हुआ और इसी कारण उस युग को 'पुनर्जन्म' के पर्याय-भूत 'पुनर्जागरण' (renaissance) का अभिधान प्रदान किया गया।

'पुनर्जागरण' शब्द यूरोप के मध्ययुग और आधुनिक युग के बीच की संक्रान्ति की अवस्था का बाधक है। पुनर्जागरण युग क्लासिकी (यूनानी-रोमीय) विद्या के पुनरुद्धार और प्रत्यावर्तन (रिवाइवल) का युग था।....यूनानी रोमीय साहित्य, दर्शन और कला ने यूरोपीय मध्ययुगीन कूपमण्डूकता भंग कर उसमें नये मूल्यों की वासना उत्पन्न कर दी। यूनानी संस्कृति की उदारता, इहलोक केन्द्रिकता (सेक्यूलेरिटी) और धर्म, ईश्वर आदि के सम्बन्ध में अनाग्रह प्रसिद्ध हैं, पश्चिमी यूरोप पर इन वृत्तियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहा।[7]

भारत में पुनर्जागरण युग गुप्त युग को माना जा सकता है किन्तु १८वीं शती के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजी सभ्यता के प्रसार के फलस्वरूप इसका प्रभावी स्वरूप दिखाई पड़ता है।[8] इसी अवधि में (१८२९-३३ ई०) राजा राममोहन राय के प्रयासों

से सतीप्रथा, मानव बलि, बालिका हत्या तथा दासप्रथा जैसी कुरीतियों में परिवर्तन-विधायक संविधान बने थे। ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, आर्यसमाज आदि सुधारवादी संस्थाओं का समाजसुधार कार्य कांग्रेस-आन्दोलन तथा राजा राममोहन राय, विवेकानन्द, मालवीयजी, गांधीजी के स्वाधीनता आन्दोलन के साथ-साथ चलता रहा। अतः इस लम्बे सुधार और पुनरुत्थान के युग को भारतीय पुनर्जागरण का युग माना जा सकता है, जिसमें मालवीयजी के विचारों एवं कार्यों का अध्ययन इस शोध प्रबन्ध की विषय-वस्तु है।

परिवर्तन (Change)

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयुक्त परिवर्तन शब्द का अभिप्राय सापेक्षिक है। हाँ, इस अध्ययन के साथ इस शब्द का प्रयोजन सामाजिक परिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, वैधिक, राजनीतिक, शैक्षिक धार्मिक, जनांकिकी और सामाजिक क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन से सम्बन्धित हैं। इस विषय को विस्तृत रूप से समझने के लिए उक्त विषयों के अध्येताओं की आवश्यकता होगी।[9] परिवर्तन शब्द के साथ आधुनिकीकरण शब्द का स्वरूप सन्निहित होता है। इस सम्बन्ध में गिसबर्ग के शब्दों में—'सामाजिक परिवर्तन से मैं सामाजिक परिवर्तन समझता हूँ। उदाहरणार्थ—सामाजिक आकार में उसकी बनावट या विभागों के सन्तुलन में अथवा उसके संगठन के स्वरूपों में होने वाले परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन माने जा सकते हैं।'[10]

परिवर्तन प्राकृतिक नियम है। मानव के विचारों तथा मान्यताओं में भी परिवर्तन होते रहते हैं। कुछ सामाजिक परिवर्तन समाज की नवीन पीढ़ी के अवतरण के साथ इतनी मन्द गति से होते हैं कि उनका सहज बोध नहीं होता। कई पीढ़ियों में हुए परिवर्तन द्वारा इसका स्वरूप दिखायी पड़ सकता है, किन्तु कुछ सामाजिक परिवर्तन सुधारवादियों के आन्दोलनों के कारण सहज रूप से दिखाई देते हैं, क्योंकि इनके द्वारा किये गये प्रयासों से जनमानस में यथास्थिति-वादी पक्ष के लोगों तथा परिवर्तनवादी पक्ष के समर्थकों के बीच कुछ-न-कुछ अन्तर्द्वन्द्व अवश्य होता है, जिससे परिवर्तन की प्रक्रिया अग्रसरित होती है। अतः सामाजिक परिवर्तन अनेक प्रकार से नवीन पीढ़ियों द्वारा नवीन मूल्यों के सन्दर्भ में होते रहते हैं।[11] उक्त सामाजिक परिवर्तनों के कारक आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि होते हैं। मालवीयजी के सामाजिक विचारों के प्रसंग में सामाजिक परिवर्तन एक मिश्रित अवधारणा है, जिसमें पुनर्जागरण, प्रगति और सुधार की अवधारणाएँ भी सम्मिलित हैं।

अध्ययन प्रस्तुतीकरण

इस शोध विषय की सार्थकता प्रमाणित करने के लिए मालवीयजी के वि[illegible]
को प्रभावित करनेवाले भारतीय समाजव्यवस्था से सम्बन्धित ग्रंथों की सा[illegible]

की विवेचना करते हुए, समाज व्यवस्था को प्रभावित करनेवाले उनके विचारों का विश्लेषण, परम्परागत भारतीय समाज-व्यवस्था के पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के प्रसंग में धार्मिक, शैक्षिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक क्षेत्रों में किया जायगा। भारतीय शास्त्रों को आधार मानने वाली देश को समाज-व्यवस्था के मालवीयजी मर्मज्ञ और 'प्रतीक' थे। अत. भारतीय समाज-व्यवस्था के परिवर्तन से सम्बन्धित उनके सामाजिक विचारों का विश्लेषण करना अधिक सार्थक होगा, जिसके आधार पर इस अध्ययन की पुष्टि करना अभीष्ट है।

तथ्य-सकलन-स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यरूप से सूचना के द्वैतीय स्रोतो पर आधारित है। इसके लिए मालवीयजी के समकालीन तथा सम्बन्धित परवर्ती लोगो के प्रलेख तथा सस्मरण के माध्यम से भी तथ्य संकलित किये गये है। जानकारी के प्रमुख स्रोत निम्नलिखित हैं—

(क) भारतीय समाज व्यवस्था और उससे सम्बन्धित साहित्य, शास्त्र, उपनिषद, वेद, धर्मग्रथ तथा उनपर मालवीयजी तथा अन्य विद्वानो के लेख, भाषण, पुस्तके एव उद्धरण।

(ख) अन्य विद्वानो द्वारा मालवीयजी के सम्बन्ध मे लिखित या मौखिक विचार।

(ग) मालवीयजी के विचारो पर भारतीय शास्त्रो तथा अन्य विद्वानो का प्रभाव।

(घ) मालवीयजी के रचनात्मक कार्यों द्वारा समाज व्यवस्था में मूल्यो की स्थापना एव सुधारवादी कार्यों से सम्बन्धित जीवन वृत्त।

(च) मालवीयजी के कार्यों का अध्ययन एव अनुशीलन।

(छ) कांग्रेस, तत्कालीन भारतीय संसद, समाज, धर्म, शिक्षा आदि अन्यान्य क्षेत्रो मे मालवीयजी के कार्यों का अध्ययन एव अनुशीलन।

(ज) कार्य के बीच उपलब्ध लिखित-अलिखित स्रोत।

अध्ययन का वर्गीकरण

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को निम्नलिखित अध्यायो मे वर्गीकृत करके अध्ययन किया गया है—

१. शोध का प्रारूप।
२. मालवीयजी का जीवनवृत्त एव व्यक्तित्व।
३. पुनर्जागरण एव परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य मे मालवीयजी के सामाजिक विचार।

४. भारतीय समाज व्यवस्था के शास्त्रीय स्वरूप के परिप्रेक्ष्य में मालवीयजी के सामाजिक विचार।

५. मालवीयजी के सामाजिक सुधारवादी विचार एवं कार्य।

६. मालवीयजी के धर्म एवं समाज सम्बन्धी विचार एवं कार्य।

७. मालवीयजी के शिक्षा तथा समाज सम्बन्धी विचार एवं कार्य।

८ मालवीयजी का नेतृत्व : राजनीतिक विचार एवं कार्य :

(क) ससदीय राजनीति एव नेतृत्व।

(ख) राष्ट्रीय राजनीति एवं नेतृत्व।

(ग) धार्मिक-सामाजिक राजनीति एवं उदार नेतृत्व।

९. निष्कर्ष।

—०:—

सन्दर्भ

1. मेरे समकालीन, पृ० ४५१-४५२ (अपने समय के राजनीतिज्ञो तथा लोक-सेवकों के प्रति महात्मा गाधी द्वारा लिखित सस्मरण, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, १९५१)।
2. वही, पृ० ४४७-४४८।
3. २९ दिसम्बर १९६१ ई० इलाहाबाद मे भाषण—मकुटविहारी लाल : मालवीयजी : जीवन और नेतृत्व, पृ० ३८९, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९७८
4. पद्मकान्त मालवीय, मालवीयजी . जीवन झलकियाँ, पृ० १-२ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
5. Jawahar Lal Nehru An Autobiography, p. 157-158, New Delhi, 1962.
6. Encyclopaedia of Social Sciences, Vol. XIII, p. 278. The Macmillan Co., U.S.A., 1934.
7. Ibid, p. 278-285.
8. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ० रघुवंश आदि द्वारा सम्पादित, हिन्दी साहित्य कोश, भाग १ (पारिभाषिक शब्दावली), प्रकाशक : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ० ४०३-४०४।
9. M.N. Srinivas : Social Change in Modern India, p. 1, Orient Longmans, Bombay, 1972.
10. M. Ginsberg, Social Change, p. 205-229, British Journal of Sociology, 1958.
11. K. Davis, Human Society, p. 621, The Macmillan Company, New York, 1969.

अध्याय—२

मालवीयजी का जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व

मदनमोहन मालवीय का जीवन वृत्त एवं नेतृत्व

मदनमोहन मालवीय के पूर्वज मालवा में रहते थे। १५वीं शती में मालवा-नरेश के खान-पान-सम्बन्धी निर्णय के विरोध में इनके पूर्वज जन्मभूमि छोड़कर प्रयाग आकर बस गये।[1] अपने कुल धर्म की मर्यादा के विपरीत दबावपूर्वक कोई भी कार्य करना उन्हें स्वीकार नही था। वे इतने स्वाभिमानी थे कि उन्होंने जन्मभूमि छोड दी, किन्तु दबाव मे आकर रहना पसन्द नहीं किया। मदनमोहन मालवीय के पिता का नाम पण्डित व्रजनाथ था। उन्होंने अपने ननिहाल मे रहकर सस्कृत की शिक्षा ग्रहण की थी। इनके पितामह प्रेमधर संस्कृत के विद्वान् थे। ८४ वर्ष की अवस्था मे उन्होंने गंगातट पर स्वतः पद्मासन लगाकर समाधि ली थी। इनकी पितामही धर्मनिष्ठ तथा शीलसम्पन्न थीं। पितामह की भाँति इनके पिता भी सदाचारी और श्रीमद्भागवत के कथा-वाचक थे। उन्होंने 'सिद्धान्त दर्पण' नामक एक ग्रन्थ लिखा था, जिसे मदनमोहन मालवीय ने सन् १९०६ मे प्रकाशित कराया था। इनकी माता मूना देवी अत्यन्त सरल स्वभाव की महिला थीं।

इसी परम्परावादी, स्वाभिमानी परिवार मे महामना मदनमोहन मालवीय का जन्म सन् १८५७ई० के विप्लव के ४ वर्ष बाद पौष कृष्ण ८, स १९१८ वि० (२५ दिसम्बर सन् १८६१ ई०) बुधवार के दिन प्रयाग मे लालडिग्गी[2] मुहल्ले मे हुआ था। मदनमोहन ८ भाई-बहन थे। यज्ञोपवीत होने के बाद ही ये सन्ध्या-वन्दन करने लगे थे। प्रारम्भ से ही मालवीयजी सामाजिक कार्यकर्ता एवं रचनात्मक दृष्टि के नवयुवक थे। इनका सध्या दल था, जो सध्योपासन हेतु प्रयाग में यमुना तट पर इकट्ठा होता था। इनका दूसरा दल व्याख्याता दल था, जो धार्मिक भाषण किया करता था। यह व्याख्याता दल ईसाई मिशनरियों का

धार्मिक प्रचार देखकर, मालवीयजी द्वारा कायम किया गया था। इस दल के नेता और संस्थापक मदनमोहन सड़कों पर हिन्दू धर्म पर व्याख्यान देते और धर्म का प्रचार करते थे।[३] सेवा कार्य में भी मदनमोहन सबसे आगे रहते थे। एक बार इनके पड़ोस में एक व्यासजी के घर आग लगी, मदनमोहन मकान पर चढ़ गये और कुएँ से पचासो घड़े पानी लाकर आग बुझाई।[४]

प्रारम्भिक शिक्षा

मदनमोहन की प्रारम्भिक शिक्षा घर तथा संस्कृत पाठशाला में हुई थी। घर के वातावरण में ये स्वतः भी संस्कृत सीख रहे थे। इनकी इच्छा अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की हुई। ५ रुपये मासिक कथावृत्ति पर जीविकोपार्जन करने-वाले पिता के लिए वह शिक्षा बहुत महँगी थी। परन्तु पिता ने बालक की इच्छा का स्वागत किया और इन्हें अंग्रेजी स्कूल में भेज दिया। कभी-कभी विद्यालय के मासिक शुल्क की व्यवस्था न हो पाने पर मदनमोहन की माता का कंगन एक साहू के घर गिरवी रखकर इनकी फीस दी जाती थी। पुन कथावृत्ति से किसी प्रकार वह कंगन छुड़ाया जाता था, परन्तु मास के अन्त तक पुन गिरवी रखने की नौबत आ जाया करती थी। बालक मदनमोहन मट्ठा-रोटी खाकर विद्यालय जाया करते थे। परिवार बड़ा था, अतः इतने बड़े परिवार के लिए समय पर भोजन की व्यवस्था करना असम्भव था। यह गणित में कमजोर थे। बड़े परिवार के कारण यह घर में ठीक से नही पढ़ पाते थे। अतः सध्याबेला में मदनमोहन बगल के बाग में लालटेन के प्रकाश में अध्ययन किया करते थे। १८७९ ई० में १८ वर्ष की अवस्था में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने के बाद ये म्योर कालेज में पढ़ने लगे। इनकी पढ़ाई परिवार के लिए भारी पड़ रही थी, परन्तु मा ने अपना पेट काट कर, गहने गिरवी रखकर इनकी सहायता की। कालेज का प्रिंसिपल हैरिसन इनकी धार्मिक भावना से बहुत प्रभावित था। उसने इन्हें एक छात्रवृत्ति भी दी थी। परन्तु उससे इनकी शिक्षा के पारिवारिक अर्थाभाव में कोई विशेष योगदान नही मिल सका। अपने कालेज की फ्रेण्ड्स डिबेटिंग सोसाइटी में मदनमोहन ने पहले-पहल अंग्रेजी में भाषण दिया, जिस पर उस संस्था के मंत्री लाला सावलदास, जो बाद में डिप्टी कलक्टर हो गये थे, इनका उत्साह-वर्द्धन किया। सावलदास मदनमोहन से आठ वर्ष बड़े थे। मदनमोहन मालवीय उन्हें 'उस्ताद' कहते थे। कालेज में मदनमोहन मालवीय का संस्कृत साहित्य भी एक विषय था, जिससे वह कालेज के संस्कृत-अध्यापक पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के सम्पर्क में आये।

इनका विवाह १६ वर्ष की अवस्था में मीरजापुर निवासी पण्डित की लाड़प्यार में पली कन्या कुन्दन देवी से हुआ। कुन्दन देवी ने अपनी स

दयनीय आर्थिक स्थिति* की शिकायत अपने माता-पिता या सास-ससुर से कभी नही की। इन कठिनाइयों के बावजूद सन् १८८४ ई० में मदनमोहन ने बी० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की। यह अपना जीवन धर्म-प्रचार तथा सेवाकार्य मे लगाना चाहते थे। इसलिए राजकीय कालेज मे अध्यापक का मिला हुआ कार्य नही करना चाहते थे, परन्तु इनकी सभी कल्पनाएँ माता के आँसुओं में डूब गयी। इन्हें पढाने में माँ ने जो कष्ट उठाया था, वह इनके लिए असह्य हो गया। इसलिए इन्होंने बाध्य होकर ४०रु० मासिक वेतन पर अध्यापन कार्य स्वीकार कर लिया। मदनमोहन अपनी मासिक आय का अधिकांश भाग परिवार के भरण-पोषण हेतु माता को दे देते थे। केवल दो रुपये मासिक अपनी पत्नी को निजी खर्च के लिए दिया करते थे।

मदनमोहन मालवीय कुशल अध्यापक थे। विद्यार्थी उनका बहुत सम्मान करते थे। अनुशासन के विषय में वह बहुत दृढ थे। किसी छात्र की अनुशासनहीनता उन्हें सह्य नही थी। एक बार उन्होंने एक उद्दण्ड छात्र को अनुशासनहीनता के लिए दण्डित किया था, जिस पर उस छात्र के साथियों ने इन्हें पीटने की धमकी दी थी। मदनमोहन मालवीय के भाई यह बात सुनकर घबरा गये, किन्तु मदनमोहन निर्भीकतापूर्वक विद्यालय आते-जाते रहे।[5]

सार्वजनिक जीवन एवं सम्पादन कार्य

अपने गुरु आदित्यराम भट्टाचार्य के आदेशानुसार मदनमोहन मालवीय ने 'प्रयाग हिन्दू समाज' नामक संस्था के संचालन मे सक्रिय सहयोग किया। इस संस्था के साथ मदनमोहन मालवीय ने लिटरेरी इन्स्टीच्यूट नामक संस्था की भी स्थापना की, जहाँ साहित्यिक चर्चाएँ हुआ करती थी। बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' मे मदनमोहन लेख लिखा करते थे। १८८२ई० मे इन्होंने स्वदेशी का व्रत लेकर उसका प्रचार आरम्भ किया। १८८४ई० मे 'प्रयाग हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा' की स्थापना हुई। मदनमोहन मालवीय उसके

---

* ससुराल की निर्धनता का उन्होने साहसपूर्वक सामना किया। आधा पेट भोजन करती थी तथा फटी धोतियाँ सी कर अपना तन ढक लेने योग्य बना लेती थी। मदनमोहन मालवीय ने अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बीच उक्त स्थिति का पता लगने पर एक दिन उनसे पूछा—'तुमने कभी सास से खाने-पहनने की शिकायत नही की।' पत्नी का उत्तर था—'शिकायत करके क्या करती, मैं कहाँ से देती। घर का कोना-कोना जितना वे जानती हैं, उतना मैं भी जानती हूँ। वे मेरा दुःख सुनकर रो देती और क्या करती ?—रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० ३७, मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, पूर्व सदर्भ में उद्धृत, पृ० ३४-३६।

प्रमुख कार्यकर्त्ता थे। साथियो के उपहास की उपेक्षा करते हुए १८८२ई० मे माघ मेले मे इन्होंने भाषण द्वारा धार्मिक प्रचार किया, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। वह धार्मिक सिद्धान्तो और स्वदेशी प्रचार कार्य मे रत रहते थे।[६] १८८५ई० मे इनके गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्य ने 'इण्डियन यूनियन' नामक अंग्रेजी साप्ताहिक प्रकाशित किया, मदनमोहन ने उसके सम्पादन का बहुत-कुछ भार अपने ऊपर ले लिया था। उसी साल दशहरे के अवसर पर प्रयाग हिन्दू समाज के तत्वावधान मे मध्य भारत हिन्दू समाज का समारोह हुआ। मदनमोहन मालवीय ने इसके प्रबन्ध मे सक्रिय योगदान किया। इसमें कालाकाकर के राजा बीच-बीच में उठकर बोलने लगते थे। जनता उनके बीच-बीच के इस भाषण से उद्विग्न हो उठी थी। मदनमोहन ने बार-बार राजा साहिब को उनके कान मे ऐसा न करने की सलाह दी। इस पर राजासाहिब ने अपने 'हिन्दुस्तान' नामक पत्र मे लिखा—'इसमे दो-एक युवक ऐसे ढीठ थे कि वे राजे-महराजो को व्याख्यान देते समय उनके कान मे सलाह देने की भी धृष्टता करते थे।'[७]

पत्रकारिता

सन् १८८४ ई० की राष्ट्रीय महासभा के मंच पर कालाकांकर के स्वर्गीय राजा रामपाल सिंह मालवीयजी के भाषण से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने इन्हें दो सौ रुपये मासिक पर 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बनाने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने इसके लिए वकालत पढ़ने की शर्त भी लगायी। मालवीयजी ने 'हिन्दुस्तान' का सम्पादन करना स्वीकार तो किया, किन्तु इस शर्त के साथ कि जिस समय 'हिन्दुस्तान' के संचालक राजा साहिब ने मद्यपान किया हो, उस समय वह इनसे न बोलें, साथ ही अपने पास बुलावें भी नही। राजा रामपाल सिंह ने शर्त स्वीकार कर ली। इस प्रकार १८८७ ई० मे स्कूल से त्यागपत्र देकर मालवीयजी पत्रकार बने। इतना ही नही, मालवीयजी कुशल प्रूफरीडर भी थे। सामग्री के मशीन पर छपते-छपते भी ये संशोधन किया करते थे।[९] इन्होने 'हिन्दुस्तान' का ढाई वर्षों तक सम्पादन किया। एक दिन बहुत आवश्यक परामर्श के लिए राजा साहिब ने मालवीयजी को बुलाया। वार्ता के बाद मालवीयजी ने कहा—'आज से मेरा अन्न-जल आपके यहाँ से उठ गया। आपने जो शर्त की थी, वह टूट गयी। मैं रात को या कल चला जाऊँगा। आप अपने पत्र का प्रबन्ध कर लें। आपकी उदारता और स्नेह को मैं कभी नहीं भूलूंगा। राजा साहिब ने एक शर्त स्वीकार कराकर मालवीयजी को विदा किया। उनकी शर्त थी कि मालवीयजी वकालत मेरे खर्च से पढ़ें। १८८९ ई० मे मालवीयजी 'हिन्दुस्तान' की नौकरी छोड़कर चले गये। इसके बाद ये इण्डियन ओपिनियन (भारतीय मत) के सम्पादन में पं० अयोध्यानाथ का हाथ बटाने लगे।

इधर पं० बालकृष्ण भट्ट ने 'अभ्युदय' पत्र के सम्पादन का भार के ऊपर छोड़ दिया। मालवीयजी ने आर्थिक कठिनाइयो के बीच

दो वर्षों तक इस पत्र का सम्पादन किया। प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य निर्वाचित कर लिये जाने पर इन्होंने इस पत्र के सम्पादन का भार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन पर छोड़ दिया। मालवीयजी के ही उद्योग से सन् १९०९ ई० में विजया-दशमी के शुभ अवसर पर 'लीडर' का प्रकाशन आरम्भ किया गया। 'न्यूज पेपर्स लि०' के अन्तर्गत निकाले जाने वाले पत्र 'लीडर' के प्रथम अध्यक्ष पण्डित मोतीलाल नेहरू हुए। तत्पश्चात् बीस वर्षों तक मालवीयजी इसके अध्यक्ष पद पर कार्य करते रहे। १९२६ ई० में इस प्रेस में स्वचालित मशीनें मँगायी गयीं। १९२४ ई० में 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का दायित्व मालवीयजी ने अपने ऊपर लिया और इन्हीं के प्रयासों से इसका हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित किया जाने लगा। २० जुलाई १९३३ ई० में गुरुपूर्णिमा के अवसर पर साप्ताहिक 'सनातन धर्म' का सम्पादन मालवीयजी के संरक्षण में आरम्भ किया गया। १८९८ ई० में 'हिन्दुस्तान रिव्यू' प्रकाशित होने पर मालवीयजी ने उसे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया। १९०३ई० में दूसरे पत्र 'इंडियन पीपुल्स' को भी इनका आशीर्वाद मिला। मालवीयजी ने इन पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का व्यापक प्रचार तथा प्रसार किया। ये पत्रों में अश्लील विज्ञापनों के घोर विरोधी थे।

वकालत

राजा रामपाल सिंह, पंडित सुन्दरलाल तथा पंडित अयोध्यानाथ की प्रेरणा से मालवीयजी वकालत की परीक्षा देने को बाध्य हुए। इसे बुरा पेशा मानते हुए भी वे मित्रों की बात टाल न सके। इसके लिए राजा रामपाल सिंह 'हिन्दुस्तान' पत्र छोड़ने के बाद भी बराबर अपनी शर्त के अनुसार २५०) प्रतिमास मालवीय-जी के पास भेजते रहे। १८९१ ई० में मालवीयजी ने एल-एल०बी० की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली।

तत्पश्चात् इन्होंने पं० वेनीराम के साथ प्रैक्टिस आरम्भ की। बाद में इन्होंने स्वतन्त्र रूप से स्वतः प्रैक्टिस आरम्भ कर दी और थोड़े ही दिनों में इनकी वकालत चमक उठी। वकालत का काम इनके पास इतना अधिक आने लगा कि ये इसे अपने मित्रों में बाँटने के लिए बाध्य हो जाते थे। तेजबहादुर सप्रू को इस पेशे में प्रथम बार मालवीयजी ही ले आये थे और उन्हें अपने मुकदमे देकर, प्रैक्टिस कराने लगे, जो कालान्तर में उच्चकोटि के वकील हुए।

कुशल अधिवक्ता : (चौरी-चौरा काण्ड)

४ फरवरी १९२३ ई० में गोरखपुर जनपद के चौरी-चौरा ग्राम में एक भयंकर दुर्घटना हुई। जनता ने क्रुद्ध होकर पुलिस थाने में आग लगा दी, जिसमें पुलिस थानेदार और सिपाही कुल २१ आदमी जल कर मर गये। इस काण्ड में दो सौ पचीस व्यक्तियों पर मुकदमा चला। न्यायाधीश ने इनमें १७० व्यक्तियों

को मृत्युदण्ड दिया। यह मामला उच्च न्यायालय मे विचाराधीन था। मालवीयजी उन दिनो प्रैक्टिस छोड़ चुके थे, किन्तु स्वाधीनता के सेनानियों के आग्रह पर इस मुकदमे की पैरवी करना इन्होंने स्वीकार कर लिया। निरन्तर ७ दिनों तक गम्भीरतापूर्वक मुकदमे को समझ कर, इन्होंने बहस की। इनके अकाट्य तर्क से १५१ *व्यक्ति मृत्युदण्ड से मुक्ति पा गये।* बहस के दौरान न्यायाधीश ने कई बार मालवीयजी के अकाट्य तर्कों की प्रशसा की और अपने निर्णय मे लिखा—'इन अभियुक्तों को चाहिए कि ये मालवीयजी को धन्यवाद दे, क्योंकि इन्ही के अकाट्य तर्क और बहस के कारण इन लोगो की जानें बच पायी है।'

नागरीलिपि का न्यायालयों मे प्रयोग

मालवीयजी ने निरन्तर तीन वर्ष के कठिन परिश्रम के बाद न्यायालयो मे प्रचलित फारसी लिपि के साथ नागरी लिपि को भी स्वीकृत कराया। इसके लिए मालवीयजी ने जो आवेदन पत्र तैयार किया था, उसमे प्रसिद्ध विद्वानो तथा प्रशंसको के नागरी लिपि की उत्कृष्टता-सम्बन्धी विचारों का उल्लेख किया गया था। प्रोफेसर मोनियर विलियम, सर आइजैक पिटमैन, चीफ जस्टिस अर्सकिन पेरी आदि के नागरी लिपि की उत्कृष्टता स्वीकार करने का विवरण देते हुए मालवीयजी ने बताया कि फारसी मे शीघ्र काम होने की बात स्वीकार भी कर ली जाय, तो भी नागरी की मनोहरता, सुन्दरता, स्पष्टता, पूर्णता और शुद्धता निर्विवाद है। इस पत्र मे आंकड़ों द्वारा यह बताया गया कि प्रान्त में प्राइमरी स्कूलो में हिन्दी पढने वालो की संख्या उर्दू पढने वालो की दूनी-तिगुनी है। यदि उर्दू लिपि के साथ नागरी लिपि भी व्यवहृत होने लगे तो यह सख्या और भी बढ जायगी। इस आवेदन पत्र मे यह स्वीकार किया गया कि १८९५-९६ई० मे वर्नाकुलर मिडिल स्कूलों मे उर्दू पढनेवालों की संख्या हिन्दी पढनेवालो से चौगुनी है। पर इसका कारण यह बताया गया कि सन् १८७३-७४ मे हिन्दी पढनेवालो की संख्या उर्दू पढ़नेवालों से तिगुनी थी और इस भारी परिवर्तन का मूल कारण सरकार की सन् १८७७ ई० की वह राजाज्ञा है, जिसमे सरकारी कार्यालयो मे नौकरी के लिए उर्दू अथवा फारसी मे एंग्लो वर्नाकुलर परीक्षा पास करना अनिवार्य कर दिया गया था। मालवीयजी ने इस आज्ञा के औचित्य को चुनौती देते हुए न्यायालयों मे उर्दू लिपि के साथ नागरी लिपि के भी प्रयोग पर बल दिया। अन्यान्य प्रमाणो द्वारा हिन्दी भाषा की व्यापकता प्रमाणित करते हुए कहा गया कि हिन्दी सम्पूर्ण उत्तराखण्ड की भाषा है और नागरी अक्षरो का प्रचार पश्चिमोत्तर प्रान्त और अवध (वर्तमान उत्तर प्रदेश) मे शिक्षा के प्रसार के लिए नितान्त आवश्यक है।[९]

इस प्रकार मालवीयजी के तर्कसंगत प्रयास से गवर्नर सर एण्टनी मैकडानल ने प्रान्तीय सरकार की सन् १८७७ई० की वह राजाज्ञा वापस ले ली, जिसने सरकारी

कार्यालयों में दस रुपये या इससे अधिक की नौकरी पाने के लिए उर्दू या फारसी में एंग्लो वर्नाकुलर मिडिल परीक्षा पास करना अनिवार्य बना दिया था। मालवीयजी कुछ अन्य प्रमुख लोगों के साथ प्रान्त के लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर एण्टोनी मेकडानल से मिले और नागरी लिपि के सम्बन्ध में आवेदन पत्र दिया। गवर्नर ने आवेदन पत्र पर विचार करने के बाद १४ अप्रैल सन् १९००ई० में न्यायालयों में फारसी लिपि के साथ नागरी लिपि के चलन की राजाज्ञा जारी कर दी। मुसलमानों ने इस राजाज्ञा का घोर विरोध किया और मालवीयजी पर खुलकर साम्प्रदायिकता का आरोप लगाया, परन्तु बहुत से मुसलमान वकील मालवीयजी से सहमत थे। एक बार मालवीयजी ने एक अरबी नजीर नागरी लिपि में लिखकर हाई कोर्ट में पढ़कर ठीक-ठीक सुनायी। सुनकर प्रसिद्ध एडवोकेट मौलवी जामित अली मुकदमा समाप्त होने पर मालवीयजी का हाथ पकड़कर कहने लगे—'पण्डित साहब, आज मैं नागरी अक्षरों की उम्दगी का कायल हो गया, लेकिन मैं पब्लिक में यह नहीं कहूँगा।'[10]

रचनात्मक कार्य

वकालत के समय मालवीयजी ने प्रयाग की भरपूर सेवा की। ये नगरपालिका के उपाध्यक्ष चुने गये। प्रयाग नगरपालिका के उपाध्यक्ष की हैसियत से इन्होंने नगर की स्वच्छता, सुन्दरता तथा भयंकर महामारी के समय अपने जीवन की परवाह किये बिना पीड़ित जनता की सेवा की।

छात्रावास की कमी के कारण छात्रों का कष्ट देखकर मालवीयजी ने हिन्दू विद्यार्थियों के छात्रावास के लिए घूम-घूम कर चन्दा एकत्र किया और १९०३ई० में इस छात्रावास का निर्माण पूरा हुआ। इसके निर्माण में उस समय लगभग ढाई लाख रुपये लगे, जिसमें एक लाख रुपये सरकार ने दिये, शेष चन्दे से जमा किया गया। 'मेकडानाल हिन्दू बोर्डिंग हाउस' के नाम से प्रसिद्ध इस छात्रावास में दो सौ तीस विद्यार्थियों के रहने की व्यवस्था थी।

मालवीयजी ने पुरुषोत्तमदास टण्डन को आगे कर हिन्दी साहित्य सम्मेलन का कार्यालय प्रयाग में स्थापित करवाया और उन्हें उसका संचालन करने के लिए प्रोत्साहित किया। टण्डनजी और मालवीयजी के सम्बन्ध अतीव निकटस्थ थे। मालवीयजी को टण्डनजी अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। उन्होंने टण्डनजी के विद्यार्थी जीवन में सार्वजनिक सेवा की प्रथम प्रेरणा दी थी।[11]

१९१२ ई० में मालवीयजी ने अर्धकुम्भ के अवसर पर अपने ज्येष्ठ पुत्र रमाकान्त मालवीय को सेवा हेतु प्रोत्साहित किया। उनके पुत्र ने सेवादल का गठन किया और इस अवसर पर जनता की भरपूर सेवा की। बाद में इसी समिति का पुनर्गठन किया गया और इसका नाम 'प्रयाग सेवा समिति' रखा गया।

मालवीयजी इसके अध्यक्ष, प० हृदयनाथ कुंजरू मंत्री हुए। इस समिति ने प्रयाग के बाहर भी जनता की बड़ी सेवा की और १९१८ ई० मे यह अखिल भारतीय संस्था के रूप में व्याप्त हो गयी। बहुत-स स्थानों पर इसी तरह की समितियाँ गठित की गयी। अप्रैल १९१५ ई० मे पण्डित कुंजरू के नेतृत्व में आयोजित स्वयं सेवा की मण्डली मे गाधीजी ने भी सम्मिलित होकर हरिद्वार मे कुम्भ स्नानार्थियो को सेवा की। १९१९ई० मे इस समिति ने मार्शल ला के जमाने मे पजाब की जनता की साहसपूर्वक सेवा की।

१९१८ ई० मे कुम्भ यात्रियों की सेवा हेतु श्रीराम वाजपेयी, शाहजहाँपुर से ब्वाय स्काउटो का एक दल लाये। मालवीयजी और हृदयनाथ कुंजरू उसकी सेवा से बहुत प्रभावित हुए। उनके सहयोग से अखिल भारतीय ब्वाय स्काउट एसोसिएशन की स्थापना की गयी। मालवीयजी चीफ स्काउट तथा पं० हृदयनाथ कुंजरू चीफ स्काउट कमिश्नर नियुक्त हुए। यह सस्था भी देशव्यापी हो गयी, जिसकी अनेक शाखाएँ खुलती गयी। यह समिति बेडिन पावल द्वारा संचालित सस्था से सर्वथा भिन्न थी। यह देशभक्ति पर आधारित थी, जबकि बेडिन पावल के बालचरों को सम्राट् की भक्ति की शपथ लेनी पड़ती थी। इसमें स्काउट देश-भक्ति की शपथ लेते थे और वन्देमातरम् का गीत गाते थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना

मालवीयजी ने अपने सामाजिक जीवन के अन्यान्य कार्यों के बीच शिक्षा के व्यापक प्रसार का महत्व सबसे पहले समझा। उन्होंने देश की प्रगति, विकास और समृद्धि हेतु शिक्षा का सम्यक् ढग मे प्रसार करना आवश्यक समझा। वह उच्चस्तरीय शिक्षा की ऐसी व्यवस्था करना चाहते थे, जिसके द्वारा भारतीय नवयुवकों के चरित्र का निर्माण हो, उनमें देशप्रेम और देशसेवा की भावना का संचार होने के साथ ही भारतोय संस्कृति का समुचित ज्ञान हो। मालवीयजी शिक्षा में भारतीय सस्कृति के समुचित ज्ञान के अतिरिक्त आधुनिक विद्याओं (ज्ञान-विज्ञान आदि) का विशिष्ट ज्ञानार्जन भी आवश्यक समझते थे।[११] भारतीय सस्कृति से अत्यधिक प्रभावित विदुषी महिला श्रीमती एनीबेसेन्ट ने वाराणसी मे सन् १८९८ ई० में सेन्ट्रल हिन्दू कालेज की स्थापना की। सन् १९०४ ई० में वाराणसी मे काशी नरेश महाराज प्रभुनारायण सिंह की अध्यक्षता मे एक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें मालवीयजी ने काशी विश्वविद्यालय की योजना प्रस्तुत की।

सन् १९०५ ई० मे हिन्दू समाज और धर्म की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उन्होने ज्ञान के व्यापक प्रसार और धर्म की प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करना देश की उन्नति के लिए आवश्यक बताया।[१२] ३१ दिसम्बर १९०५ ई० मे उक्त योजना वाराणसी के टाउनहाल के मैदान में श्री वी०एन० महाजन की अध्यक्षता

मे आयोजित सभा मे मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत की गयी। वहाँ उपस्थित जन-समुदाय ने मालवीयजी की योजना की सराहना की और उनका प्रस्ताव स्वीकार किया। दूसरे दिन इसकी घोषणा कांग्रेस के अधिवेशन मे कर दी गयी। १९०६ ई० मे कुम्भ के अवसर पर सनातन धर्म महासभा के सम्मेलन मे गोवर्धन मठ के परमहंस परिव्राजकाचार्य जगद्गुरु शंकराचार्य की अध्यक्षता मे भी इस योजना पर भी विचार हुआ और निश्चित किया गया कि 'भारतीय विश्वविद्यालय' के नाम से वाराणसी मे प्रस्तावित विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय। १६ मार्च १९०६ ई० मे शृङ्गेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को शिलान्यास के लिए निमंत्रित किया गया। इन्होने इस योजना का स्वागत करते हुए निश्चित तिथि पर शिलान्यास के लिए आने मे असमर्थता व्यक्त की। पश्चात् ४ वर्ष तक कार्य ठप पड़ा रहा।

हम देखते है कि इस प्रकार के कार्यों द्वारा मालवीयजी सुधार, परिवर्तन और राष्ट्रीयता के प्रसार हेतु आनेवाली पीढी तैयार करना चाहते थे। उसमे नैतिक और शास्त्रीय मूल्यो के अनुसार ज्ञान-विज्ञान से युक्त आनेवाली पीढी मे नव-जागृति तथा शिक्षा प्रसार करना चाहते थे। ये कार्य वह धार्मिक गुरुओं द्वारा सम्पादित करना चाहते थे। इसीलिए इन्होंने जगद्गुरु शंकराचार्य को आमंत्रित किया था। यहाँ मालवीयजी देश के साधु-समाज को समाज पर केवल बोझ के रूप मे नही रहने देना चाहते थे। वह चाहते थे कि साधु लोग अपने सामाजिक प्रभाव को शिक्षा-प्रसार तथा लोक-कल्याण कार्य मे लगायें। इस प्रकार मालवीय-जी के सृजनात्मक विचारो से स्पष्ट होता है कि वह साधु समाज को भी सृजनात्मक कार्य मे लगाना चाहते थे। वह समझते थे कि साधु-समाज देश की जो सेवा कर सकता है, वह सर्वसाधारण के बूते के बाहर है। साधुओ पर लोगो की अपार श्रद्धा है, इसलिए साधुओं के उपदेश का प्रभाव सर्वसाधारण पर अधिक पड़ेगा।

१९१० ई० मे मालवीयजी ने इस कार्य पर पुनः बल दिया और योजना को आगे बढाने का निर्णय लिया। १९०७ ई० मे एनी बेसेन्ट ने 'यूनिवर्सिटी ऑफ इण्डिया' नाम से काशी मे विश्वविद्यालय की स्थापना का निश्चय किया तथा उन्होंने चार्टर के लिए सम्राट् के पास आवेदन पत्र भेजा। एनीबेसेन्ट चाहती थीं कि उनका प्रस्तावित विश्वविद्यालय आवासीय विश्वविद्यालय हो, जो कालेजो को भी अपने से सम्बद्ध कर सके। १९१० ई० मे भारत सरकार ने यह योजना भारतमंत्री के पास भेज दी तथा भारतमंत्री ने उसे अनुमति के लिए सरकार के पास वापस भेज दिया।

१९११ई० मे मालवीयजी और श्रीमती एनीबेसेन्ट ने काशी मे विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए मिलकर काम करने का निश्चय किया। हिन्दू यूनिवर्सिटी की स्थापना हेतु २८ नवम्बर १९११ ई० को सर रामेश्वर सिंह की अध्यक्षता में

हिन्दू यूनिवर्सिटी के नाम से काशी में एक संस्था स्थापित की गयी। डॉ० सुन्दर लाल मंत्रीपद सँभालने के लिए तैयार हो गये और सर गुरुदास बनर्जी, श्रीमती बेसन्ट और डॉ० रासबिहारी घोष उपाध्यक्ष चुने गये। श्री भगवानदास, श्री गोकर्णनाथ मिश्र, श्री कृष्णराम मेहता, श्री इकबाल नारायन गुर्टू तथा श्री मंगला प्रसाद संयुक्त मंत्री हुए। बीकानेरनरेश महाराज सर गंगा सिंह सक्रिय सहयोग हेतु तैयार हो गये। उक्त विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु मालवीयजी ने चन्दे का संकलन आरम्भ किया और देश भर का भ्रमण करके अमीर-गरीब, हिन्दू-मुसलमान सबसे चन्दा एकत्र किया। विश्वविद्यालय के चन्दे के लिए इन्होंने बड़ी लगन के साथ घोर परिश्रम किया। मालवीयजी को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दे की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हैं,[१३] उन सबका उल्लेख करना यहाँ सम्भव नहीं है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए समाज के सभी वर्गों और सभी सम्प्रदायों के साथ मालवीयजी ने किस प्रकार का व्यवहार करके चन्दा एकत्र किया था, इसके लिए कतिपय महत्वपूर्ण घटनाएँ उल्लेखनीय हैं, जिनसे उनकी व्यवहार-कुशलता और सामाजिकता का सहज बोध होता है।

एक बार मालवीयजी निजाम हैदराबाद के यहाँ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दा लेने गये थे। निजाम ने उन्हें चन्दा देने से साफ इन्कार करते हुए कहा कि 'मैं हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए चन्दा कदापि नहीं दे सकता।' मालवीय जी लौट रहे थे कि मार्ग में किसी धनाढ्य व्यक्ति का शव जा रहा था। मुट्ठी भर-भर कर रुपये शव के ऊपर फेंके जा रहे थे। मालवीयजी भी वे रुपये लूटने लगे। राष्ट्रीय स्तर का नेता होने के कारण कुछ लोगों ने उन्हें पहचान लिया और कहा—'महाराज आप महान पुरुष हैं। आपकी ख्याति सारे देश में फैली हुई है। आप यह क्या कर रहे हैं ?' मालवीयजी ने कहा कि काशी जाकर मैं क्या उत्तर दूँगा कि हैदराबाद से खाली आया हूँ ? मेरा संकल्प है कि मैं कहीं से खाली नहीं लौटूँगा। अतः ये रुपये विश्वविद्यालय के लिए हैदराबाद के नाम से जमा किये जायेंगे।' यह सूचना निजाम के यहाँ पहुँची तो वे बहुत लज्जित हुए और मालवीयजी को बुलाकर विश्वविद्यालय के लिए पर्याप्त दान दिया।[१३]

इसी प्रकार की एक और घटना भी महत्वपूर्ण है। महामना एक नवाब के यहाँ विश्वविद्यालय के लिए चन्दा लेने गये थे। नवाब ने चन्दा देने से इनकार करते हुए कहा कि 'मैं चन्दा नहीं दे सकता।' मालवीयजी ने दो लाख चन्दा देने का प्रस्ताव रखा था, जो घटते-घटते दस रुपये तक पहुँच गया था। नवाब ने इतना देने से भी इनकार कर दिया। जाते-जाते मालवीयजी ने अन्तिम करते हुए कहा कि 'मैं कहीं से वापस नहीं हुआ हूँ। आपसे अनुरोध है कि तो दे दीजिए।' ऐसा कहते हुए उन्होंने अपना श्वेत दुपट्टा पसार दिया नवाब ने झट अपने पैर का जूता उतारा और दुपट्टे में डाल दिया।

अशोभनीय घटना से जरा भी विचलित नहीं हुए और उस जूते को यत्नपूर्वक काशी लाये। काशी पहुँचकर इन्होंने समाचार-पत्रों में विज्ञापन निकाला कि 'अमुक नवाब ने विश्वविद्यालय के लिए मालवीयजी को अपना जूता दान दिया है, जिसको अमुक तिथि पर नीलाम किया जायगा।' इस समाचार को पढ़कर उक्त नवाब बहुत लज्जित हुआ और उसने स्वयं आकर क्षमा माँगी और अपना जूता खासी रकम देकर क्रय किया।

राजा बलदेवदासजी बिरला ने एक बार घोषणा की कि वे गंगा में किसी अधिकारी व्यक्ति को दान करेंगे। इस प्रकार दान लेना बड़ा ही गर्हित समझा जाता है। अतः कोई अधिकारी व्यक्ति दान लेने के लिए तैयार नहीं हो रहा था। मालवीयजी को जब यह सूचना मिली तो इन्होंने बिरलाजी को लिखा कि मैं इस प्रकार का दान लेने को तैयार हूँ। इस बात पर काशी के विद्वत्-समाज में इनकी बड़ी कटु आलोचना की गयी, किन्तु यह अपनी बात पर दृढ़ रहे और इन्होंने निश्चित तिथि पर उक्त दान लिया। बिरलाजी ने भी मालवीयजी जैसे अधिकारी व्यक्ति के दान लेने की सूचना मिलने पर दान की राशि काफी बढ़ा दी। उक्त दान के समय काफी भीड़ एकत्रित हो गयी और मालवीयजी के प्रति बड़ी काना-फूसी हुई। मालवीयजी ने उक्त दान लेने के साथ ही तुरन्त उस दान की धनराशि में अपने पास से कुछ रुपये मिलाकर, वहीं उक्त दान काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को दे दिया। इस पर उपस्थित आलोचकों के साथ ही भीड़ ने 'साधु-साधु' के नारे के साथ 'महामना जिन्दाबाद' के नारे से इनका स्वागत किया।

एक बार एक बहुत बड़े सेठ को व्यापार में घाटा लगा। बाजार से उसकी साख जाती रही। दिवालिया होने की स्थिति पैदा हो गयी। वह महामना मालवीयजी के पास अपनी दयनीय स्थिति के सम्बन्ध में परामर्श हेतु आया। मालवीयजी ने कहा—'आप पाँच लाख रुपये का चेक हिन्दू विश्वविद्यालय के नाम दे दीजिए। आपकी स्थिति सुधरने पर वह चेक विश्वविद्यालय के खाते में जमा किया जायगा। इस दान की सूचना समाचार पत्रों में भेज दी जायगी कि अमुक सेठ ने पाँच लाख रुपये का दान हिन्दू विश्वविद्यालय को दिया है। इससे आपकी साख जम जायगी और आप अपनी आर्थिक स्थिति सँभाल सकेंगे। सेठ आश्चर्यचकित होकर मालवीयजी की ओर देखने लगा। मालवीयजी ने कहा—'आप मुझसे परामर्श लेने आये हैं, फिर मेरी बात क्यों नहीं मानते?' उस सेठ ने चेक बुक निकाल कर पाँच लाख का चेक काटकर मालवीयजी को दे दिया। इस समाचार के प्रकाशन से उस सेठ की साख इतनी जम गयी कि दिवाला निकलते-निकलते बच गया।[१४] वह अपनी स्थिति सँभाल कर व्यापार में पुनः सफल हो गया। मालवीयजी के भाषण में ऐसी शक्ति थी कि एक दिन मालवीयजी पटना की एक सार्वजनिक सभा में बोल रहे थे। देहात की भीड़ अधिक थी, इसलिए मालवीयजी देहाती भाषा में बोल रहे थे। इनका भाषण इतना प्रभाव-

दाली था कि देहात की स्त्रियाँ प्रभावित होकर अपने चाँदी के जेवर छल्ले आदि मंच पर फेंकने लगीं। मालवीयजी ने बड़े प्रेम से उन्हें बटोरा और कहा कि ये आभूषण मेरे लिए लाखों रुपये के दान से अधिक मूल्यवान हैं। कोई सज्जन इन चीजों की कीमत चुकाना चाहेंगे? इस पर एक धनी व्यक्ति ने दस हजार रुपये देकर उन आभूषणों को खरीद लिया। मालवीयजी में विलक्षण वाक्पटुता थी। इस प्रकार अपने अथक प्रयास द्वारा मालवीयजी ने विश्वविद्यालय के लिए भूमि, मकान तथा करोड़ो रुपये नकद उस जमाने में एकत्र किया था। २७ नवम्बर १९१४ ई० को सेन्ट्रल हिन्दू कालेज, सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल तथा रणवीर संस्कृत पाठशाला हिन्दू यूनिवर्सिटी सोसाइटी में मिला दिये गये।

सरकार से विरोध

शिक्षा के माध्यम एवं सरकारी नियंत्रण के सम्बन्ध में विश्वविद्यालय के प्रबन्धको तथा भारत सरकार में मतभेद हो गया। मालवीयजी अंग्रेजी के बजाय हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बनाना चाहते थे। उनका विचार था कि भारतीय भाषाओं द्वारा ही अधिकांश जनता शिक्षित हो सकती है। परन्तु अंग्रेज सरकार माध्यम के प्रश्न पर उक्त विचार से सहमत नहीं थी। अन्त में शिक्षा के व्यापक महत्व को देखते हुए मालवीयजी शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनाने को तैयार हो गये, परन्तु वे कालान्तर में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को बनाने के अपने विचार पर दृढ़ थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय विधेयक

मालवीयजी के अथक प्रयास से २२ मार्च १९१५ ई० को सर हारकोर्ट बटलर ने इम्पिरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल प्रस्तुत किया।[१९] तत्पश्चात् १ अक्टूबर १९१५ ई० को बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ऐक्ट पारित हुआ। लार्ड हार्डिंग ने ४ फरवरी १९१६ ई० अर्थात् माघ शुक्ल प्रतिपदा सं० १९७२ विक्रमीय को काशी में इस विश्वविद्यालय का शिलान्यास किया। इस समारोह में जनसाधारण के अतिरिक्त देश-विदेश के अन्यान्य नेता तथा जन-प्रतिनिधि उपस्थित थे। इस अवसर पर मालवीयजी तथा गांधीजी आदि ने इस विश्वविद्यालय की स्थापना तथा कार्य पर प्रकाश डाला। १ अप्रैल १९१६ ई० को यूनिवर्सिटी ऐक्ट चालू कर दिया गया। मैसूर के राजा कृष्णराज वादियर चांसलर, ग्वालियर नरेश माधवराव सिंधिया प्रोचांसलर तथा डॉ० सुन्दर लाल वाइस चांसलर नियुक्त किये गये। १३ फरवरी १९१८ ई० को कुलपति डॉ० सुन्दरलाल का निधन हो गया और उनके स्थान पर १३ अप्रैल १९१८ ई० को सर पी० एस० शिवस्वामी अय्यर कुलपति निर्वाचित हुए। परन्तु उन्होंने ८ मई सन् १९१९ ई० को त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर २९ नवम्बर १९१९ ई० को मालवीयजी ३ वर्ष के लिए कुलपति निर्वाचित हुए।

इसके बाद वह सितम्बर १९३९ ई० तक इस पद पर २० वर्षों तक निरन्तर चुने जाते रहे। कुलपति पद पर रहते हुए मालवीयजी गुजारे के लिए विश्वविद्यालय से कोई भी वृत्ति नहीं लेते थे। इन्होंने अपनी सेवाएँ राष्ट्र को समर्पित कर दी थीं। अत. इनके व्यक्तिगत खर्च का भार मालवीयजी के सचिव के माध्यम से राष्ट्ररत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त तथा उद्योगपति बिरलाजी वहन करते थे। तत्पश्चात् मालवीयजी के विशेष अनुरोध से सर राधाकृष्णन ने कुलपति का पद-भार संभाला।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीयजी की प्रगतिशील विचारधारा का 'प्रतीक' है। इस विश्वविद्यालय के मानचित्र से लेकर, प्राचीन धर्म-दर्शन के साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था, मालवीयजी की कल्पना की साकार अभिव्यक्ति है। इन्होंने इस विश्वविद्यालय में छात्रावास, कर्मचारी आवास, अध्यापक तथा प्रोफेसर आवास आदि के साथ ही विशालकाय महिला, संस्कृत, कला, विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, तकनीकी संस्थान आदि महाविद्यालयों के भवनों का निर्माण इस प्रकार कराया है कि उनकी योजना के अनुसार इन महाविद्यालयों तथा आवासों, छात्रावासों आदि का शताधिक वर्षों तक पर्याप्त विकास और विस्तार स्वाभाविक रूप से बिना किसी बाधा के सम्भव है। उन्होंने वर्तमान और भविष्य को ध्यान में रखकर योजना बनायी थी। मालवीयजी ने सौ वर्ष बाद की जनसंख्या के विस्तार और विश्वविद्यालयों में होने वाली भारी भीड़ को ध्यान में रखकर इस विश्वविद्यालय की योजना बनायी थी। आज भी अभियन्तागण मालवीयजी की योजना के अनुसार ही इस विश्वविद्यालय का विस्तार करने में लगे हैं। अभियन्ताओं के लिए उनकी योजना के परे निर्माण कार्य आदि करना असम्भव है। आज भी इस विश्वविद्यालय के सभी कार्य उनकी योजना के अनुसार ही हो रहे हैं। यह मालवीयजी की दूरदर्शी सृजनशील शक्ति का ही द्योतक है।

अर्ध चन्द्राकार में स्थित इस विश्वविद्यालय के चान्द्र केन्द्र बिन्दु पर केन्द्रीय कार्यालय की स्थापना की गयी है, जहाँ से प्राय सभी महाविद्यालयों तथा छात्रावासों आदि की दूरी न्यूनतम है। उनके द्वारा निर्मित भवनों की वास्तु कला भारतीय वास्तुकला की 'प्रतीक' है। इन्हें देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मालवीयजी की विश्वविद्यालय की योजना गणितीय अंकों २ + २ = ४ की भाँति यथार्थ है।

इस विश्वविद्यालय का उद्देश्य भी अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न है। विश्वविद्यालय की ३१ दिसम्बर १९०५ ई० की योजना के अनुसार हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डालते हुए ज्ञान के व्यापक प्रसार और धर्म की पुरानी प्रतिष्ठा को फिर से स्थापित करना देश की उन्नति के लिए आवश्यक बताया गया। उसमें कहा गया है कि 'भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा

है कि प्रत्येक मनुष्य अपने को एक वृहत् समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करे, लोक-कल्याण और लोक-सग्रह को परम पुरुषार्थ समझे ।[26] इस प्रकार हिन्दू धर्म और प्राचीन भारतीय विद्याओ की शिक्षा के साथ ही शिक्षा को प्रस्तावित विश्वविद्यालय का लक्ष्य निर्धारित करते हुए उसके पाठ्य-क्रम का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया ।[27] इसका उद्देश्य गुरुकुलो की भांति शिक्षा के साथ-साथ चरित्र निर्माण और विकास करना भी है। यहाँ प्रचीन धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि विषयों के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था है। धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की नैतिक और भौतिक अन्तर्दृष्टि के प्रशिक्षण द्वारा मालवीयजी इस सस्थान के माध्यम स स्वाधोनता सेनानियो को तैयार करना चाहते थे। देशभक्ति और राष्ट्रीयता को वह राष्ट्रीय ऐक्य के लिए आवश्यक समझते थे। यही कारण है कि जब अग्रेज प्रशासको ने राष्ट्रीय आन्दोलन मे भाग लेने वाले छात्रो को दण्डित करने के लिए अधिसूचना जारी की तो मालवीयजी ने इसे मानने स साफ इन्कार कर दिया और कहा कि जब आप लोग अपने देश मे राष्ट्रीयता और देशभक्ति को महत्वपूर्ण मानते है तो आप लोगो को दूसरे देश के देशभक्तो के प्रति ऐसा दुराग्रह नही करना चाहिए। विश्वविद्यालय को सरकारी अनुदान मिले या न मिले, देशभक्तो को दण्डित नहीं किया जायगा। 465

अंग्रेज भारतवासियो का भौतिक विकास नही चाहते थे। मालवीयजी ने अपनी दूरदर्शी मेधावी दृष्टि द्वारा ज्ञान-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के महत्व को सर्वप्रथम समझ लिया था। उनका काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही देश का प्रथम विश्वविद्यालय है, जहाँ देश मे प्रौद्योगिकी की आधुनिक शिक्षा आरम्भ हुई थी। ससार मे जहाँ कही भी इस विद्या के भारतीय विशेषज्ञ हैं, उन्हे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का ही छात्र होने का गौरव प्राप्त रहा है। अत काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ही देश की प्रथम एकमात्र सस्था है, जहाँ आधुनिकता के द्योतक आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा तकनीकी शिक्षा का सूत्रपात हुआ था। मालवीयजी चरित्र निर्माण को सर्वोपरि स्थान देते थे। परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण का 'प्रतीक' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का निर्माण उन्होने राष्ट्रीय और शिक्षा के व्यापक महत्व को ध्यान मे रखकर किया था। यही कारण है कि देश-विदेश के अन्यान्य विश्वविद्यालयों तथा कार्यशालाओ मे इन विषयों के आदि प्रसारणकर्ता प्राध्यापकों को इसी विश्वविद्यालय का स्नातक होने का श्रेय प्राप्त है। मालवीयजी जहाँ धर्म, दर्शन तथा चरित्र विकास को मानवता की सत्प्रवृत्ति के विकास के लिए आवश्यक मानते थे, वहाँ वह ज्ञान-विज्ञान तथा प्रोद्योगिकी शिक्षा को भौतिक विकास और समृद्धि का सूचक मानते थे। उनका विश्वविद्यालय प्राचीन धर्म-दर्शन तथा ज्ञान-विज्ञान का अद्भुत समन्वय है। फरवरी १९४२ ई० में मालवीयजी ने दीक्षान्त भाषण मे मुख्य अतिथि के रूप मे महात्मा गाधी को आमन्त्रित किया था। इस

अवसर पर कांग्रेस महासमिति के सदस्य पं० जवाहरलाल नेहरू, सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभ भाई पटेल, मौलाना अबुल कलाम आजाद, आचार्य कृपलानी, डॉ० जाकिर हुसेन आदि देशभक्त मालवीयजी के प्रभाव से इसमें सम्मिलित होने के लिए आये थे।

मालवीयजी में देश के विविध धर्मावलम्बियों की अनेकता को एकता के सूत्र में बांधने की अद्भुत शक्ति थी। उन्होंने जहाँ एक ओर स्लाइड के साथ सर सी०वी० रमण का वैज्ञानिक भाषण आयोजित कराया था, वहीं दूसरी ओर ओंकारनाथ ठाकुर के निर्देशन में कामायनी का संगीत रूपक तथा महाराजकुमार विजयानगरम के संयोजकत्व में क्रिकेट के सर्वोच्च खिलाड़ियों का क्रीडा प्रदर्शन भी आयोजित कराया था।[१८] मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वह सदैव अनेकता में एकता की स्थापना करना चाहते थे। अतः उनके धर्म-सम्मेलनों में हिन्दू, मुसलमान, इसाई आदि समान रूप से भाग लेते थे। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को स्वीकार करते हुए वह भारतीय धर्म-दर्शन आदि का समन्वय करते हैं। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति अपनाने वाले मालवीयजी भारतीय शिक्षा पद्धति के चरित्र निर्माण के पक्ष पर सर्वाधिक बल देते थे। वह इस विश्वविद्यालय को आधुनिक युग का गुरुकुल कहा करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी का यह विश्वविद्यालय संसार के अन्यान्य विश्वविद्यालयों से सर्वथा भिन्न अपनी उपर्युक्त विशेषताओं को लिए हुए है, जो मालवीयजी की प्रगतिशील विचारधारा का द्योतक है।

इस विश्वविद्यालय के लिए मालवीयजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन की ओर से बहुत कुछ अपना ध्यान हटाकर, इसके लिए अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया था। पार्लियामेन्ट के एक वरिष्ठ सदस्य कर्नल वेन के शब्दों में—'मालवीयजी यदि राजनीति में न आते तो वह शिक्षा-क्षेत्र के सबसे बड़े नेता होते। यदि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का भरण-पोषण उन्हें न करना पड़ता तो उन्हें एक महान् राजनीतिज्ञ समझा जाता।'[१९] इस प्रकार उपर्युक्त कथन के अनुसार मालवीयजी को शिक्षा अथवा राजनीति में अपना सम्पूर्ण योगदान देने का अवसर नहीं मिला; किन्तु वह दूरदर्शी व्यक्ति थे। शिक्षा के क्षेत्र में समयाभाव के कारण वह अपने ज्ञान और अनुभव को पुस्तकीय स्वरूप नहीं दे सके थे, परन्तु उनके कार्य का स्वरूप व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देने वाला होता था। जीवन के अन्य कार्यों की भाँति उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में इस विश्वविद्यालय के माध्यम से शिक्षा-व्यवस्था का साकार स्वरूप प्रस्तुत कर दिया है, जो शिक्षा से सम्बन्धित सिद्धान्त या परिभाषा निर्माण की अपेक्षा कहीं अधिक कारगर और प्रायोगिक लब्धि है। इसके माध्यम से वह ज्ञान-विज्ञान, धर्म, दर्शन, कला, चरित्र निर्माण, राष्ट्रीयता आदि का नव निर्माण करना चाहते थे। यही मालवीयजी तथा उनके इस विश्वविद्यालय की अद्वितीय विशेषता है।

यह विश्वविद्यालय मालवीयजी को प्राणो से भी बढकर प्रिय था। इसका वह अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक पोषण करते रहे। जब कभी सरकारी सहायता की कमी के कारण अथवा राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने के कारण इस विश्वविद्यालय का अनुदान बन्द हुआ अथवा इसकी विस्तृत योजना के अनुसार अनुदान नही दिया गया, मालवीयजी ने इस विश्वविद्यालय को विकासोन्मुखी योजनाएँ आर्थिक कमी के कारण कभी बन्द नही होने दी। इसके हर सकट के समय उन्होने अपनी लगन और कर्मठ कर्तृत्व द्वारा इसको अभाव बोध नही होने दिया। अनेक अवसर ऐसे आये थे, जब इस विश्वविद्यालय के सकट के समय वे बहुत व्यथित हो उठे और देश के एक कोने से दूसरे कोने तक के दौरे से चन्दा लाकर, इसका आर्थिक सकट दूर करने के लिए एडी-चोटी का पसीना एक किया था। निम्न-लिखित घटना द्वारा उनकी इसके प्रति एकाग्र निष्ठा व्यक्त होती है। एक दिन मालवीयजी बहुत उदास थे। उनके एक मित्र ने उनसे इस उदासी का कारण पूछा। मालवीयजी बोले—'मुझे इंजीनियरिंग कालेज के प्रिंसिपल की माग की पूर्ति हेतु एक लाख रुपयो की तत्काल आवश्यकता है, किन्तु इतनी जल्दी इतने रुपये कहाँ से लाकर दूँ। क्या करूँ, कुछ समझ मे नही आ रहा है।' इतने मे प्रो-वाइसचासलर ध्रुवजी ने आकर मालवीयजी को एक तार दिया। तार महाराज पटियाला का था। उसमे लिखा था—'महाराज ५ लाख रुपये विश्वविद्यालय को दान दे रहे है।' तार पढ़कर मालवीयजी की आँखो मे प्रेमाश्रु उमड पडा। बोले—मेरे लिए भगवान को यह कष्ट उठाना पडा।[20] उनके इसी प्रकार के आन्तरिक त्याग और तपस्या के कारण ही यह विश्वविद्यालय ससार के महान् विश्वविद्यालयों की श्रेणी मे सर्वश्रेष्ठ बन पाया।

मालवीयजी का इस विश्वविद्यालय के माध्यम से प्राचीन धर्म, दर्शन आदि के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा-व्यवस्था, युग के परिवर्तन और विकास के क्षेत्र मे सबसे बडा योगदान है। यहाँ आधुनिक, पुनर्जागरण एव परिवर्तन की 'प्रतीक' युवा पीढ़ी का निर्माण उनके विचारो के अनुसार इस विश्वविद्यालय के माध्यम से होता है, जो मालवीयजी की परिवर्तन और आधुनिकीकरण के क्षेत्र मे युगो तक चलती रहने वाली सृजनात्मक देन है।

सन् १८८६ ई० मे मदनमोहन मालवीय अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन मे भाग लेने अपने गुरु पं० आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ कलकत्ता गये थे। वहाँ अपने गुरु की अनुमति से श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव के समर्थन मे उनका प्रथम ऐतिहासिक भाषण हुआ, जिसका कुछ अश इस प्रकार है—'·······प्रतिनिधित्व के बिना कोई टैक्स नही, यह ब्रिटिश राजनीति का मूल मंत्र है, तब प्रतिनिधि संस्थाओ को प्रतिष्ठित किये बिना भारवासियो पर टैक्सों का बोझ लादते जाना अग्रेजो के लिए सर्वथा अनुचित

''.......अच्छे अंग्रेजों को यह जानकर दु:ख होगा कि भारत सरकार निरंकुश है। वह हमारे साथ गुलामों जैसा व्यवहार करती है।.....प्रतिनिधित्व का अधिकार हमें भी मिलना चाहिए।'' २१

मालवीयजी के उक्त भाषण की प्रशंसा करते हुए सम्मेलन के अध्यक्ष दादाभाई नौरोजी ने कहा था—'इस युवक की वाणी में स्वयं भारत माता मुखरित हो रही है।' सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा—'.....यह भाषण मेरे सुने गये भाषणों में सबसे अच्छा है।.....जिसका कांग्रेस प्रतिनिधियों के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा।' लार्ड ह्यूम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि 'मालवीयजी का यह भाषण श्रोताओं ने तन्मय होकर सुना। उनके धारा प्रवाह भाषण से सभी लोग मंत्रमुग्ध थे।'२२ कांग्रेस के आरम्भ काल से मालवीयजी निरन्तर कांग्रेस में बने रहे और उन्होंने अनेक बार कांग्रेस की अध्यक्षता करने के साथ ही इसके माध्यम से अनेक कार्य एवं सेवाएँ की। मालवीयजी ब्रिटिशकालीन भारतीय संसद के अनेक दशकों तक सदस्य रहे और उन्होंने भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व किया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, ब्रिटिशकालीन भारतीय संसद, धार्मिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में उनके कार्यों का विस्तृत वर्णन एक विशद ग्रन्थ-लेखन का विषय है। अतः यहाँ उनमें से कतिपय घटनाओं का उल्लेख मात्र किया जा सकता है, जिनसे उनके अन्तिम समय की सेवाओं के आधार पर जीवन के युवाकाल की सेवाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। मालवीयजी अनेक मतभेदों के बावजूद भी 'स्वराज्य' लक्ष्यप्राप्ति हेतु कांग्रेस में बराबर बने रहे।

राजनीति में मालवीयजी के सद्‌व्यवहार की अपूर्व शक्ति थी। वे नरम दल के नेता थे। कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में करने का निश्चय हुआ। अध्यक्ष महान् राजनीतिज्ञ लोकमान्य तिलक को बनाया जाना तय था। बहुमत तिलकजी के पक्ष में था, यद्यपि तिलकजी इस पद के इच्छुक नहीं थे। मालवीयजी ने अपने प्रयास द्वारा संघर्ष में समझौतावादी अपने कार्यकौशल द्वारा सदस्यों को समझाकर, मोतीलाल नेहरू को अध्यक्ष बनवाया और कांग्रेस का आन्तरिक संघर्ष समाप्त कराया। उस समय अंग्रेजी राज्य था। कांग्रेस का अध्यक्ष होना बड़े ही गौरव की बात मानी जाती थी। उस समय का उनका उक्त कार्य उनके अद्‌भुत व्यक्तित्व का परिचय देता है।

अन्तिम समय में जब वे बहुत वृद्ध हो गये थे, बराबर कांग्रेस की सेवा में तत्पर रहे। १९३३ ई० में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में उन्हें पुन: अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। परन्तु वे कई हजार लोगों के साथ मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिए गये और पुलिस ने सम्मेलन स्थल पर घोर दमन और अत्याचार किया, जिसका जेल से छूटने के बाद मालवीयजी ने निरीक्षण किया और भर्त्सना की।

उन्होने सरकार पर पाशविक दमन का आरोप लगाया। मालवीयजी के इस वक्तव्य पर असेम्बली के २५ सदस्यों ने भारत सरकार के गृहमंत्री से अनुरोध किया कि मालवीयजी के आरोपों की खुली जाँच की जाय।[23]

इसके पूर्व १९३२ ई० मे भी काग्रेस की स्थानापन्न अध्यक्ष श्रीमती सरोजिनी नायडू ने मालवीयजी से दिल्ली अधिवेशन की अध्यक्षता के लिए अनुरोध किया तो मालवीयजी ने इसे स्वीकार करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित कराया—'काग्रेस के प्रायः जन्मकाल से ही उसके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है। कई अवसरों पर कुछ महत्व के प्रश्नों पर मतभेद के बावजूद भी उसके प्रति मेरी श्रद्धाभक्ति मे कमी नही आने पायी है। मै सदा कांग्रेस के द्वारा ही देश सेवा का यत्न करता रहा हूँ। अत इस अवसर पर काग्रेस के सिद्धान्त, विचार और कार्य का पथ प्रदर्शक बनने का आदेश मेरे लिए धर्मादेश है, जिसका पालन करना अवश्य ही मेरा कर्तव्य है।'[24]

इस अधिवेशन मे पहुँचने के पूर्व मालवीयजी तथा अन्यान्य काग्रेस के कार्यकर्त्ता जो देश के अनेक भागो से दिल्ली आ रहे थे, बीच मे ही गिरफ्तार कर लिए गये। इस अवसर पर उस दिन, दिन भर अधिवेशन स्थल पर स्वयसेवकों के जत्थे निरन्तर आते और गिरफ्तार होते रहे। हजारों कार्यकर्त्ता गिरफ्तार हुए और मालवीयजी के आवाहन पर आन्दोलन चलता रहा।

मालवीयजी अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक देश और काग्रेस की सेवा पहले की ही भाँति करते रहे। उनकी वृद्धावस्था देखते हुए महात्मा गाधी उनसे मिलने आये और उन्होने मालवीयजी से अनुरोध किया कि—'आप देश की चिन्ता कब छोड़ेंगे, बहुत वृद्ध हो गये है····आप मेरे ऊपर जो भार छोड़ना चाहते हो छोड दें, पर आप सब चिन्ता छोड दे और अपनी शक्ति मुझे दे दें।'[25]

जलियाँवाला काण्ड पर मालवीयजी संसद मे लगातार तीन दिन तक बोलते रहे। भाषण सुनकर सरकारी अधिकारियो की आँखों मे भी आँसू आ गये थे। दर्शक दीर्घा मे बैठी अधिकारियो की कई महिलाएँ बेहोश हो गयी थी। वहाँ उपस्थित जन-समुदाय स्तब्ध था। गृहमत्री विसेंट स्मिथ की पत्नी यह कहते सुनी गयी कि 'मेरे पति पण्डित जी का मुकाबला नही कर सकते।' इगलैण्ड के पत्रो मे मालवीयजी की तुलना ग्लैडस्टन तथा डिजराइली तक से की गयी जो उस देश के महानतम वक्ता माने जाते थे। उन्होने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि एक व्यक्ति जो न तो अग्रेज है और न ही उसकी मातृभाषा अग्रेजी है, इस प्रकार अग्रेजी मे धारावाहिक भाषण दे सकता है।[26]

क्रान्तिकारियों के पिता मालवीय

मालवीयजी काग्रेस मे नरमदल की विचारधारा के थे। परन्तु वह देश के क्रान्तिकारियों को भी सदा सहयोग और संरक्षण देते रहते थे। महान् क्रान्तिकारी

चन्द्रशेखर आजाद महामना मालवीयजी से परामर्श लेने बराबर उनके पास आया करते थे। क्रान्तिकारियो को वह सदा सहायता भी देते रहते थे। एक बार एक क्रान्तिकारी अपनी पत्नी के साथ वाराणसी आ रहा था। पत्नी को प्रसव आसन्न था। मार्ग मे उसे प्रसव पीड़ा हुई। वह पैदल चलने में असमर्थ थी। उस व्यक्ति ने अपनी पत्नी को एक झुरमुट मे सुला दिया। उसने एक दूसरे क्रान्तिकारी दास से सदेशा भेजा कि मोटर की व्यवस्था करके उसकी पत्नी को चिकित्सालय मे पहुँचाया जाय। दास ने कोई चारा न देखकर मालवीयजी की शरण ली। दास ने मालवीयजी के सचिव पन्तजी से कुलपति की गाड़ी माँगी। उन्होने देने से इनकार कर दिया। दास मालवीयजी के पास आया। मालवीयजी के पुत्र ने कहा—'मालवीयजी विश्राम कर रहे हैं और नही मिलेंगे।' दास झटके से द्वार खोलकर भीतर घुस गया। मालवीयजी लेटे थे। बोले—'कहो दास, तुम इतने आतंकित क्यो हो ?' दास ने उस क्रान्तिकारी की पत्नी के प्रसव की घटना खड़े-खड़े ही सुना दी। मालवीयजी उठ बैठे और क्रोध मे आकर बोले—'तुमको शरम नही आयी। बड़े क्रान्तिकारी बनते हो। वहाँ पर वहू प्रसव पीड़ा मे पेड़ के नीचे पड़ी है और तुम पन्तजी से मोटर माँगते फिरते हो। क्यों नही तुमने मोटर बलपूर्वक छीन ली।' दास शान्त रहा। पुन: मालवीयजी ने ४०० रुपया प्रसव कार्य के लिए देते हुए अपनी कार देकर बहू को चिकित्सालय मे तत्काल भर्ती कराने का निर्देश दिया। मालवीयजी ने उसके प्रसूति तथा अन्य व्यय का भार स्वय वहन भी किया और बराबर उसका समाचार लेते रहे।[२१]

भाई परमानन्द महान् क्रान्तिकारी थे। भाईजी का जन्म एक देशभक्त ब्राह्मण परिवार में पजाब मे हुआ था। वे वीर शिरोमणि मतिदास के वशज थे, जिन्होने धार्मिक स्वतत्रता की रक्षा हेतु धर्मान्ध औरंगजेब के दरबार में आरे से चिरवाकर अपने शरीर के दो टुकड़े करवाना स्वीकार किया था, किन्तु अन्याय के विरुद्ध सिर नही झुकाया था।

भाईजी एम०ए० की उच्च शिक्षा प्राप्त कर सस्कृति के प्रचार के लिए दक्षिण अफ्रीका और इगलैड गये। उन्होंने लाहौर मे सशस्त्र क्रान्तिकारी युवको का सगठन किया था। अत अंग्रेजी साम्राज्य ने उन्हे देश से निष्कासित कर दिया। वे बर्मा का चले गये। तत्पश्चात् वहाँ से लौटने पर सन् १९१६ ई० मे भाईजी को अनेक साथियो सहित लाहौर के न्यायालय मे सशस्त्रक्रान्ति द्वारा अग्रेजी प्रशासन का तख्ता उलटने के आरोप में मृत्युदण्ड दिया गया। मालवीयजी ने जब यह समाचार सुना तब वे रो पडे। वह उसी क्षण भागे-भागे दिल्ली पहुँचे और लार्ड हार्डिंग (वाइसराय) से मिलकर फासी का दण्ड स्थगित करने की जोरदार माग की। जन-विद्रोह तथा मालवीयजी के घोर विरोध के कारण अंग्रेज सरकार ने उनकी फाँसी की सजा आजीवन कारावास में बदल दी। भाईजी अण्डमान भेजे

गये, वहाँ के नारकीय जीवन के प्रति विद्रोही भाईजी ने वहाँ दो मास तक आमरण अनशन किया था। मालवीयजी तथा पजाब केशरी लाला लाजपतराय के सहयोग से भाईजी ने हिन्दू महासभा का गठन किया था। हिन्दू महासभा के टिकट पर १९३१ ई० तथा १९३५ ई० मे भाईजी दो बार ब्रिटिशकालीन भारतीय संसद के सदस्य भी निर्वाचित हुए थे। भाईजी ने अनेक ऐतिहासिक ग्रंथ भी लिखे थे, जिनमे से कुछ राजद्रोह मे जब्त हो गये थे।[38]

मालवीयजी नरम दल के नेता होते हुए भी क्रान्तिकारियो को प्रेरणा और सहयोग देते रहते थे। इससे उनके क्रान्तिकारी विचारो का भी पता लगता है। मालवीयजी महान राष्ट्रवादी थे। वह राष्ट्रीयता के नाम पर सभी प्रकार का त्याग करने को तत्पर रहते थे। देश के विविध धर्मावलम्बियों को वह राष्ट्रीयता के नाम पर एकीकृत करना चाहते थे। राष्ट्र के लिए किसी भी उपाय या साधन के माध्यम से स्वाधीनता के लिए संघर्परत सभी क्रान्तिकारी, कांग्रेस के नरम तथा गरम दल आदि उन्हें समान रूप से प्रिय थे। उनके विचार से सभी का लक्ष्य 'स्वराज्य-प्राप्ति' था। अत. इनमे लक्ष्य की ओर जाने वाले मार्गों की विविधता के कारण कोई अन्तर नही पड सकता। यही कारण है कि स्वाधीनता के लिए अपनी जान हथेली पर लेकर सशस्त्र क्रान्ति करने वाले क्रान्तिकारी युवक उन्हें सबसे अधिक प्रिय थे, जिन्हें सदैव उनका सहयोग और आशीर्वाद प्राप्त था।

प्रेस ऐक्ट का विरोध

सन् १९१० ई० मे प्रेस ऐक्ट मे प्रेसों की स्वाधीनता प्रायः समाप्त कर देने की योजना थी। मालवीयजी ने इसका घोर विरोध किया। प्रेस ऐक्ट का गोखले ने भी समर्थन किया था। उस समय मालवीयजी की बड़ी प्रशसा हुई और गोखले को—दब्बू तक की संज्ञा दी गयी। मालवीयजी के घोर विरोध के कारण यह विधेयक पारित नही हुआ। वाइसराय इस समिति के अध्यक्ष थे। गोखले ने मालवीयजी को एकान्त मे समझाया कि वे भी विरोध न करें अन्यथा उनको सरकार की कुदृष्टि का कोप-भाजन होना पड़ेगा। मालवीयजी बड़ी उलझन में पड गये। उन्होंने आत्मबल के लिए गजेन्द्र मोक्ष का पाठ किया। पाठ के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि मैं यथार्थ हूँ। अत. उन्होने ऐक्ट का विरोध किया। गोखले से कहा—'भाई, मेरे अन्त करण की यही प्रेरणा है। अस्तु, जो भी परिणाम होगा भोग लूंगा। मैं विरोध अवश्य करूँगा।' मालवीयजी तथा भूपेन्द्र-नाथ बोस को छोड़कर शेष सभी लोगों ने प्रेस ऐक्ट का समर्थन किया। दो मास बाद गोखले को अपनी भूल का पता लगा और उन्होंने समझा कि मालवीयजी कितने सही थे।

सन् १९३० ई० प्रयाग के पुरुषोत्तमदास पार्क में विट्ठल भाई पटेल का भाषण हो रहा था, साथ मे हिन्दी अनुवाद भी हो रहा था। अनुवाद कार्य

अकुशलता से शोरगुल मचा हुआ था। मालवीयजी स्वयं उठे और उन्होंने सारगर्भित अनुवाद प्रस्तुत करना आरम्भ किया। देश की दो महान् विभूतियों को एक साथ मंच पर देखकर तुमुल हर्षध्वनि से आकाश गूँज उठा। लोग शान्त तथा स्तब्ध होकर भाषण सुनने लगे।

जलियावाला बाग हत्याकांड का समाचार सुनकर मालवीयजी पंजाब जा रहे थे। उन्हें पंजाब की सीमा से पहले जगाकर पंजाब में उनके प्रवेश पर लगी रोक की सूचना दी गयी। मालवीयजी ने कहा—'मैं लौट नहीं सकता। वहाँ के अत्याचार से मेरी आत्मा सिहर उठी है। मैं वहाँ तक जाकर ही दम लूँगा।' सरकार का साहस उन्हें कैद करने का नहीं हुआ। महात्मा गांधी भी उसी समय पंजाब जा रहे थे। किन्तु जब पंजाब में प्रवेश की रोक का समाचार दिया गया तो वे लौट गये। राजनीति में इस प्रकार की जिद भी मालवीयजी की थी।

३१ अक्टूबर १९२८ ई० में साइमन कमीशन के काले उद्देश्यों को देखते हुए मालवीयजी ने उसका घोर विरोध किया। उनके साथ पंजाब केशरी लाला लाजपतराय ने विशाल भीड़ के साथ कमीशन को काले झण्डे दिखाने के कार्यक्रम का नेतृत्व किया।

२७ जुलाई १९२१ ई० की बैठक में प्रिंस ऑफ वेल्स के आगमन के समय इनके बहिष्कार का निश्चय किया गया, जबकि पहले कांग्रेस ने स्वागत का निश्चय किया था। निमंत्रण देने के बाद उसमें परिवर्तन करना मालवीय ने अनुचित माना। उन्होंने कहा—'प्रिंस का भारत आना पुरानी परम्परा का पालन मात्र है। उनका स्वागत करके हम सरकार का साथ देना नहीं चाहते, किन्तु मेल मिलाप से हम ऐसा सोचते हैं कि इससे देश का हित होगा, क्योंकि 'अतिथि देवो भव' हमारी सांस्कृतिक नीति है। अतः हम उनका स्वागत करना चाहते हैं।[२०]

१९३० ई० में देश में लोकमान्य तिलक की पुण्य तिथि मनायी जा रही थी। बम्बई के जुलूस में मालवीयजी भी नेतृत्व कर रहे थे। सरकार की ओर से जुलूस को अमवैधानिक बताते हुए, उसे समाप्त करने की सरकारी आज्ञा सुनायी गयी। मालवीयजी ने आगे बढ़कर कहा—'हम इस अन्यायपूर्ण आज्ञा को कदापि नहीं मान सकते।' उनकी पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से मुठभेड़ हो गयी। मालवीयजी ने कहा—'हम यहीं रुके रहेंगे, हटेंगे नहीं। एक दिन तुम्हीं लोगों को अपने देश वापस जाना होगा।' मालवीयजी के साथ सरदार पटेल आदि कई नेता थे। उनके साथ सभी ४० नेतागण कैद कर लिए गये। उनके कैद किये जाने का समाचार सारे देश में फैल गया। गिरफ्तारी के विरोध में सारे देश में विरोध सभाएँ तथा प्रदर्शन हुए। हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्र आपे के बाहर हो गये। सत्याग्रह के लिए सैकड़ों छात्र-टोलियाँ बम्बई रवाना हुईं और देश में जोरदार विरोध हुआ।

हिन्दुओ को वर्गीकृत करके फूट डालो नीति के अनुसार सरकार हरिजनो को हिन्दुओं से पृथक् करना चाहती थी और एक विधेयक लाने की योजना बना रही थी। महामना मालवीयजी ने इसका घोर विरोध किया। महात्मा गाधी ने भी उनका समर्थन किया। इस प्रकार उक्त दोनों महान् नेताओ के प्रबल विरोध के कारण सरकार उक्त विधेयक लाने मे सफल नही हो सकी।

प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा

१९१० मे शर्तबद्ध कुली प्रथा के विपरीत गोखले विफल हो चुके थे। मालवीयजी ने पुन इस प्रथा का जोरदार विरोध किया और इस प्रथा को समाप्त करने के लिए कानून बनवाया। १९२६ ई० मे कांग्रेस ने स्वराज्य पार्टी बनायी। मालवीयजी तथा लाला लाजपतराय ने नेशनलिस्ट पार्टी बनायी, जिसका पण्डित मोतीलाल नेहरू ने खुलकर विरोध किया। लोगों ने इस विरोध के लिए मोतीलाल नेहरू को 'अंग्रेजो का पिट्ठू' तथा 'देश द्रोही' कहा। इस बात पर मालवीयजी ने कहा कि वैचारिक विरोध की अभिव्यक्ति से कोई भी व्यक्ति देशद्रोही नही माना जा सकता।[30]

१९२२ ई० का जमाना था। गाधी, नेहरू तथा पटेल आदि प्राय सभी नेता कैद कर लिए गये थे। मालवीयजी तथा डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ही बाहर थे। अंग्रेजो का दमन जारी था। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को आसाम के दमन का समाचार मिला। उन्होने इस सम्बन्ध मे मालवीयजी को पत्र लिखा। मालवीयजी तथा राजेन्द्र बाबू वहाँ पहुँचे। वहाँ के दमनकारियों ने कांग्रेस भवनो मे आग लगा दी थी। कांग्रेसजनो को देखते ही पुलिसवाले उन्हे पीटने लगते थे। मालवीयजी और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के पहुँचने पर लोग आतकवश उनसे बात भी नही कर पा रहे थे। ऐसे मे मालवीयजी और राजेन्द्र बाबू के समझाने से लोगो की जान में जान आयी। उन दिनो आसाम मे अफीम की खपत बहुत अधिक हो रही थी। लोगों में नशे की आदत बढ रही थी। मालवीयजी ने उक्त नशे के विरोध में आन्दोलन किया। इससे दूकानो पर अफीम की बिक्री बन्द हो गयी और सरकार को काफी घाटा लगा।

१९२० ई० मे सरकारी स्कूल और कालेजो का बहिष्कार किया जा रहा था। मालवीयजी ने गाधीजी के इस आन्दोलन का विरोध किया। उन्होंने कहा—'यह बडा गलत मार्ग है कि हम स्कूलो से अपने बच्चो को उठा लें। स्कूलो मे बच्चों को भेजने से सरकार को कोई सहायता नही मिलती। उससे तो जनता को लाभ ही होता है। बच्चे शिक्षा के लिए तड़प रहे हैं। जब समानान्तर संस्थाएँ स्थापित हो जाएँ, तभी बच्चो को वहाँ से हटाना चाहिए। इतने बडे अशिक्षा वाले देश मे स्कूलों से बच्चों को उठाकर अलग करना उनके जीवन...

खिलवाड करना है। वह युग गाधोजी का युग था, किन्तु गाधीजी भी मालवीय-जी के तर्कों को काट न सके। उस समय मालवीयजी ने यह भी कहा था कि स्कूल-कालेजों से बच्चों को हटाने की सलाह देना देश के हित के लिए घातक होगा। इससे बच्चों का जीवन चौपट होगा और उनमे उच्छृखलता पैदा होगी, जो भविष्य मे महँगी और चिन्ता का विषय हो जाएगी।

एक बार महामना मालवीयजी संसद मे विजयी भारतीय सैनिकों की वीरता पर प्रकाश डाल रहे थे। ओडायर, अध्यक्ष ने इसके लिए ब्रिटिश अधिकारियों की वीरता का महत्व बताया। मालवीयजी ने कहा—'मुझे अपनी बात पूरी करने दें।' ओडायर ने उन्हे बैठ जाने को कहा। मालवीयजी बोलते रहे। इस पर ओडायर ने संवैधानिक व्यवस्था का अध्यक्षीय दबाव डालना चाहा। मालवीयजी ने कहा—ठीक है। आप न बोलने दें। अब मैं अपनी बात जनता से कहूँगा। एक सप्ताह के अन्दर भारतीय सैनिक जहाँ भी होगा अस्त्र डाल देगा [31] अब ब्रिटिश सरकार उन्हे ऐसा करने से रोके तो देखे। मु० जिन्ना सहित सभी भारतीयों ने ससद का परित्याग करते समय मालवीयजी का साथ दिया। यह समाचार बिजली की भाँति सारे देश मे फैल गया। भारी जनसमूह जहाँ-तहाँ महामना मालवीयजी का जयघोष करता हुआ उमड पड़ा। मालवीयजी स्टेशन लौट रहे थे। स्टेशन पर भारी भीड़ एकत्रित हो गयी। उन्होने सबको सम्बोधित किया, इस अद्वितीय चुनौती से अंग्रेज सरकार भयभीत हो गयी और इसके लिए मालवीयजी से क्षमायाचना की गयी। इस प्रकार का था महामना मालवीय का व्यक्तित्व। उनकी वाणी मे वह बल था कि उनकी चुनौती का सामना करना एक दुष्कर कार्य था। अतः अंग्रेजो को बाध्य होकर भारतीय सैनिकों की वीरता स्वीकार करनी पड़ी और मालवीयजी विजयी हुए।

मालवीयजी का व्यक्तित्व

महामना मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व की बहुत-सी विशेषताएँ थी। इस अध्ययन के सन्दर्भ मे उनके व्यक्तित्व का प्रमुख गुण यह देखा गया कि वह कोई सकल्प करने के साथ ही उसे पूर्ण करने की दिशा मे उन्मुख हो जाते थे। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य के व्यवहार उसकी प्रेरणाओं द्वारा निर्धारित होते हैं। वैज्ञानिकों ने आवश्यकता की श्रेणीबद्धता (hierarchy of needs) के विषय में बताया है कि दैहिक आवश्यकताएँ प्रमुख प्रेरक होती है। इनकी सतुष्टि के पश्चात् सुरक्षा, प्रेम तथा आत्मसम्मान की प्रेरणाएँ क्रमशः व्यक्ति को क्रियाशील करती हैं। उसमें अत्यन्त उच्चस्तरीय प्रेरक आत्म निर्देशन पाया जाता है, जो व्यक्ति को सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा पर्याप्त उच्च स्तर पर पहुँचा देता है। इस उच्चस्तरीय प्रेरक से प्रेरित होकर, व्यक्ति रचनात्मक कार्यों की ओर उन्मुख होता है और अत्यन्त उपयोगी सामाजिक कार्य सम्पन्न कर प्रेरक की

संतुष्टि करता हैं। मालवीयजी के जनकल्याण के कार्यों की ओर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह सामान्य व्यक्तियों के प्रेरकों से बहुत ऊपर उठ चुके थे। सुरक्षा, प्रेम आत्मसम्मान इत्यादि आवश्यकताओं से परे वह आत्म-यथार्थ के लिए अग्रसर थे। उनके जीवन और वैचारिकी में सामंजस्य था। वे अपनी मानसिक वैचारिकी में कोई कार्य करने में जो चित्र बनाते थे, उसे अपने जीवन का आवश्यक उद्देश्य और अंग बना लेते थे। मनोवैज्ञानिकों ने सुसंगठित और स्वस्थ व्यक्तित्व की विशेषताओं में बताया है कि इसमें विचारों, भावनाओं और प्रथाओं का पर्याप्त सामंजस्य पाया जाता है। उन्होंने मुख्यरूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य किया था · (क) राजनीतिक स्वाधीनता एवं समाज-सुधार सम्बन्धी कार्य, (ख) शैक्षिक कार्य तथा (ग) धार्मिक सुधार सम्बन्धी कार्य।

उद्देश्य प्राप्त करने की दिशा में उनका सर्वप्रथम प्रयास यह होता था कि उनके कार्य से किसी भी व्यक्ति या वर्ग को कोई कष्ट या व्यथा न हो। वह 'सत्य की दिशा में ईमानदारी से कार्य करना चाहते थे। उनके कार्य की उक्त प्रणाली उनके सभी प्रकार के धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि कार्यों में पायी जाती थी। अब यह देखना है कि उनके इस प्रकार के व्यक्तित्व के निर्माण करने में कौन-से मूलभूत सामाजिक, जैविक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों का मुख्य स्थान रहा है, जिसके फलस्वरूप उनका उक्त प्राक्कल्पित व्यक्तित्व निर्मित हो सका।

वैयक्तिक जैविक कारकों के अन्तर्गत जन्मजात कारकों की विशेषताएँ प्रमुख होती हैं। इस सम्बन्ध में मर्फी[३२] का यह कथन उल्लेखनीय है कि व्यक्ति केवल जैविकीय नहीं होता, अपितु वह जैविकीय सामाजिक होता है। प्रत्येक व्यक्ति दो प्रकार की संचरण (transmission) विधियों की उपज होता है—इनमें प्रथम विधि आनुवंशिक है और द्वितीय सामाजिक। प्रथम विधि जीन (genes), गुणसूत्रों (cromosomes) तथा मानव-पुनरुत्पादन (human reproduction) के द्वारा क्रियाशील होती है। वह उससे सम्बन्ध स्थापित करती है तथा उसका अध्ययन जैविकीय विज्ञान की विशेष शाखा आनुवंशिक (genetic) के द्वारा किया जाता है। द्वितीय विधि विभिन्न आदतों, सीख तथा प्रतीकात्मक संवहन द्वारा क्रियाशील होती है।[३३]

जटिलता इससे भी आगे बढ़ती जाती है। 'व्यक्ति' गत्यात्मक प्रक्रियाओं की उपज मात्र नहीं है, किन्तु वह विभिन्न प्रकार के पर्यावरणों की उपज है। भौगोलिक, जैविक, सांस्कृतिक तथा अन्तर्वैयक्तिक पर्यावरण के अभाव में न तो आनुवंशिकीय संचरण हो सकता है और न संवहनात्मक। इसलिए व्यक्ति अपने पर्यावरण की देन उतने ही अंशों में है जितना कि वह उपर्युक्त दो प्रकार के गत्यात्मक संचरण का है।[३४]

उपर्युक्त सन्दर्भ में मालवीयजी के अध्ययन मे अनुवशिकता के प्रसग मे हम देखते हैं कि वह भारत के वर्ण के पदक्रम मे उच्च ब्राह्मण वर्ण की श्रेणी में आते हैं। इस जाति का प्रभुत्व बौद्धिक कार्यों एव सामाजिक नैतिकता के क्षेत्र मे प्रमुख रहा है। मदनमोहन मालवीय का स्वास्थ्य उत्तम था और वह मध्यम कद के व्यक्ति थे। उनके पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामही तथा प्रमातामही सभी का शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम पाया गया था। मदनमोहन मालवीय ने आनुवशिकता मे उन्ही लोगो का रंग, रूप, कद तथा आकृति प्राप्त की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनमे आनुवशिकता के सामान्य गुण सहज रूप से उनके पूर्वजो से प्राप्त हुए थे। उनमे किसी प्रकार का व्यतिक्रम नही था। इनके सभी ज्ञात पूर्वज ८० वर्ष की दीर्घायु प्राप्त कर स्वर्गवासी हुए थे। मदनमोहन मालवीय के व्यवहारों मे कही भी कोई असामान्य व्यवहार नही पाया गया था। उनकी जन्मजात या अर्जित बौद्धिक कुशाग्रता (आई० क्यू०) वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा मापी नही गयी थी, किन्तु वह अतीव मेधावी एवं व्यावहारिक थे।

आलपोर्ट[३५] के अनुसार—किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके जैविक और मनोवैज्ञानिक गुणो के समन्वय से निर्धारित होता है। यहाँ कहना यह है कि मालवीयजी केवल रग-रूप, आकार आदि जैविक गुणो के कारण ही नही; अपितु अपने आन्तरिक स्वाभाविक गुणो के कारण भी आकर्षक व्यक्तित्व वाले व्यक्ति थे। इनका जन्म स्थान हिन्दू शास्त्रों की दृष्टि से अतीव पुण्यस्थान तीर्थराज प्रयाग था, जिसके धार्मिक पर्व कुम्भ मेला आदि के धार्मिक महत्व की मदनमोहन मालवीयजी के जीवन मे छाप पड़ी थी। इनकी प्रारम्भ मे आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इतने बड़े परिवार का पालन-पोषण ५ रुपया मासिक आमदनी करने वाले इनके पिता के लिए निश्चय ही कठिन था। इसका प्रभाव मदनमोहन मालवीय पर भी पड़ा था। परिवार की आर्थिक दयनीय सि ति से उनका जीवन प्रभावित था। अतः वह गरीबों स आन्तरिक सहानुभूति रखते थे और उन्हे समय-समय पर सहायता देते रहते थे।

फ्रायड तथा युग जैसे मनोविश्लेषकों ने कहा है कि जीवन के आरम्भिक वर्षों के पारिवारिक सस्कार वच्चे के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के भावी विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। मालवीयजी के पारिवारिक जीवन के शुद्ध संस्कारों का प्रभाव जीवन पर्यन्त उनके व्यक्तित्व पर रहा। उनके बृहत् परिवार के कारण उनकी आर्थिक कठिनाई बनी रही तथा पृथक् अध्ययन स्थान के अभाव में शिक्षा में बाधा पड़ती रहती थी। वह बगल के मकान के बाग मे रात्रि मे लालटेन के प्रकाश में अध्ययन किया करते थे। बचपन मे ही मदनमोहन का ८ वर्ष की अवस्था में यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया गया था। कुल के बड़े-बूढ़ो की देखा-देखी मदनमोहन पूजा और सन्ध्योपासन मे विशेष रुचि लेते थे, जिसका विधिवत् निर्वाह उन्होंने अपने अतीव व्यस्त सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन काल में भी

समय निकाल कर किया था। इस प्रकार बचपन के धार्मिक संस्कार उनके जीवन के आवश्यक अंग बन गये थे।

मालवीयजी के समाजीकरण में उनके परिवार एवं सामाजिक परिस्थितियों की विशेष भूमिका रही है। किम्बलयंग के अनुसार—'समाजीकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में प्रवेश करता है और समाज के विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है, जिसके द्वारा उसे समाज के मूल्य और मानक स्वीकार करने की प्रेरणा प्राप्त होती है।'[36] मदनमोहन मालवीय पर भी समाज के संगठनात्मक स्वरूप का गहन प्रभाव विशेषरूप से पड़ा था। किंग्सले डेविस का यह कथन भी मालवीयजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि 'व्यक्ति का संगठन समाज के संगठन में प्रतिविम्बित होता है।'[37] उक्त कथनों के परिप्रेक्ष्य में हम देखते हैं कि मदनमोहन मालवीय पर उनके कथावाचक पिता का काफी प्रभाव पड़ा था। पिता द्वारा भागवत की कथा सुनकर उनके बाल हृदय पर भारतीय पौराणिक गाथाओं में निहित भारतीय संस्कृति की मुक्त छाप स्पष्ट दिखायी देती है। धार्मिक भावनाओं तथा ईसाई मिशनरियों के सगठित धार्मिक प्रचार से प्रभावित होकर मदनमोहन ने बालपन में ही अपने समकालीन बालकों का 'सन्ध्यादल' गठित किया था, जो सायंकाल यमुना तट पर सध्या वन्दन हेतु इकट्ठा होता था। उनका दूसरा दल व्याख्याता दल था, जो धार्मिक भाषण दिया करता था। इस प्रकार मदनमोहन का समाजीकरण उन्हें सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में संस्थापित करता है। यहीं से उन्हें समाज के मूल्य और भावना ग्रहण करने की प्रेरणाएँ भी प्राप्त होती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इन छोटी-छोटी बातों का अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि बाल्यावस्था से ही उनमें सगठन एवं नेतृत्व की क्षमता थी। छोटी-सी आयु में वह अपने धर्म के प्रति जागरूक थे और निडर होकर ईसाई मिशनरियों के जोड़ में धार्मिक प्रचार सुसंगठित होकर किया करते थे। इससे उनकी जन्मजात वक्तृता-शक्ति के विकसित होने में भी व्यापक प्रभाव पड़ा। वस्तुतः उनकी वक्तृता की क्षमता का आरम्भ यहीं से होता है, जिसने उन्हें कुशल वक्ता के रूप में भारत के उच्चकोटि के नेताओं की श्रेणी में महत्वपूर्ण बनाया। वह बालपन से ही मेले, तमाशों आदि के प्रवन्ध में बड़ी रुचि पूर्वक भाग लेते थे, जिसमें उनमें समाज की सेवा की सहज भावना और अधिक परिपक्व हो सकी।

मदनमोहन मालवीय को धार्मिक और सामाजिक कार्यों के लिए घर-परिवार, पास-पड़ोस के अतिरिक्त उनके कालेज से भी प्रोत्साहन मिला। इनके कालेज का प्रिंसिपल हैरिसन इनकी धार्मिकता तथा देशभक्ति देखकर इन्हें बहुत मानता था। वह निरन्तर इन्हें अनेक प्रकार से प्रोत्साहित भी किया करता था। इस प्रकार पर्यावरण में चतुर्दिक् से प्राप्त प्रोत्साहनों द्वारा उनके बचपन की सेवा और धर्म प्रति अभिरुचि की सहज प्रवृत्ति आगे चलकर सेवा और देशभक्ति के रूप में जीवन का आवश्यक अंग बन गयी।

बालक मदनमोहन की रुचि बालपन से ही सामाजिक संस्थाओं के सगठन की ओर थी। प्रयाग की प्रसिद्ध नाट्य संस्था में उन्होंने शकुन्तला का आकर्षक पाठ किया था कालेज में होने वाले अंग्रेजी नाटक में उन्होंने मर्चेन्ट ऑफ वेनिस का भी कुशल अभिनय किया था।[39] इन नाटकों में उनके अभिनय की वर्षों प्रशंसा होती रही। उन्होंने अपने बालपन में हिन्दू समाज तथा लिटरेरी इन्स्टीट्यूट आदि संस्थाओं की स्थापना की थी, जहाँ साहित्यिक चर्चाएँ हुआ करती थी।[39] इसके अतिरिक्त भारती भवन नामक विशाल सार्वजनिक पुस्तकालय, प्रयाग हिन्दू बोर्डिंग हाउस आदि अनेक संस्थाओं की भी उन्होंने अपने बाल और युवाकाल में स्थापना की थी, जो उनके सामाजिक सगठनकर्ता के जन्मजात गुण की परिचायक है। प्रस्तुत गुण उन्हें राष्ट्र के उच्च नेता की श्रेणी में लाने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहे है। यही कारण है कि पराधीनता के युग में जब लोग अंग्रेजों के विरुद्ध जबान खोलने में भी भयभीत रहते थे,[40] अनेक अवसरों पर उन्होंने राष्ट्र का निर्भीकतापूर्वक नेतृत्व किया और दृढतापूर्वक भारतीय हितों पर बल दिया। सर तेजबहादुर सप्रू के शब्दों में—'गाधी सहित ऐसा कोई भारतीय नेता नही था, जिस मालवीयजी से अधिक ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का सम्मान प्राप्त हुआ हो। ब्रिटिश अधिकारियों के बीच तर्कसंगत तरीके से मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत विचार 'सत्' और 'यथार्थ' को भारतीय शास्त्रीय विचारधारा की उपज थे। यही कारण है कि गाधी को 'सत्य' और 'अहिंसा' की भाँति उनके सत्यपरक विचारों का भारतीय जनता के साथ ही उनके विरोधी (अंग्रेज) भी समादर करते थे।

उनके व्यक्तित्व के अनेक आकर्षण केन्द्र थे, जिससे सभी प्रभावित थे। एक बार एक चोर ने कुछ रुपयों सहित उनकी अटैची ट्रेन से चुरा ली थी; परन्तु जब उसे पता लगा कि यह अटैची महान् देशभक्त मदनमोहन मालवीय की है तो उसने क्षमा मांगते हुए रुपयों सहित वह अटैची रजिस्टर्ड पारसल द्वारा उन्हें वापस कर दी थी।

भारतीय संस्कृति और सभ्यता के गर्भ में विकसित मालवीयजी के व्यक्तित्व में भारतीय संस्कृति का सहज स्वरूप दिखायी पडता है। मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व का अवलोकन करने पर हम पाते हैं कि उनमें धार्मिक तथा सामाजिक नेतृत्व की जन्मजात प्रतिभा थी। मालवीयजी में प्राचीनता तथा आधुनिकता का अद्भुत समुच्चय था। उनके समकालीन प्रमुख नेताओं के निम्नलिखित विचारों से उनके व्यक्तित्व के विषय में समुचित परिचय मिलता है।

मालवीयजी : समकालीन नेताओं की दृष्टि में

गोपालकृष्ण गोखले

'त्याग तो मालवीयजी महाराज का है। वे निर्धन परिवार में उत्पन्न हुए और बढ़ते-बढ़ते प्रसिद्ध वकील होकर उस जमाने में सहस्रों रुपये मासिक कमाने

लगे। उन्होंने वैभव का स्वाद लिया और जब हृदय से मातृभूमि की सेवा की पुकार उठी तो उन्होंने सब कुछ त्याग कर पुन निर्धनता स्वीकार कर ली।'[41] कांग्रेस के नरमदलीय महान् नेता गोपालकृष्ण गोखले ने मालवीयजी के जीवन के इस चित्रण मे बताया है कि वस्तुत जिस व्यक्ति ने निर्धनता का दु ख बचपन से ही झेला हो, पग-पग पर आर्थिक कठिनाइयों से जूझता रहा हो और जिसके परिवार के लोगों ने आधा पेट भोजन किया हो, वैभव का स्वाद लेने के बाद उस व्यक्ति (मालवीयजी) का पुनः देश के लिए वैभव को लात मारकर, निर्धनता स्वीकार करना त्याग का ज्वलन्त उदाहरण है। यह भारतीय धर्म-दर्शन तथा संस्कृति के संस्कारो का ही प्रभाव है, जो सेवा और त्याग को सर्वोपरि स्थान देता है। भारतीय शास्त्रों तथा संस्कृति के 'प्रतीक' मालवीयजी मे उक्त गुण सांस्कारिक था, जिसका गोखलेजी ने यथार्थ चित्रण किया है।

महात्मा गांधी

'मैं तो मालवीयजी महाराज का पुजारी हूँ····। उनके विचारों मे ऐक्य है। इस ऐक्य मे मैंने माधुर्य और भक्ति पायी है। आज मालवीयजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है। युवावस्था से आज तक उनकी देशभक्ति का प्रवाह अविच्छिन्न चलता आया है।····यह नरवीर हमारे लिए दीर्घायु हो।'[42] (विलायत जाते हुए मोहनदास गाधी; ७-९-१९३१)

'प० मदनमोहन मालवीय का नाम तो जनता पर जादू कर देता है।' (१५-९-१९२०, कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के भाषण का एक अंश) 'जब से मैं १९१५ ई० मे हिन्दुस्तान आया, तबसे मेरा उनसे गहरा परिचय है। उनके साथ मेरा बहुत समागम है और उन्हें मैं भलीभांति जानता हूँ।·· ·····कट्टर एवं पुराने विचार के होते हुए भी उनके विचार समाज के विषय मे बड़े उदार है········हम लोग एक दूसरे को सगे भाई से बढ़कर प्यार करते है।'[43] (हि०न० १-६-१९२८)

महात्मा गाधी ने मालवीयजी के व्यक्तित्व के विषय मे और स्पष्ट करते हुए आगे कहा है········'मैं आशावाद और भोलेपन मे भेद करता हूँ। पण्डितजी में दोनों है। दृष्टिभेद पर निराशा के चिह्न होते हुए भी और यह जानते हुए भी जो आशा रखता है, वह आशावादी है—यह गुण पण्डितजी में काफी मात्रा में है। आशा की बात कोई कह दे और उस पर विश्वास कर लेना भोलापन है, यह भी पण्डितजी में है। उसे मैं त्याज्य समझता हूँ। पण्डितजी महान् व्यक्ति है, उनको ऐसे भोलेपन से हानि नहीं हुई। हमे ऐसे भोलेपन का अनुकरण नही चाहिए. आशावाद अन्तर्नाद पर निर्भर है। भोलापन बाह्य बातों पर।'[44]

'देश के सार्वजनिक जीवन को उनकी अनेक बड़ी देनें है। उनका ·· र्य काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय से मुझे हार्दिक प्रे

'आप जानते हैं कि मालवीयजी महाराज से मेरा कितना प्रगाढ सम्बन्ध है। यदि उनका कोई कार्य मुझसे हो सकता है तो मुझे उसका अभिमान रहता है। मैं अपने को कृतार्थ समझता हूँ।'[45]

यहाँ हम देखते हैं कि देश के स्वाधीनता संग्राम के महान् ऐतिहासिक नेता एवं सामाजिक कार्यकर्त्ता महात्मा गाधी जैसा महान् देशभक्त और सामाजिक विचारक मालवीयजी के व्यक्तित्व से सर्वाधिक प्रभावित हैं। भारत के किसी अन्य नेता के प्रति महात्मा गाधी ने मालवीयजी जैसा विचार कभी व्यक्त नही किया है। मालवीयजी के व्यक्तित्व की अपनी विशेषताएँ हैं। सामाजिक तथा नेतृत्व के प्रश्नों पर महात्मा गाधी से अनेक अवसरो पर गहरा मतभेद होने के बावजूद और कांग्रेस में समानान्तर अपने विचारों का महत्वपूर्ण पृथक् अस्तित्व बनाने वाले (मदनमोहन मालवीय) के प्रति गाधीजी के विचारो मे कभी अन्तर नही दिखायी देता। मालवीयजी भी गाधीजी को अपने प्राणों से भी अधिक मानते थे। यह बात, गोलमेज कान्फरेन्स मे गाधी के साथ लन्दन गये उद्योगपति घनश्यामदास बिरला की डायरी से भी स्पष्ट होती है, जहाँ मालवीयजी ने बिरलाजी से कहा था''''—'गाधीजी कपडे नहीं पहनते, इस सर्दी मे उन्हे कुछ हो न जाय। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि यदि कुछ हो तो मुझे हो''''''''मैं गाधी के लिए अपना प्राण भी दे सकता हूँ।'[46] इस प्रकार मालवीयजी और गाधीजी दोनो के व्यक्तित्व की अपनी विशेषताएँ हैं। दोनों ही भारतीय शास्त्रों पर आस्था रखने वाले विवेकी पुरुष हैं। दोनो के व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत हैं, एवं दोनों ही मानवतावादी हैं। गाधीजी ने मालवीयजी के व्यक्तित्व की विशेषता बताते हुए उनमे भोलापन और आशावादी गुणों का समन्वय पाया है। दूसरी ओर परम्परावादी होते हुए भी समाज के सम्बन्ध मे उन्होंने मालवीयजी को अतीव उदार एवं कर्मनिष्ठ बताया है। गाधीजी मालवीयजी को भारतीय संस्कृति और सभ्यता का 'प्रतीक' मानते थे और अपने अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम में मालवीयजी की व्यवस्था को प्रामाणिक माना है। मालवीयजी के व्यक्तित्व के विषय में गाधी के विचारो से उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

पं० जवाहरलाल नेहरू

मालवीयजी के सम्बन्ध मे भारत के स्वर्गीय प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने लिखा था''''—'विभिन्न क्षेत्रों में उनकी लम्बी सार्वजनिक सेवा ने, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी विशाल संस्था की स्थापना मे उनकी सफलता ने, उनकी स्पष्ट सचाई और गम्भीरता ने, उनकी प्रभावशाली वाग्मिता ने, उनके सरल स्वभाव और आकर्षक व्यक्तित्व ने भारतीय जनता को विशेष रूप से हिन्दू जनता को उन्हें प्रिय बना लिया था और बहुत-से वे लोग भी जो यदि उनसे सहमत नहीं थे और राजनीति मे उनका अनुसरण नही करते थे, वे भी उनका आदर

करते और उनसे स्नेह रखते थे। अपनी आयु और अपनी लम्बी सार्वजनिक सेवा के कारण वे भारतीय राजनीति के वरिष्ठ सदस्य थे।[१७]

२९ दिसम्बर १९६१ ई० मे एलफ्रेड पार्क, इलाहाबाद में मालवीय जन्मशती के उद्घाटन समारोह मे मालवीयजी के विषय में स्व० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—'भारतीय राजनीति मे मालवीयजी एक ऐसे अगुआ थे, जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय आन्दोलन मे महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, अपितु कांग्रेस के उदारमना तथा उग्रवादी वर्ग को मिलाने की एक कडी के रूप मे कांग्रेस की, जो भारतीय स्वाधीनता के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य रही, सेवा की।'[१८]

प० नेहरू ने अपने उपर्युक्त कथनों मे मालवीयजी के व्यक्तित्व पर व्यापक रूप से प्रकाश डालते हुए—भारतीय जनता का प्रिय होने से उनके वैयक्तिक गुणों की विशेषता पर प्रकाश डाला है। नेहरूजी ने उनके व्यक्तित्व-गुण में उनकी लम्बी सार्वजनिक सेवा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी बृहत् संस्था की स्थापना की सफलता, उनकी गम्भीरता, प्रभावशाली वाग्मिता, सरल स्वभाव तथा सच्चाई आदि बताया है। नेहरूजी ने राजनीति में उनसे सहमत न होने वालो को उनकी ओर आकर्षित करने के वैयक्तिक गुण का कारण भी उनके उपर्युक्त गुणों को ही बताया है।

उनके व्यक्तित्व की विशेषताओ मे पण्डित नेहरू ने कहा था कि 'वह (मालवीयजी) उदारमना तथा उग्रवादी वर्ग को मिलाने की कडी की भाँति थे। यह उनके व्यक्तित्व की अपनी विशेषता थी, जो दो परस्पर विरोधी विचारधारा को जोड़ने के गुण से युक्त थी।'

नेहरूजी ने आगे कहा था कि 'मालवीयजी का स्वभाव बहुत मीठा था। उनके कार्य का ढग ध्वंसात्मक नही था। परिवर्तन की ओर उनका झुकाव था। इस सम्बन्ध मे उनका गाधीजी से विचार साम्य था।'[१९]

इस प्रकार पं० नेहरू ने मालवीयजी के प्रति निम्नलिखित विचारो का उल्लेख किया है:

१. मालवीयजी की राष्ट्रीय आन्दोलन मे प्रमुख भूमिका थी।
२. मालवीयजी उदारमना तथा उग्रवादियो को समन्वित करने वाले व्यक्तित्व-सम्पन्न व्यक्ति थे।
३. मालवीयजी का स्वभाव सहज माधुर्ययुक्त था।
४. मालवीयजी के कार्य का ढग ध्वसात्मक नही था, परन्तु परिवर्तन और आधुनिकीकरण की ओर उन्मुख था।

नेहरूजी के अनुसार—मालवीयजी उदारमना और उग्रवादियों को मिलाने वाले नेता थे। उनके इस कथन की पुष्टि मे हम पाते हैं कि यद्यपि मालवीयजी काग्रेस मे नरमदल के नेता थे, परन्तु वह अत्यन्त उग्र कहे जाने वाले क्रान्तिकारियो के सहयोगी भी थे। उन्होने चौरी-चौरा हत्याकाण्ड के शताधिक अभियुक्त भारतीय स्वाधीनता सेनानियो की उच्च न्यायालय मे पैरवी करके, उन्हे मृत्युदण्ड से मुक्ति दिलायी थी। महान् क्रान्तिकारी भाई परमानन्द के मृत्युदण्ड को उन्ही ने अपने अथक प्रयास से आजीवन कारावास मे बदलवाया था। क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद[५१] और उनके दल के लोगों को मालवीयजी का सहयोग प्राप्त था। इस प्रकार के अन्यान्य क्रान्तिकारी कार्यों के परिप्रेक्ष्य में हम प० नेहरू के उक्त कथन को यथार्थ पाते हैं। वस्तुतः मालवीयजी के नेतृत्व और कार्यों मे देशभक्ति की भावना प्रमुख थी। उनके लिए देश और देश के लिए अपने प्राणो की बाजी लगाने वाले सपूत दोनों ही प्राणों से बढ़कर प्रिय थे।

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने भी मालवीयजी के व्यक्तित्व के विषय मे कहा है कि 'जब-जब काग्रेस का अस्तित्व सकट मे पडा मालवीयजी ने उसका मार्गदर्शन किया। पुराने और नये लोगो के बीच मालवीयजी एक सेतु का काम करते थे। अनेक बातो मे काग्रेस से उनका मतभेद होता था, परन्तु मालवीयजी ने काग्रेस को कभी नही छोडा। वह अपने ढग से सहयोग करते थे।..... काग्रेस से मतभेद होने के कारण काग्रेस के लोग मालवीयजी का कभी निरादर नही करते थे। इसका कारण उनका अद्भुत व्यक्तित्व तथा काम करने का अपना विशेष ढग था।'[५२]

डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने मालवीयजी को नये, पुराने लोगों के बीच 'सेतु' के रूप मे तथा नेहरूजी ने उन्हे परस्पर विरोधी विचारो को जोड़ने वाली 'कडी' के रूप मे देखा है। इस प्रकार मालवीयजी का व्यक्तित्व समन्वय स्थापित करने की विलक्षण क्षमता से परिपूर्ण है।

पुरुषोत्तमदास टण्डन

'मालवीयजी के व्यक्तित्व की यह विशेषता थी कि उन्हें यश की चाह नहीं थी, वह काम स्वयं करते थे, परन्तु कीर्ति और यश के लिए दूसरो को आगे कर देते थे।'' ''''''जब राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय विचारो को धक्का लग रहा हो, तब वे उसे सहन नही कर पाते थे।''''' '''वह आदर्श मानव थे, जिन्होने राजनीति और शिक्षा दोनो क्षेत्रो मे युगप्रवर्तक का काम किया।'[५३]

हृदयनाथ कुंजरू

हृदयनाथ कुंजरू ने मालवीयजी के व्यक्तित्व के विषय मे लिखा है कि सन् १९०८ ई० से लेकर मालवीयजी के अन्त समय तक मैंने उनको बहुत समीप

से देखा था। वह अजातशत्रु थे। वह लोगों की व्यक्तिगत सहायता बहुत करते थे।[54]

स्काटलैण्डयार्ड

गोलमेज कांफरेन्स मे मालवीयजी और गाधीजी की सुरक्षा का विशेष दायित्व स्काटलैण्डयार्ड पर था। एक बार ईसाइयों के नेता डॉ० एस० के० दत्त ने स्काटलैण्डयार्ड के एक अधिकारी से उभय भारतीय नेताओ के विषय मे पूछा। उसने कहा—'महात्माजी (गाधीजी) महात्मा हैं। वह एक सन्त और अवतारी पुरुष हैं, परन्तु मालवीयजी की आँखों मे स्वयं ईश्वर जैसी कोई वस्तु है।'[55]

प्रिंसिपल दीवान चन्द्र

प्रिंसिपल दीवानचन्द्र के अनुसार—'मालवीयजी पवित्रात्मा थे। उनके व्यक्तित्व की मनोहरता का उनके लाखो समकालीन लोगों पर उदात्त प्रभाव था।'[56]

वैज्ञानिक प्रफुल्लचन्द्र राय

'गाधीजी के बाद कोई दूसरा ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है, जिसने इतना अधिक त्याग किया हो और बहुमुखी कार्यो का ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो, जैसा मालवीयजी ने किया है।'[57]

चिन्तामणि

लिबरल पार्टी के नेता श्री सी०वाई० चिन्तामणि के अनुसार—'मालवीयजी.... साबरमती के मनीषी (गाधीजी) के कोष्ठक मे रखने योग्य है।'[58]

मालवीयजी के समकालीन उच्चकोटि के सभी नेतागण उनके प्रति सहज विश्वास एवं सम्मानित भाव रखते थे। यह उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता थी कि उनसे भेद रखने वाले लोग भी उनका सम्मान करते थे। वह हिन्दू और मुसलमान दोनो के ही प्रतिष्ठित नेता थे। मालवीयजी अमर हैं। समझौता उनके स्वभाव का अग था। वे करुणा और कोमलता के निधान थे।[59] उन्होने उच्चकोटि के नेताओं को मार्गदर्शन दिया। भारत से प्रेम करना सिखाया।[60] उनके व्यक्तित्व की छाया उनके समकालीन सभी नेताओं पर पड़ी थी। उनका व्यक्तित्व उनकी सेवाओ के माध्यम से व्यक्त होता था।[61] वह देश के महान् निर्माता थे।[62] मालवीयजी महान् विधानवादी ही नही, अपितु महान् शिक्षाशास्त्री और समाज सुधारक भी थे।[63]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत के उच्चकोटि के सभी नेताओ की दृष्टि मे मालवीयजी का व्यक्तित्व अपनी अन्यान्य विशेषताओं के कारण अपने विरोधियों को भी प्रभावित करने वाला था। प्रो० थारपे[64] तथा स्मूलर का कथन है कि जो सम्पन्न व्यक्तित्व वाले होते हैं, वे बडी आसानी से सामजस्य बनाने मे सफल

होते हैं। ये ऐसे व्यक्ति होते हैं, जिनमें समर्पण करने की भावना प्रधान होती है। उपर्युक्त भारतीय नेताओं द्वारा मालवीयजी के व्यक्तित्व पर की गयी टिप्पणियों के आधार पर हम पाते है कि मालवीयजी सम्पन्न, समर्पित व्यक्तित्व वाले थे। ऐसे लोग उद्देश्यो की प्राप्ति के सामान्य तरीकों को त्याग कर कार्य करते है। उन्हें हम आत्म-निर्देशित व्यक्तित्ववान् कह सकते हैं। ये व्यक्ति अपनी योग्यताओं, क्षमताओं और विभव (potentialities) का पूरा उपयोग करते हैं।

मालवीयजी में अविच्छिन्नरूप से प्राप्त आत्म-निर्देशित[6] व्यक्तित्व की निम्नलिखित विशिष्टताएँ उल्लेखनीय हैं १—व्यक्ति अपने पर्यावरण की वास्तविकताओं का यथार्थ प्रत्यक्षीकरण करते हैं। ये रूढ़िवादिता और अन्धविश्वासों से मुक्त होते हैं। अज्ञानता के अन्धकार से भयभीत नहीं होते, अपितु तर्क और प्रयोग-सिद्ध बातों के आधार पर ही अपने विचार बनाते हैं। यहाँ ये गुण हम मालवीय-जी में समरूप से देखते है, जिसके कारण वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों मे धर्म, शिक्षा, राजनीति, समाजसुधार सभी ओर रूढ़िवादिता से परे अपनी बात मनवाने में समर्थ हुए थे।

२ इस प्रकार के व्यक्तित्व का यह गुण होता है कि इनमें सभी ओर स्वीकृत भावना होती है। ऐसे लोग किसी अज्ञानी के लिए विरोधी भाव नहीं रखते। असफल व्यक्तियों को पश्चात्ताप के लिए अकेले नहीं छोड़ते, किन्तु उनकी पूरी सहायता करते है। मालवीयजी भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नरमदल के नेता होते हुए भी गरमदल वालों की पूरी सहायता करते थे, उनके मुकदमें की स्वयं पैरवी करके सैकड़ो लोगों को मृत्युदण्ड से मुक्ति दिलाते थे। वे निर्धन गरीब और दु ख से सताये हुए लोगों के साथ सहयोग के लिए सबसे आगे रहते थे। जब उनकी अच्छी प्रैक्टिस चलती थी, उन्होंने एक मकान का क्रय किया, किन्तु आर्थिक तंगीयता विक्रेता की वृद्धा माँ के मकान खाली करते समय गिरते हुए आँसुओं से द्रवित होकर, वह मकान सहायता स्वरूप उसे नि शुल्क वापस दे दिया था। हिन्दू मुस्लिम दंगों के समय पीड़ित हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों की सहायता करते थे।

३ ऐसे व्यक्तियों में प्रदर्शन या आकर्षित करने की इच्छा नहीं होती। ये अत्यन्त सरल एवं सहज होते हैं। अपने सही स्वरूप को स्वीकार करते हैं। उसके लिए लज्जा या संकोच नहीं करते। मालवीयजी जो काम करते थे, उसके पीछे प्रदर्शन और आकर्षण की उनकी कोई भावना नहीं रहती थी। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन के अनुसार—मालवीयजी देश-हित में जो भी महत्वपूर्ण कार्य करते थे—एक अगुआ रहते थे। कार्य वह स्वयं करते थे और श्रेय किसी अन्य को मिलता था। उनके जीवन में ऐसी घटनाओं का बाहुल्य है, जो उनकी उक्त ॥ ना परिचायक है।

४. सामान्यतः लोग जिन कार्यों से बड़ी आसानी से ऊब जाते हैं, उनसे वे शीघ्र नही ऊबते; अपितु वे सदैव ताजा रहते हैं। मालवीयजी देश, समाज, धर्म, राजनीति तथा शिक्षा आदि के अपने कार्यक्षेत्र मे निरन्तर सम भाव से गतिशील रहे। अपने कार्यों की शिथिलता और कठिनाइयों के समय मे भी वह लगन के साथ लक्ष्य की ओर गतिशील रहे। राष्ट्रीय आन्दोलन के समय कई बार ऐसा समय आ जाया करता था जब ऐसा प्रतीत होने लगता था कि सब समाप्त हो गया। स्वराज्य आन्दोलन की अब समाप्ति हो गयी। ऐसे समय मे मालवीयजी नये सिरे से समभाव से आगे आते थे और बिना ऊबे हुए आन्दोलन को पुन गति प्रदान करते थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की आर्थिक कठिनाइयों के समय भी वे इसी उत्साह से बिना ऊबे और हताश हुए कार्यरत रहते थे।

५. ऐसे व्यक्ति मानवजाति को प्यार करते हैं तथा स्वतन्त्र विचारधारा के होते है। उनकी घनिष्ठता किसी विशेष वर्ग, शैक्षिक स्तर, राजनीतिक विचार-धारा वाले, जाति या रंग वाले व्यक्ति से नही होती। वे इनके भेद-भाव से अनभिज्ञ रहते है तथा किसी से भी सीखने की इच्छा रखते हैं। मालवीयजी का सदा यही प्रयास रहता था कि कही भेद-भाव न हो। इसी भेद-भाव को मिटाने के लिए उन्होने अस्पृश्यता निवारण, मन्त्रदीक्षा आदि कार्यक्रमों का आयोजन किया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे कहा था कि मैं जात-पॉत नही मानता। उन्होंने कार्य और देशभक्ति के आधार पर गाधीजी को देश का महान् नेता माना था। हिन्दू समाज की वर्ण व्यवस्था मे उत्पन्न भेद-भाव तथा स्तरीकरण की ऊँच-नीच की व्याप्त भावना को वे समाप्त करना चाहते थे।

६. इनमें रचनात्मकता का सहज गुण होता है। ये जीवन के किसी-न-किसी क्षेत्र मे अपनी रचनात्मकता का उदाहरण अवश्य प्रस्तुत करते हैं। मालवीयजी के सम्बन्ध मे हम पाते है कि वह देश के नेताओ मे सर्वाधिक रचनात्मक कार्य-उन्मुख रहने वाले व्यक्ति थे। अन्त्यज-अस्पृश्यता तथा उनकी सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए उन्होने ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त को एक ही मण्डप मे दीक्षा कार्यक्रम इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर आरम्भ किया था। इसके अतिरिक्त काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति का सबसे पुष्ट प्रमाण है।

सारांश

मालवीयजी का जीवन और कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण समाज को समर्पित था। उन्होने समाज का अनेक प्रकार से नेतृत्व किया था। उनके सम्पूर्ण नेतृत्व और कार्यों मे सृजनशीलता तथा राष्ट्रीयता का समन्वित समुच्चय दृष्टि-गोचर होता है। उन्होने जो कुछ भी कार्य किया उसके मूल मे उनकी 'सेवा' की मूल भावना समाहित थी। सेवा का मंत्र उन्हें भारतीय शास्त्रीय परम्परा, सभ्यता और संस्कृति से प्राप्त हुआ था। देश के उत्थान के लिए उन्होने अन्यान्य क्षेत्रो मे भी

बहुत-सा कार्य किया था। मालवीयजी देशसेवा के बदले मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए तनिक भी इच्छुक नही रहते थे, अपितु काग्रेस आदि मे जब कभी भी उन्हें उच्च पदों पर बैठाया गया, उन्होंने सदैव एक निष्ठावान 'सेवक' की भांति अपने पद का उपयोग किया था। संगठन मे उनके कार्यों के अध्ययन से हम पाते हैं कि उनका प्रयास सदैव सगठन के विविध मतावलम्बियों को राष्ट्रीयता के नाम पर एक मत करने की दिशा मे रहा है। जीवन वृत्त के इन कार्यो का विशद चित्रण उनके व्यक्तित्व-सम्बन्धी विश्लेषण को, इस अध्याय के उत्तरार्ध मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है, जिसमें उनके अन्यान्य कार्यों का वैज्ञानिक मूल्यांकन किया गया है। मालवीयजी के सम्पूर्ण जीवन दर्शन के अवलोकन से हम पाते हैं कि वह अपने विचारों को कार्य रूप मे परिणत करने की दिशा मे कार्यरत रहते थे। उनके सामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति उनके कार्यों मे व्यक्त हुई है। अत उनके विचारो का अध्ययन करने के लिए उनके अन्यान्य कार्यों का अध्ययन करना आवश्यक है। वह अपने विचारो को अपने कार्यो द्वारा सदैव मूर्तरूप प्रदान करते रहते थे, यथा—उन्होने अपने शैक्षिक निर्माणो और विचारों को शाश्वत रूप से कार्यशील रखने के लिए शिक्षा जगत् मे अद्वितीय विश्वविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी, जहाँ राष्ट्रीयता, देशभक्ति, धर्म-दर्शन, कला, साहित्य आदि की नैतिक शिक्षा के साथ ही आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की भौतिक शिक्षा की व्यवस्था है। यह उनके पुनर्जागरण, परिवर्तन और आधुनिकीकरण के विचारों की मूर्त निर्माणशाला है। उन्होने हरिजनों तथा अन्त्यजो की सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त को एक ही मण्डप मे 'मन्त्रदीक्षा' देने का कार्य आरम्भ किया था। हिन्दी तथा भारतीय भाषाओं का महत्व बढाने तथा जन-साधारण की कठिनाइयो के निवारणहेतु हिन्दी को न्यायालयो की भाषा के रूप में स्वीकृत कराया था। यहाँ उन्होने पहले से न्यायालयो मे चल रही फारसी जैसी दुरुह लिपि मे लिखी जाने वाली उर्दू भाषा का कोई विरोध नही किया था, किन्तु उसके साथ नागरी लिपि की विशेषताओं को देखते हुए जनसाधारण की कठिनाइयो को दूर करने के लिए नागरी लिपि को न्यायालयों मे प्रतिष्ठित कराया था। दूसरी ओर हिन्दी के प्रसार हेतु हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना करायी थी। इस प्रकार मालवीयजी के कार्य उद्देश्ययुक्त होते थे। उनके साथ उनको वैचारिकी का क्रियात्मक पक्ष भी वर्तमान रहता था, जिसका महत्व समाज के लिए दूरगामी उपयोगिता मे भरपूर होता था। अत. हम कह सकते हैं कि मालवीयजी का जीवनवृत्त समाज मे समाज की प्रगति, विकास, आधुनिकीकरण और समाज सुधार के लिए अपनी विशिष्ट अभिव्यक्ति लिये था, जिसमें अपना सामाजिक प्रतिमान और दर्शन सन्निहित है।

महामना मदनमोहन मालवीय के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ थी। उनमें भारतीय संस्कृति और सभ्यता का सहज स्वरूप अभिव्यक्त होता है। उनके

व्यक्तित्व की विशेषता मे उनका सरल स्वभाव, निष्पक्ष सेवा, सचाई, कर्तव्य-निष्ठा, साहस, धैर्य, वक्तृता, राष्ट्रप्रेम, धार्मिकता, शास्त्रीय ज्ञान का भण्डार, समन्वयवादी विचारधारा, समता तथा अक्रोध आदि का प्रमुख स्थान है। मालवीयजी में उपर्युक्त सभी बातें शाश्वत रूप से पायी गयी हैं। इन बातों की पुष्टि उनके समकालीन उच्चकोटि के भारतीय नेताओं की उनके प्रति विचारधारा के आधार पर तथा उनके बहु उद्देश्यीय कृतित्व के आधार पर स्पष्ट हो जाती है। वे भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य विकास की वैचारिकी के समन्वित समा-कलन या समग्र थे। उनकी वेश-भूषा, रहन-सहन, वैयक्तिक आचार-विचार, खान-पान, भारतीय परम्पराओं पर आधारित थे, परन्तु समाज के सम्बन्ध मे उनकी सुधारवादी विचारधारा पाश्चात्य संस्कृति और भारतीय संस्कृति के समन्वय पर आधारित थी, जिसकी पकड भारतीय संस्कृति की 'मूल' परम्परा पर आधारित थी। पाश्चात्य विकासवादी संस्कृति और सभ्यता के आधुनिकीकरण को उन्होंने भारतीय संस्कृति के प्रभाव द्वारा प्रभावित करते हुए अपनाया था। इस प्रकार उनके व्यक्तित्व का स्वरूप आधुनिक प्रगतिशील तथा परिवर्तनवादी विचार-धारा की अभिव्यक्ति है। दूसरे शब्दो में, उनका व्यक्तित्व भारतीय संस्कृति की आधारशिला पर अडिग रहते हुए पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के भौतिक विकास को अपने में आत्मसात् करने वाला है। इस प्रकार उनके अन्यान्य कार्यों के आधार पर हम पाते हैं कि उनका व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनमें बहुउद्देशीय कार्य करने की क्षमता थी। उनमे वैचारिक भिन्नता के अतिरिक्त वैयक्तिक दुराव नही था। वह सेल्फ एक्युवलाइजिंग व्यक्तित्व गुण सम्पन्न थे।

—:o:—

सन्दर्भ

1. मालवा के किसी राजा ने निश्चय किया कि पचद्रविड और पचगौड, ब्राह्मणों को एक पगत में बैठाकर भोजन कराया जाय। इससे असन्तुष्ट होकर कुछ ब्राह्मण घर छोडकर, पूरब की ओर चलकर, पटना पहुँचे और वही अपना डेरा डाल दिया। इन प्रवासियो मे कुछ प्रयाग में आकर बस गये। मदन-मोहन मालवीय के पूर्वजो ने प्रयाग को ही अपना आवास बनाया।—मुकुट बिहारी लाल : मालवीयजी : जीवन और नेतृत्व, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, स० २०३४ वि०, सन् १९७८ई०, पृ० २६।
2. वर्तमान समय मे भारतीय भवन नाम से जाना जाता है।
3. सीताराम चतुर्वेदी : (सम्पादित) महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, पृ० १८, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, पौष स० १९९३ वि०।

4. वही, पृ० १८।
5. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत) पृ० ३६।
6. वही, पृ० ८१।
7. वही, पृ० ३७।
8. स्वर्गीय हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शोधकर्त्ता को बताया था कि एक बार मालवीयजी ने ज्ञानमण्डल, वाराणसी में छप रहे मैटर में संशोधन हेतु उन्हें अपनी कार से कबीरचौरा (ज्ञान मण्डल) भेज कर मशीन पर चढ़ा हुआ मैटर उतरवाकर संशोधन कराया था।
9. महामना प० मदनमोहन मालवीय, खण्ड ३, (पूर्व उद्धृत), पृ० ८०-१०६।
10. रामनरेश त्रिपाठी, मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० १९४-१९६—(महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ४७।
11. Purusottam Das Tandan; Mahamana Malaviyaji Birth Centenary Commoration Vol. (Mahamana Madan Mohan Malaviya . Jeewan Our Netritva, op. cit. p. 49)
12. महामना प० मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व(पूर्व उद्धृत),पृ० १४९
13. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १९५।
14. आधुनिक भारत के निर्माता पण्डित मदनमोहन मालवीय, पृ० ६० (सकलित) प्रकाशक प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, अक्टूबर १९७०।
15. वही, पृ० १५५।
16. S.L. Dar and Somoskandan : History of Banaras Hindu University, p. 51, B.H.U., Varanasi, 1966.
17. Ibid, p. 53-54. 59-62.
18. 'प्रज्ञा' हीरक जयन्ती विशेषांक, पृ० १२९, प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७६-७७।
19. वही, पृ० ८२।
20. महामना मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १९५।
21. The Honourable Pt. Madan Mohan Malaviya : Life and Speeches, p. 6-7 2nd edition (1918), Ganesh Mahal, Madras.
22. महामना मदनमोहन मालवीय : लेख और भाषण, पृ० ३८-३९, (संकलित) प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (१९६१)।

23. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्‌धृत), पृ० ५११
24. दैनिक 'आज' ७ अप्रैल सन् १९३२।
25. पद्मकान्त मालवीय : मालवीयजी जीवन झलकियाँ, पृ० ३०, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
26. डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी, 'प्रज्ञा' हीरक जयन्ती विशेषांक(पूर्वउद्‌धृत),पृ० ७३।
27. वही, पृ० ७३।
28. दैनिक 'आज' साप्ताहिक विशेषांक, २५-२-१९७९ ई०।
29. 'प्रज्ञा' (पूर्व उद्‌धृत) पृ० ७४।
30. वही, पृ० ७५।
31. वही, पृ० ७६ (महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्‌धृत) पृ० ४९।
32. G. Murphy : *Personality : A Biosocial Approach to* Origins and Structure, p. 31, Narper and Bros. New York (1947).
33. Kingsley Davis, Human Society, p. 197. The Macmillan Company, New York (1969).
34. Ibid., p 197
35. G.W. Allport : Personality—a psychological interpretation, p. 48, (Copy right 1937 Henrp Holt & Co., Inc.)
36. K, Young : A Hand Book of Social Psychology, p. 89, Routledge and Kegan Paul, London (1952).
37. K. Davis : Human Society, p. 222, The Macmullan Company, New York (1969),
38. सीताराम चतुर्वेदी : *महामना मदनमोहन मालवीय* (पूर्व उद्‌धृत), पृ० २९।
39. वही, पृ० ३०।
40. 'हिन्दुस्तान रिव्यू' दिसम्बर १९४६ (पूर्व उद्‌धृत), पृ० ३५४।
41. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्‌धृत), पृ० ४२।
42. व्रजमोहन व्यास, महामना मालवीयजी, पृ० ६६, प्रकाशक : साधना सदन, लूकरगंज, इलाहाबाद।
43. मेरे समकालीन, पृ० ४४७-४४८, अपने समय के राजनीतिज्ञों तथा सामान्य लोकसेवकों के प्रति महात्मा गांधी द्वारा लिखित संस्मरण १९५१, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

44 वही, पृ० ४४८ ।

45. वही, पृ० ४५१-४५२ ।

46. घनश्यामदास बिरला की डायरी के कुछ पन्ने, पृ० २६—महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ४६७ ।
(महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ३८९

47. Jawahar Lal Nehru : An Outo-Biography, p. 157-158, New Delhi 1962.

48. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० १२५ ।

49. महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० १२५

50. महामना मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ४९ ।

51 महामना मालवीयजी (पूर्व उद्धृत), पृ० ११०-१११ ।

52 पद्मकान्त मालवीय, मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (सम्पादित), पृ० १-२, प्रकाशक नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।

53. वही, पृ० ३-४ ।

54. वही, पृ० ३६ ।

55 वही, पृ० ९ ।

56. Malviyaji : Birth Commemoration, Op. cit., p. 215.

57. Ibid, p. 1005.

58. Ibid, p. 1012.

59 Ibid, p. 574.

60. प० जवाहरलाल नेहरू दैनिक 'आज', १५ नवम्बर, सन् १९४६ ।

61. डॉ० राजेन्द्रप्रसाद दैनिक 'आज', १५ नवम्बर सन् १९४६ ।

62. रफी अहमद किदवई . दैनिक 'आज', १५ नवम्बर सन् १९४६ ।

63. सरदार अब्दुल रब निश्तर दैनिक 'आज', १५ नवम्बर सन् १९४६ ।

64. L.P. Thorpe & A.M. Schmuller : Personality an Inter-diciplinary Approach, An East West Edition, p. 42, New Delhi (1965).

65. A.H. Maslaw : Self Actualizing People : A Study of Psychological Health, Personality Symposium No. 1, p. 11-30, New York, Grine & Stratten, Inc. (1950).

अध्याय—३

पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में मालवीयजी के सामाजिक विचार

पुनर्जागरण एव सामाजिक परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य मे मालवीयजी

प्रत्येक महापुरुष अपने समय की ऐतिहासिक परिस्थितियो के पर्यावरण मे उत्पन्न होता है, और उन्ही परिस्थितियों मे अपना योगदान देता है। मालवीयजी के कार्यकाल में भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन और सामाजिक पुनर्जागरण का प्रादुर्भाव हो रहा था। यद्यपि इसे सामाजिक परिवर्तन की सज्ञा देना कठिन है, अपितु पुनर्जागरण और समाज सुधारो को लेकर भारतीय सामाजिक सरचना मे परिवर्तन के स्रोत फूट निकले थे। सामाजिक परिवर्तन पद का प्रयोग सरल परिवर्तन या परिवर्तन उन्मुखता के अर्थ मे किया गया है। पुनर्जागरण की निम्न-लिखित मूल प्रवृत्तियाँ मालवीयजी के कार्य काल मे उभर रही थी—

१. परम्परागत भारतीय सस्थाओ की कुरीतियों से विद्रोह और उनमें सुधार का संगठित प्रयास सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह, जाति प्रथा और हिन्दू समाज के ब्राह्मणो के शोषण ऐसी समस्याओं के विरुद्ध स्वर उठ रहे थे।

२. भारतीय सस्कृति और परम्परा के आधुनिकीकरण का प्रयास प्रारम्भ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज द्वारा आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ वैदिक कालीन सास्कृतिक और पुनर्जागरण का प्रयास प्रारम्भ था।

३. राजनीतिक क्षेत्र मे राष्ट्रीय कांग्रेस ऐसी सस्था का संगठन हो चला था और दक्षिणी अफ्रीका मे महात्मा गाधी ऐसे नेता के कार्यों का प्रसार हो रहा था।

इन प्रवृत्तियो के बीच मालवीयजी ने पुनर्जागरण मे अपना योगदान दिया। उनका योगदान पुनर्जागरण की मूल प्रवृत्तियों से पृथक् नही था। हिन्दू समाज और सस्कृति का उत्थान वे भी चाहते थे, किन्तु यूरोप की आधुनिक सभ्यता की उपलब्धियो को भी अपने देशवासियो तक पहुँचाना चाहते थे। वे निर्धनता का उन्मूलन चाहते थे। हरिजनों का उद्धार चाहते थे। साथ ही भारत की प्राचीन

सभ्यता का आधुनिकीकरण करना चाहते थे। मालवीयजी सांस्कृतिक पुनर्जागरण और भारतीय समाज को आधुनिक बनाना चाहते थे। उनके समक्ष राजनीतिक आधुनिकीकरण की प्राथमिकता नही थी। मालवीयजी प्रारम्भ मे अंग्रेजी शासन से देश को लाभान्वित कराना चाहते थे, किन्तु बाद मे उनके विचार बदल चुके थे और वे देश की स्वतंत्रता को प्रधानता देने लगे थे। कांग्रेस के मच से ससद के अन्दर और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के रूप मे उन्होने देश में जागृति की ऐसी लहर उत्पन्न की, जिसका तार्किक परिणाम स्वाधीनता की लडाई और राष्ट्र के पुनर्निर्माण के रूप मे फलित हुआ। यहाँ इसी परिप्रेक्ष्य मे रहकर मालवीयजी के सामाजिक विचारो का अध्ययन किया गया है।

अठारहवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारत मे अंग्रेजो के आधिपत्य, अज्ञानता तथा अन्धविश्वास के कारण राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक रीति-रिवाजो के क्षेत्र मे ऐसी कुप्रथाएं प्रचलित हो गयी थी, जिनकी उपस्थिति मे भारतीय जनता निरन्तर पतन की ओर अग्रसर हो रही थी। जीवन के सभी क्षेत्रो मे उसे अपने कर्त्तव्यों से तथा यथार्थ पथ से अवगत कराने की आवश्यकता थी। ब्रिटिश सरकार को शासन करने के लिए जनजागृति को विकसित करने की आवश्यकता नही थी। ज्ञान के प्रकाश से दूर, अन्धकार मे पड़ी भारतीय जनता अपनी रूढियों तथा परम्पराओ की अभिवृत्तियो से ग्रसित थी। विश्व के महान् कूटनीतिज्ञ अंग्रेजो की नीति और कुशाग्रबुद्धि से गतिशीलता और विकास के लिए पुनर्जागरण उस काल की प्रमुख मांग थी, जिसके सन्दर्भ में अनेक सुधारकों के नाम आते रहे हैं, जिनमे सुधारवादी जागृति के जनक राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, दादाभाई नौरोजी, गोपालकृष्ण गोखले, के साथ ही महामना मदनमोहन मालवीय तथा गाधीजी का योगदान विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

पुनर्जागरण एव सामाजिक परिवर्तन

पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तन शब्द सापेक्षिक हैं। भारत मे सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित विषय के अध्ययन के लिए प्रोफेसर श्रीनिवास के शब्दो मे— 'आधुनिक भारत मे सामाजिक परिवर्तन का विषय बहुत विस्तृत और जटिल है, उसको ठीक-ठीक समझने के लिए आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक, इतिहास, विधि, राजनीति, शिक्षा, धर्म, जनांकिकी और समाजविज्ञान जैसे विभिन्न क्षेत्रो के बहुत-से अध्येताओ के दीर्घकालीन सहयोग की आवश्यकता होगी।'[1] परन्तु यहां हमारे अध्ययन की समस्या पुनर्जागरण और परिवर्तन के सन्दर्भ मे मदनमोहन मालवीय के सामाजिक विचारो का अध्ययन करना है। अत. हम परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रो० श्रीनिवास द्वारा उल्लिखित आर्थिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, विधि, राजनीति, शिक्षा, धर्म, जनांकिकी और समाज-विज्ञान के क्षेत्रों मे मालवीयजी के सामाजिक विचारों का अलग-अलग अध्यायो में अध्ययन करेंगे।

इस अध्ययन मे सामाजिक परिवर्तन के माध्यम से पुनर्जागरण की विवेचना के पूर्व सर्वप्रथम हमे यह देखना होगा कि 'परिवर्तन' के सम्प्रत्यय की क्या विशेषताएँ हैं ? वस्तुत समाज की प्रकृति में दो प्रकार के तत्त्व निहित होते हैं—

(१) समाज की परम्पराओं मे सातत्यमूलक प्रकृति तथा

(२) समाज की परम्पराओं मे परिवर्तनमूलक प्रकृति।

परम्पराओं मे सातत्यमूलक प्रकृति

प्रत्येक समाज को अपनी विशेषताएँ होती हैं। देश, काल और पात्र के अनुरूप समाजीकरण के माध्यम से समाज मे व्यक्ति और समुदाय इन परम्पराओ के माध्यम से अनुप्रेरित होते हैं। इन सामाजिक आदर्श नियमो के प्रति व्यक्ति और समुदाय की भावनाएँ, अभिवृत्तियाँ पूर्वग्रह तथा रूढियुक्तियाँ आदि स्थायीभाव के रूप में वर्तमान रहती हैं। इनमे विभिन्न संस्कृतियो एव सभ्यताओं के समर्ग से प्रगतिशीलता के परिपथ मे परिवर्तन होते रहते हैं। परिवर्तन मूल्यो के स्थायीभावो मे मूल्यो के स्थानान्तरण का एक स्वरूप है। परम्पराओ मे कुछ ऐसी भी मूल बातें होती हैं, जो उस समाज की सस्कृति की केन्द्र विन्दु होती हैं। इसी केन्द्र विन्दु पर सस्कृति और परम्पराओं के आत्मगत तथ्य निरन्तर अथवा सातत्य रूप मे वर्तमान रहते हैं। इसे हम परम्पराओ मे सातत्यमूलक प्रकृति के रूप मे स्थिर पाते हैं।

समाज की परम्पराओं म परिवर्तन मूलक प्रकृति

परम्पराओ में कतिपय ऐसी प्रकृति उस समय सामने आती है जब संस्कृतीकरण और आधुनिकीकरण की सास्कृतिक सयोगिता के कारण परम्पराओं में मूल अथवा आत्मगत केन्द्रीय शाश्वत (स्थिर) परम्परा के केन्द्रीय तत्त्व (आत्म) के चतुर्दिक परिवर्तित होते रहते हैं।

सामान्यतः परिवर्तन पुनर्जागरण की चेतना के परिणामस्वरूप होते हैं। सामाजिक परिवर्तन आधुनिकीकरण, अभिनवीकरण तथा संस्कृतीकरण के द्वारा समाज की परम्पराओ, मान्यताओं, लोकरीतियो, अभिवृत्तियो, प्रथाओं, रहन-सहन इत्यादि मे होते हैं। पुनर्जागरण की दिशा मे नेता लघु तथा दीर्घ पैमाने पर परिवर्तन की दिशा में अगुआई करते हैं। पुनः अनुकरण द्वारा अनुगामियो के अनुगमन के माध्यम मे उक्त परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होता है। परिवर्तन जब छोटी-मोटी बातो मे छोटे-छोटे समूहों मे होता है तो समूह के परिवर्तन का नेतृत्व समूह का नेता करता है और जब उक्त कार्य सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए होता है तो नेतृत्व राष्ट्रीय स्तर का नवजागरण से प्रभावित नेता करता है, जिस पर लोगों की किसी-न-किसी रूप मे आस्था होती है। कभी-कभी परम्पराओ में आस्था रखने वाले लोगों का विरोध भी परिवर्तन पथ पर अवरोधक बनकर सामने आता

रहता है, परन्तु युग की माग के अनुसार नवजागरण की शाश्वत चेतना के प्रवाह मे उक्त अवरोधक तत्त्व धीरे-धीरे स्वत ही तिरोहित हो जाते हैं। कभी-कभी अवरोधो और विरोधो के कारण परिवर्तन की गति शिथिल भी पड जाती है, किन्तु नेतृत्व की नवजागरणवादी प्रवृत्तियाँ आगे आने वाले अनुगामियो के नेतृत्व के माध्यम से परिवर्तन की उक्त नवजागृत प्रवृत्ति को आन्दोलित करते हुए क्रमशः लक्ष्य की दिशा मे पहुँचाने मे सफलता प्राप्त करती ही है। कभी-कभी उक्त प्रक्रिया मे नेतृत्व की एकाधिक पीढियो का समय भी लग जाता है, परन्तु पुनर्जागरण द्वारा लक्ष्य अवश्य प्राप्त होता है। कभी-कभी प्रथाओ से पीडित जनमानस परिवर्तन चाहता है, परन्तु वह सार्वजनिक क्षेत्र मे कुछ करने मे असमर्थ रहता है, जैसे सती प्रथा से पीडित लोग अपनी बालिकाओ, बहुओ, बहनो आदि को सती होते देखकर अवश्य ही उद्विग्न होते रहे होगे, परन्तु प्रथा का पालन सामाजिक रीति बन जाने के कारण लोक-निन्दावश वे इसका विरोध नही कर पा रहे थे। अत. पुनर्जागरण के नेता राजा राममोहन राय ने जब परिवर्तन के लिए इस प्रथा का विरोध किया तो वह प्रथा उन्ही के जीवन काल मे वैधानिक ढग से पूर्णरूपेण रुक गयी, परन्तु बाल विवाह, दहेज प्रथा और अस्पृश्यता विरोधी नियम बन जाने के बाद भी समाज मे ये प्रचलित है। परन्तु परिवर्तन की दिशा मे राजा राममोहन राय के परवर्ती नेतृत्व शृङ्खला मे मदनमोहन मालवीय, गाधीजी आदि के एक के बाद दूसरी पीढी के प्रयास जारी है और पुनर्जागरण की चेतना का सचार हो जाने पर क्रमश इनका भी निराकरण परिवर्तन की दिशा मे होना अभीष्ट है, परन्तु इसमे कई पीढियो का समय लग सकता है।

परिवर्तन शब्द के साथ आधुनिकीकरण का समायोजित स्वरूप सन्निहित होता है। डेनियल लर्नर ने 'पश्चिमीकरण' और 'आधुनिकीकरण' दोनो शब्दो की उपयुक्तता पर विचार करने के बाद आधुनिकीकरण शब्द को स्वीकार किया।[2] उन्होंने बताया कि आधुनिकीकरण मे सामाजिक गतिशीलता भी निहित होती है। गतिशीलता समाज की तर्कबुद्धिको प्रोत्साहित करती है,क्योकि चयन की सम्भावनाएँ व्यक्ति के व्यवहार निर्धारित करती है, तथा पुरस्कारो को प्रतिबन्धित करती है।[3] आधुनिकीकरण का सम्प्रत्यय अपेक्षाकृत युग मे होने वाले परिवर्तनो का सूचक होता है। कोई भी समाज पूर्णरूपेण आधुनिक नही हो सकता। प्रत्येक समाज आधुनिकीकरण की दिशा मे निरन्तर गतिशील होता है।[4] प्रोफेसर श्यामाचरण दुबे ने आधुनिकीकरण को एक प्रक्रिया बताते हुए कहा है 'परम्परा अथवा अर्द्ध परम्परा (quasitradition) का एक निश्चित वाञ्छित प्रकार की ओर सामाजिक संरचना, मूल्य अनुस्थापन, प्रेरणा तथा प्रतिमान को ध्यान मे रखते हुए मुखर होता है।'[5] इससे स्पष्ट होता है कि आधुनिकीकरण केवल परिवर्तन की प्रक्रिया ही नही है, अपितु यह एक विशेष प्रकार की मूल्य व्यवस्था भी है। आधुनिकता की अभिवृत्ति रूढिवादी तब होती है जब प्राचीन विचार

नवीन विचारों के अधीन होते हैं। वे पुरातन विचारो का संरक्षण करते हैं। आधुनिकता की मनोवृत्ति क्रान्तिकारी तब होती हैं जब प्राचीन विचारो का सन्निकर्षण के द्वारा नवीनीकरण और आकृतीकरण (Nullication) होता हैं।

पुनर्जागरण का अभिप्राय नवीन प्रगतिशील मूल्यो की अनुस्थापना की दिशा मे नवचेतना की पुन' स्थापना है। दूसरी ओर पुनर्जागरण शब्द कुछ देश विशेष के राजनीतिक इतिहास और जनोत्थान से सम्बन्धित हैं।[6] भारत मे पुनर्जागरण और परिवर्तन के सन्दर्भ मे मालवीयजो की सामाजिक भूमिका के विषय का चिन्तन इस प्रबन्ध की मूल स्थापना है। प्रत्येक युग के परिवर्तन और प्रगतिशील सुधारवादी विचारक के सामने समाज की अनेक कुप्रथाएँ रहती हैं। राजा राममोहन राय ने अपने युग की सबसे जघन्य सती प्रथा को सबसे पहले समाप्त करने का कार्य किया था। इसी प्रकार अछूत आदि की समस्याओ पर मालवीयजी और गाधीजी ने सर्वाधिक ध्यान दिया। उसे समाप्त कराने की दिशा मे वे गतिशील हुए।

इस सन्दर्भ मे पुनर्जागरण और परिवर्तन की सम्प्रत्ययात्मक विवेचना के उपरान्त अब इस अध्ययन की आगे की विवेचना मे हम सबसे पहले पुनर्जागरण काल और उसके प्रवर्तको के कार्यो की विवेचना के पश्चात् मालवीयजी के पुनर्जागरण एव परिवर्तन से सम्बन्धित सामाजिक विचारो की, उनके कार्यों के आधार पर विवेचना प्रस्तुत करेंगे।

समाज मे बहुत-सी औचित्यविहीन प्रथाएँ तथा परम्पराएँ चल पडती हैं। परिवर्तन तथा आधुनिकीकरण की दिशा मे सामाजिक परम्पराओ तथा रूढियो मे सुधार हेतु नवीन अभिजन को ऐसे तर्कों का उपयोग करना पडता हैं, जिन्हें न केवल कट्टरपथी अपितु आम जनता भी स्वीकार करे। भारत मे उक्त दोनों वर्गों को साथ लेने के लिए हिन्दू धर्मशास्त्र का प्रमाण सबसे बडा प्रमाण था। मेनार्ड के शब्दो मे कोई भी रीति-रिवाज अनिष्टकर होते हुए भी इसलिए पालनीय है क्योंकि वह शास्त्र विहित है। शास्त्र एक व्यापक शब्द है। उसमे बहुत-से ग्रथ आ जाते हैं। सभी सामान्य रूप से प्रमाण नही है और न ही सबमें एक मत पाया जाता है। विल्सन, मैक्समूलर प्रभृति प्राच्य विद्या विशारदो ने भी यह माना है कि ऋग्वेद की एक ऋचा मे सती होने की भ्रामिक बात का उल्लेख इसी बात का प्रमाण हैं। स्मरणीय है कि १८०८-३०ई० मे पण्डितो का बोलबाला था। सरकार जिनसे अभिमत मॉंगती थी, वे धर्म ग्रथो के विषय में कोई सन्देह उठाने को तैयार नही थे।[7] कट्टरपथी और सुधारक दोनो ही अपने विचारो के समर्थन में शास्त्रों का प्रमाण देते थे।[8] श्रीकुमार के अनुसार—हिन्दू धर्म में शताब्दियों से दोषयुक्त अभिवृत्तियों के परिष्कार हेतु राजा राममोहन राय जैसे सुधारवादी भी वेदो की ओर उन्मुख हुए। इस प्रकार परिवर्तन की प्रक्रिया में भारतीय समाज-सुधारकों ने समाज की भारतीय परम्पराओं को आधार बनाकर कार्य किया।

प्रोफेसर योगेन्द्र सिंह के अनुसार—भारतीय समाज के सन्दर्भ में सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा स्पष्ट करना अत्यन्त दुरूह कार्य है। यहाँ 'परिवर्तन और आधुनिकीकरण' शब्द के साथ आदर्शवादी शब्दार्थ जुड़े हुए हैं।[१०] भारतीय समाजशास्त्रियों ने अपने नैतिक और आदर्शवादी विचारों के आधार पर इस धारणा का स्पष्टीकरण किया है। भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत करने के बाद भी इन विचारकों ने परिवर्तन के निमित्त परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकार किया है........इनमें कुछ विचारकों ने मन्द परिवर्तन के विषय में बताया है। समर्थ विचारकों ने परिवर्तन को 'विकास' तथा 'प्रगति' कहा है। यहाँ किसी राष्ट्र से सामाजिक परिवर्तन को किसी विशेष संस्कृति के आधार पर स्पष्ट करना अधिक उपयुक्त होगा।

मालवीयजी के दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्र के सामाजिक विचारों को समझने के लिए देश के सांस्कृतिक परिवर्तन के सन्दर्भ में सामाजिक व्यवस्था के आधार के रूप में अधिकतर आत्मवंचना तथा नैतिक विकास ही दृष्टिगत होता है। आत्म-सन्तुष्टि और आशावादिता की धारणा यहाँ की सामाजिक व्यवस्था के निर्धारण को कम प्रभावित करती है। प्रत्येक समाज की अपनी पृथक् विशेषताएँ होती हैं। भारतीय सामाजिक परिवर्तन को बताना परिवार, जाति, राजनीति, साम्प्रदायिक शासन, विकास तथा संवैधानिक अधिकार विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी आदि के बिना असम्भव है। मालवीयजी ने इस दिशा में भारतीय समाज को अपना रचनात्मक योगदान किया और परिवर्तन तथा विकास के लिए अनेक कार्यक्रम निर्धारित करते हुए नयी पीढ़ी को सुसंस्कृत करने के लिए धर्म, दर्शन, कला-साहित्य और ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी की शिक्षा-व्यवस्था के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की।

उन्नीसवीं शताब्दी का एक प्रश्न भारतीय परम्पराओं के सम्बन्ध में सबसे पहले सुधार की प्रेरणा के रूप में उत्पन्न हुआ। नये अभिजन की पहली प्रक्रिया समकालीन भारत की भयंकर सामाजिक कुरीतियों को हटाने के लिए आन्दोलन करने की हुई। राष्ट्रवादी प्रेरणा उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में क्रमशः प्रबल हुई, यहाँ तक कि अन्तिम दशक में यह प्रश्न बड़ी तीव्रता से उभरकर सामने आया कि पहले सुधार चाहिए या स्वतन्त्रता.....—'उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ के प्रथम ही राजा राममोहन राय के कार्यों ने उसमें योगदान दिया था। हिन्दू धर्म पर ईसाई प्रचारकों के प्रहारों ने कट्टरपंथी और सुधारक दोनों को एक करके, ईसाई धर्म के विरुद्ध आवाज उठाने को प्रेरित किया।'[११]

१८३० ई० तक कलकत्ता में बुद्धिजीवियों का एक प्रभावशाली वर्ग निर्मित हो चुका था, जो स्थानीय समाज को सम्पूर्ण रूप में अस्वीकार करने के लिए बदनाम था, जो उसके स्थान पर ईसाई धर्म सहित प्रत्येक पश्चिमी वस्तु को,

अंगीकार करता था। यह उपयुक्त ही था कि वे अपनी पश्चिम की स्वीकृति का प्रतीक गौमास-भक्षण मानते थे।[12] प्रगतिवादी कहलाने वाला उक्त विचार मालवीयजी को कदापि पसन्द नही था। वह भारतीय परम्पराओ की देन थे। अत: भारतीय संस्कृति और समाज उनके जीवन का आवश्यक अग था। पश्चिमीकरण का इस प्रकार का अन्धानुकरण वह आत्मघाती मानते थे। पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी को ग्रहण करना वह भौतिक विकास का साधन मानते थे।' उनके अनुसार देश के धर्म-दर्शन, कला, सस्कृति आदि में व्यक्ति की अन्तरात्मा प्रतिबिम्बित होती है। अत इनसे विमुख होकर पर-सस्कृति और सभ्यता का अन्धानुकरण अपने सुसस्कृत स्वरूप को विकृत करने के समान है। मालवीयजी इसे त्याज्य मानते थे।

अठारहवी शताब्दी के अन्तिम दशको मे सस्कृत साहित्य, विधि सम्बन्धी और दार्शनिक रचनाओ का अग्रेजी एव जर्मन भाषाओ मे अनुवाद किया गया तथा पुरातत्वविदो, मुद्राशास्त्रियो और पुरालेखविदो के कार्य द्वारा भारतीय इतिहास और प्रागितिहास का क्रमश उद्घाटन होने लगा।[13] 'पश्चिम तथा पश्चिम प्रेरित विद्वानो के कार्यो के परिणामस्वरूप भारतीय सभ्यता के नवीन और वस्तुनिष्ठ परिप्रेक्ष्य प्रकट हुए. वह ऐसी सभ्यता थी, जो ईसा के तीन हजार वर्ष पूर्व तक जाती थी और आश्चर्यजनक रूप मे सर्वतोमुखी थी। इस प्रकार नये अभिजन को अपने देश के प्रति उसकी समृद्धि और प्राचीन सस्कृति के प्रति गर्व का भाव जागृत हुआ। इससे उन्हे पश्चिम की भौतिकता का सामना करने की आत्मशक्ति प्राप्त हुई। दूसरे उनमे एक राष्ट्र बनने, स्वाधीन, सर्वसत्ता-सम्पन्न और दूसरो के बराबर होने की अभिलाषा निरन्तर शक्ति का स्रोत बनी रही।[14] इस प्रकार भारतीय समाज मे आत्मविश्वास प्राप्ति करने का कार्य भी पश्चिम के तत्वान्वेषी प्रवृत्ति के कारण सम्भव हुआ। यदि पश्चिम के लोगो ने भारतीय दर्शन मीमासा तथा सास्कृतिक धर्म ग्रंथो का विदेशी भाषा मे प्रकाशन करके, उनके तत्वों का रहस्योद्घाटन न किया होता, तो आज हम अपने शास्त्रो की महान् परम्पराओ को भी न जान सके होते, जिसका आज हमे अभिमान है।

अतः भारतीय पुनर्जागरण काल के सुधारवादी मेधावी नेताओ राजा राममोहन राय आदि का उक्त शास्त्रीय परम्पराओ की ओर झुकाव स्वाभाविक था। भारत की सामाजिक कुप्रथाओ के निवारणार्थ पुनर्जागरण का आधुनिक काल पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क के कारण आरम्भ होता है। इस प्रसंग मे भारत की सामाजिक कुप्रथाओं के परिवर्तन के सन्दर्भ मे उस काल के प्रमुख प्रवर्तको के कार्यो का उल्लेख, पुनर्जागरण काल के महत्व को स्पष्ट करने मे सहायक होगा। अत. अब नीचे कतिपय पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के क्षेत्र मे कार्य करने वाले प्रमुख भारतीय समाजसुधारको के कार्यों का उल्लेख किया जायेगा, जिनके

प्रयत्नो की कड़ी मे मालवीयजी ने अपने कार्यों को क्रियान्वित करने का प्रयास किया था।

भारतीय पुनर्जागरण काल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारतीय पुनर्जागरण के जनक राजा राममोहन राय

राजा राममोहन राय ने सन् १८५७ के विप्लव से तीस-पैंतीस वर्ष पहले भारतीय समाज की दयनीय स्थिति पर ध्यान दिया। उनकी विचारधारा पश्चिमीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय कुप्रथाओ की ओर आकर्षित हुआ, जिससे भारती जनता पीडित थी, और बाल विवाह के परिणामस्वरूप बहुत-सी युवतियाँ अपने यौवन काल के पूर्व या आरम्भ मे ही विधवा हो जाती थी। जिन्हें पति की चिता पर बिलखती हुई जीवित ही जला दिया जाता था। सम्भवत. यह देश का सबसे घृणित और पाशविक कार्य था, जो प्रथा के रूप मे अनिवार्य हो गया था।

सती प्रथा को समाप्त करने की दिशा मे सर्वप्रथम राजा राममोहन राय का ध्यान आकृष्ट हुआ और उन्होंने इसका उन्मूलन कराया। अत गोखले के शब्दो में—'उन्हें आधुनिक उदारवाद का जनक कहा जा सकता है।' राजा राममोहन राय को एक ऐसे उदारवाद का जनक कहा जा सकता है, जो वैदिक धर्म तथा भारतीय सस्कृति पर आस्था रखते हुए रूढिवादी कुप्रथाओ को समाप्त कर सके और अन्य धर्मों तथा सस्कृतियो को ग्रहण करते हुए मानवीय भावना का सूत्रपात कर सकें। इनकी जागृति, धार्मिक सस्कृति थी, परन्तु राजनीति और आर्थिक क्षेत्रो मे भी इनका योगदान अपना विशेष महत्त्व रखता था। वे अद्वैतवाद, नैतिकता तथा सास्कृतिक सश्लेषण के पक्ष मे थे। साथ ही रूढिवाद, जटिल कर्मकाण्डो तथा रहस्यवाद के विरोधी थे। वे चाहते थे कि हिन्दू समाज पाखण्ड को छोडकर केवल परब्रह्म की उपासना करे। वे बुद्धिसगत शास्त्रीय वाक्यो को ही प्रामाणिक मानते थे। स्वतत्र चिन्तन को मानव का मूलाधिकार समझते थे। भारतीय समाज की उन्नति के निमित्त महिलाओं, निर्धनो तथा पिछड़े वर्गों की उन्नति को वे आवश्यक मानते थे।

वह बहुविवाह प्रथा के भी घोर विरोधी थे। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया था। वे स्त्रियो को समुचित आदर और उत्थान का अवसर देने के पक्षपाती थे। उनके अनुसार पति तथा पिता की सम्पत्ति मे स्त्रियो तथा कन्याओ का भी अधिकार होना चाहिए।

राजा राममोहन राय जाति प्रथा को राष्ट्रीय विकास मे बाधक समझते थे। उनके अनुसार—निर्धनो को नि शुल्क शिक्षा व्यवस्था का प्रबन्ध सरकार की ओर से किया जाना चाहिए। वे यह भी चाहते थे कि कृषकों को लगान में छूट दी

जाय तथा राजस्व की क्षतिपूर्ति विलासिता की वस्तुओं पर कर-वृद्धि द्वारा की जाय। सरकारी सेवाओ मे अंग्रेजो के स्थान पर भारतीयो को नियुक्त करने के भी वे हिमायती थे। अपने परिपत्र में दीवानी न्यायालयो मे भारतीय न्यायाधिपतियों की नियुक्ति की भी उन्होंने माग की। उन्होने न्यायाधीश तथा मजिस्ट्रेट के पद का भार एक ही व्यक्ति को देने का भी विरोध किया तथा दीवानी और फौजदारी अधिनियम बनाने की माग की।

ब्रह्म समाज की स्थापना करने के बाद उन्होंने घोषणा की कि एक ही प्रार्थना-भवन मे सभी प्रकार के व्यक्ति बिना भेदभाव के एकत्रित हो और धार्मिक भक्तिभाव से निराकार ब्रह्म की उपासना करें। मूर्ति पूजा, मूर्त या अमूर्त वस्तु पूजा को वे निरर्थक मानते थे।

उनके इन प्रयासो के विरोध मे हिन्दुओ ने ब्रह्म-समाज की प्रतिद्वन्द्वी धर्म-सभा की स्थापना की तथा राधाकान्त के नेतृत्व मे ब्रह्मसमाज तथा समाज सुधार का खुलकर विरोध किया। ये लोग धार्मिक परम्पराओं एव समाज व्यवस्था-परिवर्तन मे सुधार करना धर्म-विरुद्ध मानते थे। इनके विचार और विश्वास मे नारी की अपेक्षा पुरुष का स्थान ऊँचा होता है। शास्त्र के अनुसार नारी को पिता-पति या पुत्र के अधिकार मे रहना चाहिए। सती प्रथा के विरोधियो के विरोध मे धर्मसभा ने स्वयं सेवकों को भी सगठित किया। इन विरोधियो के विरोध में अनेक प्रतिभावान् नवयुवको ने ब्रह्मसमाज का सदस्य बनकर महत्वपूर्ण कार्य किये, किन्तु कुछ समय पश्चात् ब्रह्मसमाज मे फूट पड जाने के कारण वह तीन भागो मे बट गया। पश्चात् उनमे पुन. एकता स्थापित हो गयी, परन्तु बीच की आपसी फूट द्वारा उसकी प्रतिष्ठा पर आघात पहुँचा। ब्रह्मसमाज वालो ने सती प्रथा जैसी जघन्य हत्याओं का विरोध किया और जनमत जागृत करके, इस प्रकार की महिलाओं को जीवित जला देने की प्रथा के विरोध मे कानून पारित कराया।

दादाभाई नौरोजी

सन् १९२५ मे बम्बई मे एक साधारण पारसी परिवार मे दादाभाई नौरोजी का जन्म हुआ और उन्होंने अपने बालपन से ही सामाजिक कार्य आरम्भ किया। दादाभाई का योगदान राजा राममोहन राय की अपेक्षा धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्रो मे नगण्य-सा रहा। इनका आर्थिक एवं राजनीतिक क्षेत्र मे उल्लेखनीय योगदान रहा और उन्होंने राष्ट्रीय नवयुवकों को प्रेरित किया। जहाँ राजा राममोहन राय 'आधुनिक उदारवाद' के जनक थे वहाँ दादाभाई 'धर्म निरपेक्ष' राष्ट्रीय तथा मध्यवर्गीय आन्दोलन के जनक थे। दादाभाई उच्चकोटि के समाज सुधारक थे। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के आदिम भारतीय [illegible] के उन्नायक थे।

महादेव गोविन्द रानडे

सन् १८५७ के विद्रोह के कुछ ही वर्ष बाद महाराष्ट्र में प्रार्थना सभा के नाम से सामाजिक जागृति का आरम्भ हुआ। यह जागृति राजा राममोहन राय की विचारधारा से प्रभावित थी।

रानडे ने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए औद्योगिक कान्फरेंस की नींव डाली तथा समाज सुधार हेतु सोशल कान्फरेंस की स्थापना की। वह देश की आर्थिक समृद्धि हेतु नवीन वैज्ञानिक प्रविधि का प्रयोग, नवीन उद्योगों की स्थापना, प्राचीन कुटीर उद्योगों का पुनरुत्थान एवं कृषि व्यवसाय तथा व्यवस्था का समुचित सुधार आवश्यक मानते थे।

स्वामी दयानन्द

स्वामी दयानन्द वेद को अपौरुषेय मानते थे। वेद को चार ऋषियों के माध्यम से अवतरित दैवीज्ञान तथा सम्पूर्ण ज्ञान का भण्डार समझते थे। उन्होंने प्रचलित मूर्तिपूजा, पौराणिक आचार-विचार तथा कर्मकाण्ड की आलोचना की और वैदिक कर्मकाण्ड तथा उपासना पद्धति का प्रतिपादन किया। बहुत-से अन्य धर्मावलम्बियों को वैदिक धर्म में लाकर अद्वैत एकेश्वरवाद द्वारा एकता स्थापित करते हुए वैदिक धर्म के महत्व को व्यापक बनाने का प्रयास किया। वह वर्णाश्रम व्यवस्था द्वारा जीवन की सार्थकता को सत्यापित करना चाहते थे। परन्तु वह जातिप्रथा के विरोधी थे। इनकी व्यवस्था द्वारा जाति प्रथा जैसी संस्था के बन्धन ढीले पड़े तथा निम्नतम जातियों में उत्थान की जागृति उत्पन्न हुई। उन्होंने साम्प्रदायिक एकता को प्रोत्साहित करते हुए शिक्षा और समाज-सुधार पर व्यापक बल दिया। इनके मतानुयायियों ने बाद में आर्य समाज की स्थापना की।

सनातन धर्म सभा

आर्य समाज के प्रत्युत्तर में इसका उदय हुआ। वेदों पर इन दोनों संस्थाओं की आस्था समान थी। आर्य समाज की विचारधारा के विपरीत यह सभा अवतारवाद, पुराणों की प्रामाणिकता तथा मूर्तिपूजा की उपासना में आस्था रखती थी। इन्हीं आपसी निराकार और साकार पद्धति की उपासना को लेकर दोनों में तनाव-सी-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में श्री रामकृष्ण परमहंस ने संसार के लोगों का ध्यान वेदान्त-दर्शन की प्रतिस्थापना द्वारा भारत की अद्भुत चिन्तन-शैली की ओर आकृष्ट किया। स्वामीजी उच्चकोटि के योगी थे। रामकृष्ण परमहंस ने अनेक नास्तिक लोगों को अपनी ओर आकृष्ट किया। इनमें मुख्य थे नरेन्द्रनाथ दत्त (१८६३) ई० जो आगे चलकर विवेकानन्द के नाम से संसार में विख्यात हुए।

उन्होंने अपनी भौतिक विचारधारा को त्याग कर सन्यासी रूप में देश-विदेश में अध्यात्मवाद तथा अद्वैतवाद का प्रचार किया और सेवा कार्य हेतु १८९७ ई० में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस प्रकार अद्वैत वेदान्त के प्रचार द्वारा स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानन्द ने रूढ़ियों और परम्पराओं की विकृतियों से लोगों का ध्यान भारतीय दर्शन के तर्कवाद की ओर आकृष्ट किया।

मालवीयजी के प्रादुर्भाव-काल में भारत की सामाजिक स्थिति

१८५७ ई० के विद्रोह के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की ओर से गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने १ नम्बर १८५८ई० को प्रयाग में संगम तट पर राजकीय घोषणा का प्रसारण किया, जिसके अनुसार—महारानी ने घोषित किया कि 'हम अपने को भारत भूमि-वासियों के प्रति कर्तव्य के दायित्व से उसी प्रकार आबद्ध समझते हैं, जिस प्रकार कि अपनी दूसरी प्रजाओं के प्रति। भगवान की अनुकम्पा से हम उन दायित्वों को सात्विक और विशुद्ध अन्तःकरण से पूरा करेंगे।''''''' हमारी सब प्रजा चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय या प्रजाति की हो, स्वतन्त्रता और निष्पक्षता के साथ हमारी नौकरियों के पदों पर नियुक्त की जाये।'''' इस घोषणा से भारतीय जनता में कुछ आत्मीयता की भावना जागृत हुई थी, किन्तु इस घोषणा के कुछ दिन पूर्व ब्रिटिश संसद ने ईस्टइण्डिया कम्पनी को उसके राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर भारत के शासन का दायित्व स्वयं अधिगृहीत कर, उसका भार सम्राट् के मन्त्रिमण्डल के अधीन कर दिया। भारतीय शासन का नियमण, निर्देशन तथा निरीक्षण ब्रिटिश मन्त्रिसमिति के एक सदस्य भारतमन्त्री को हस्तान्तरित कर दिया गया। भारतमन्त्री के सहयोग के लिए एक कौंसिल गठित की गयी, जिसके आधे सदस्य अवकाश-प्राप्त अंग्रेज प्रशासक थे तथा आधे भारतीय व्यापार से सम्बन्धित अंग्रेज व्यापारी। यह कौंसिल ब्रिटिश व्यापार के अनुकूल कार्य करती थी।[15]

ब्रिटिश शासक या अंग्रेज राजनीतिज्ञ ही प्रायः भारत के गवर्नर जनरल नियुक्त होते थे। *उसकी कार्यकारिणी समिति के लगभग सभी सदस्य भारतीय सिविल सर्विस के अंग्रेज सदस्य ही होते थे। उनका दृष्टिकोण राजनीतिज्ञ के* अतिरिक्त प्रशासनिक ही अधिक होता था। सेनाध्यक्ष इस कौंसिल का विशिष्ट सदस्य होता था।

मद्रास तथा बम्बई के गवर्नर कभी ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और कभी अनुभवी वरिष्ठ अंग्रेज प्रशासक होते थे। इन दोनों की कार्यकारिणी परिषद के सभी सदस्य इण्डियन सिविल सर्विस से सम्बद्ध अंग्रेज अधिकारी होते थे। अन्य प्रान्तों के सभी अधिकार और शासन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर जनरल या चीफ कमिश्नर के अधीन होते थे। ये लोग इण्डियन सिविल सर्विस से सम्बद्ध अनुभवी अंग्रेजों में

ही होते थे। विधि निर्माण हेतु केन्द्रीय तथा प्रादेशिक कार्यकारिणी में कतिपय सदस्य बढ़ा दिये जाते थे। ये सभी अतिरिक्त सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। इनमें से कतिपय सम्भ्रान्त भारतीय भी होते थे, जो भारतीय जनता के प्रतिनिधि के बजाय उच्चकुलीन अभिवृत्ति के प्रतिनिधि होते थे। भारत मंत्री की पूर्व अनुमति के अभाव में ये परिषदें कोई भी अधिनियम पारित करने के लिए स्वतन्त्र नहीं थी।

भारतीय प्रशासनिक सेवा का सम्पूर्ण प्रशासन पर अधिकार था। इनके सदस्यों की नियुक्ति प्रतियोगिता परीक्षा द्वारा होती थी। यह परीक्षा इग्लैण्ड में होती थी। इस सेवा में भारत और इग्लैण्ड के लोग समान रूप से भाग लेने के लिए स्वतन्त्र थे। २२-२३ वर्ष की आयु में इंग्लैण्ड जाकर उनकी भाषा में अंग्रेजों के मुकाबले परीक्षा में सफलता प्राप्त करना भारतीयों के लिए कठिन था। जब १८६६ ई० में श्री सत्येन्द्रनाथ ठाकुर लन्दन में जाकर इस प्रतियोगिता परीक्षा में सफल हुए तो उसी वर्ष आयु सीमा घटाकर २१ वर्ष कर दी गयी। इस पर भी १८६९ ई० में सर्वश्री सुरेन्द्र बनर्जी, रमेशचन्द्र दत्त तथा के०जी० गुप्त ने सफलता प्राप्त कर ली। इस पर भारत मंत्री ने आयु सीमा १९ वर्ष कर दी। फलत सभी प्रशासनाधिकारी अंग्रेज थे।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हितों को ध्यान में रखते हुए १८६१ ई० में भारत में सेना का नया गठन किया गया और तोपखानों में भारतीय सैनिकों की भर्ती बन्द कर दी गयी। सेना में गोरे सैनिकों की संख्या में वृद्धि कर दी गयी और भारतीयों की नियुक्ति का आधार जाति, प्रान्त और सम्प्रदाय के आधार पर किया जाने लगा, जिससे सैनिकों में पृथक्तावादी भावना का उदय हो और देश में जागृति न हो सके। सेना में भारतीय सैनिक सूबेदार मेजर से ऊपर का अधिकारी नहीं हो सकता था, इससे ऊपर के पदों पर मात्र गोरे सैनिक ही नियुक्त और प्रोन्नत किये जाते थे।

वर्ष १८५७ई० के विद्रोह के पहले से ही ईस्टइण्डिया कम्पनी ने अपनी आर्थिक नीति द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था को पंगु बना दिया था। पुराने लघु उद्योगों का विनाश हो चुका था। सन् १८५८-८५ ई० में डेढ़ करोड़ से अधिक व्यक्तियों की अकाल मृत्यु हो गयी। सन् १८७८-७९ ई० में कपड़ों के आयात पर लगे सीमाशुल्क को वापस ले लिया गया। इससे देशी उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुआ, ब्रिटेन के सूती कपड़ों के आयात में अत्यधिक वृद्धि हुई और वहाँ से ३३ लाख रुपये का कपड़ा भारत आया।

भूमि : भूमि की व्यवस्था में जमीन्दारी व्यवस्था प्रत्यारोपित का गयी, जिससे भू-स्वामित्व किसानों को न मिलकर लगान और अधिकार शोषणकर्ता

जमीन्दारों के अधीन रहा, जो किसानों को बुरी तरह शोषित और उत्पीड़ित करते रहते थे।

विकास मे अवरोध

इस समय श्री सी० वाई० चिन्तामणि के अनुसार सरकार की नीति धीमी उन्नति और तगड़ी प्रतिगामिता मे परिवर्तित रही।[16] सन् १८७९ मे आर्म्स ऐक्ट के माध्यम से भारतीयो को निरस्त्र कर दिया गया। सन् १८७८ मे वर्नाकुलर प्रेस ऐक्ट के माध्यम से देशी भाषा के पत्रों की स्वतन्त्रता समाप्त कर दी गयी ब्रिटिश सरकार ने अपनी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के कारण अफगानिस्तान पर आक्रमण कर दिया, जिसका अधिकाश व्यय भारत को वहन करना पड़ा।

राजनीतिक संस्थाओं का उद्भव

सबसे पहले सन् १८७० के बाद मध्यवर्गीय शिक्षित वर्ग के लोगों की राजनीतिक सस्थाओं की स्थापना आरम्भ हुई थी। 'अमृत बाजार पत्रिका' के सस्थापक देशभक्त श्री शिशिरकुमार घोष ने 'बगाल नेशनल लीग' की स्थापना की और उसके कुछ ही दिन बाद श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री आनन्द मोहन बोस के संयुक्त प्रयास से 'इण्डियन एसोसिएशन' को स्थापना हुई। सन् १८७८ ई० मे श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने दक्षिणी भारत का भ्रमण किया और उन्होने इंगलैण्ड के साथ ही भारत मे भी प्रतियोगिता परीक्षा के आयोजन की माग रखी। उन्होंने सिविल सर्विस के प्रश्न को अखिलभारतीय मेमोरियल पार्लियामेण्ट को भेजा। सन् १८८३-८५ मे कलकत्ता मे 'इण्डियन नेशनल कान्फरेन्स' का आयोजन किया गया। इसमे देश के विभिन्न भागों के कार्यकर्ताओं ने भी भाग लिया था। सन् १८८५ की कान्फरेन्स मे इण्डियन एसोसिएशन और ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन के अतिरिक्त नेशनल मोहम्डन ने भी अपना योगदान दिया था। बम्बई मे श्रीविश्वनाथ नारायण माण्डलिक ने 'बम्बई एसोसिएशन' का नेतृत्व किया। पश्चात् सन् १८८५ मे दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग, फिरोजशाह मेहता आदि के प्रयास से बाम्बे प्रेसिडेन्सी एसोसिएशन का गठन किया गया, जो बाद मे बम्बई प्रदेश की प्रमुख राजनीतिक सस्था बन गयी थी।

सन् १८७० मे श्री गणेश वासुदेव जोशी ने अपने मित्रों के सहयोग से सार्वजनिक सभा का गठन किया। उस संस्था ने महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व मे महत्वपूर्ण कार्य किया। इसने महाराष्ट्र की कृषि समस्या विषयक माग सन् १८७६ मे सरकार के सामने रखी तथा कृषकों की समस्याओं को दूर करने के लिए अकाल नियम लागू करने की माँग की। सन् १८८५ मे लार्ड ह्यूम ने इण्डियन यूनियन का गठन किया जिसमें राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं की कान्फरेन्स करने का निर्णय लिया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन एवं मालवीयजी

२८ दिसम्बर सन् १८८५ को बंगाल के प्रमुख नेता व्योमकेशचन्द्र बनर्जी की अध्यक्षता में बम्बई में गोकुलदास तेजपाल हाई स्कूल के हाल में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (इण्डियन नेशनल कांग्रेस) की नींव डाली गयी। व्योमकेश बनर्जी ने कांग्रेस की नीति तथा गतिविधि पर प्रकाश डाला। साम्प्रदायिक और प्रान्तीय द्वेष का निवारण, राष्ट्रीयता का विकास तथा महत्वपूर्ण समस्याओं पर विचार के पश्चात् भारत के शिक्षित वर्ग के विचारों का अभिलेख आगामी वर्ष का मुख्य कार्यक्रम स्वीकृत किया गया। इस सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधियों ने यह प्रस्ताव स्वीकार किया कि भारत की प्रगति में ब्रिटिश शासन का मूलभूत योगदान आवश्यक है। एक प्रस्ताव में ब्रिटेन और भारत के सम्बन्धों को बनाये रखने पर भी बल दिया गया, जिसको दृढ़ बनाने के लिए शासन की कमियों का निराकरण करने के लिए भारतीय जनता की आकांक्षाओं को पूरा करना तथा उनकी ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करना स्वीकार किया गया तथा प्रशासन में भारतीयों की सहभागिता आवश्यक मानी गयी। महारानी विक्टोरिया की १८५८ ई० की घोषणा को लागू करके सरकार भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त कर सम्बन्ध सुदृढ़ कर सकती है। कांग्रेस ने अपने अधिवेशन में माँग की कि प्रशासन की जाँच पड़ताल के लिए एक राजकीय कमीशन की नियुक्ति की जाय तथा विधान का संशोधन किया जाय। इसकी इण्डियन सिविल सर्विसेज की परीक्षाओं को ब्रिटेन के साथ-साथ भारत में आयोजित करने की माँग भी उल्लेखनीय रही है। कांग्रेस की माँग थी कि भारत मंत्री से सम्बन्धित इण्डिया कौंसिल समाप्त कर दी जाय और सेना पर किया जाने वाला व्यय कम किया जाय। अधिवेशन में कांग्रेस ने यह संस्तुति की कि अपर वर्मा पर आधिपत्य स्थापित न किया जाय, परन्तु यदि ब्रिटेन उस पर स्वाधिकार करना चाहता है तो उसे भारत से पृथक् राजकीय उपनिवेश के रूप में रखा जाय। भारत पर उसकी प्रबन्ध-व्यवस्था का व्यय न लादा जाय। इस प्रकार के कतिपय अन्य प्रस्ताव भी पारित किये गये थे। कांग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में मालवीयजी कांग्रेस महासभा के मंच पर आये। पश्चात् आजीवन इसके माध्यम से देश की सेवा करते रहे।

कांग्रेस का प्रारम्भिक स्वरूप

प्रारम्भ में कांग्रेस मध्यम वर्गीय संस्था थी, उसके संस्थापक उसे राष्ट्रीय संस्था के रूप में आगे बढ़ाना चाहते थे तथा सरकार की राष्ट्रीय नीतियों का वे विरोध भी करना चाहते थे, परन्तु उनके विरोध का ढंग सामान्य और उदारवादी था। कांग्रेस कुछ हद तक अपना उद्देश्य प्राप्त करने में सफल रही। उसे कालाकाँकर के राजा रामपाल सिंह, बंगाल के राजेन्द्र लाल मित्र तथा विजया-

नगरम् के सर गनपति राज आदि जमीन्दारों की सहायता और सहानुभूति उपलब्ध थी। कलकत्ते के ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन ने कांग्रेस के दूसरे वार्षिक अधिवेशन के लिए अपना सभा भवन खोल दिया। धीरे-धीरे कांग्रेस का कार्यक्षेत्र बढ़ने लगा तथा सरकार के विरोध के विपरीत महाराज दरभंगा ने कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के लिए अपनी कोठी प्रयोग में लाने की अनुमति दे दी।

सरकार द्वारा जमीन्दारों का विरोध

१८८८ई० में कांग्रेस की गतिविधि से वाइसराय लार्ड डफरिन असन्तुष्ट थे। अत उन्होंने घोषणा की कि कांग्रेस एक सूक्ष्म अल्प संख्यक वर्ग है। इसका लक्ष्य अज्ञात में बड़ी छलांग है। वर्तमान उत्तर प्रदेश के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर आकलैण्ड कालविन ने इलाहाबाद के ब्रिटिश इण्डियन एसोसिएशन के मुख्य नेताओं को कांग्रेस के विरोध के लिए उत्साहित किया। उसके प्रमुख नेता राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तथा सर सैयद अहमद खां ने देश भक्त सभा का गठन किया। सर सैयद अहमद खां ने १८९३ ई० में मुसलिम डिफेन्स एसोसिएशन का गठन किया तथा मुसलमानों को कांग्रेस से पृथक् रहने की साम्प्रदायिक सलाह दी। उनके इस प्रयास के कारण १८८८ ई० में फतवा द्वारा मुसलमानों को कांग्रेस से रोकने का प्रयास किया गया। इसके उत्तर में लखनऊ आदि के कुछ मौलवीयों ने फतवा दिया कि राजनीतिक क्षेत्र में मुसलमान हिन्दुओं से मिलकर कार्य कर सकते हैं। इस विरोध के पीछे मूल रूप में कांग्रेस कर्मचारियों की साजिश थी। जमीन्दार चाहते थे कि सरकार भारतीय नेताओं से परामर्श करके ही विधि (नियम) बनाये तथा भारतीय नवयुवकों को प्रशासन में योगदान देने का अवसर प्रदान करे, किन्तु इसके लिए वे चुनाव के विपरीत परम्परागत प्रतिष्ठा और महत्व द्वारा ही नवयुवकों के चुनाव के हिमायती थे। मध्यवर्गीय शिक्षितों को जमीन्दार-वर्ग की उक्त विचारधारा मान्य नहीं थी। उनका कहना था कि क्षमता पर किसी का एकाधिकार नहीं होता। १८६१ ई० के इण्डियन कौंसिल्स ऐक्ट के अधीन पारिवारिक मान के आधार पर विधायकों की शासन परस्त और सार्वजनिक हितों की उपेक्षा इसके प्रमाण थे। सर सैयद अहमद खां यह मानते थे कि 'भारत के रईस लोग कौंसिलों की कुर्सी पर बैठने योग्य नहीं हैं पर उनका विचार था कि अदना कौम या अदना दर्जा का आदमी ख्वाह""वह लायक भी हो' नहीं बिठाया जा सकता। उसे रईसों के माल जायदाद का हाकिम नहीं बनाया जा सकता। इसलिए सरकार उस कुर्सी पर सिवाय मुअज्जिज के किसी को नहीं बिठा सकती।[१७] वस्तुतः अहमद खां की उक्तियाँ साम्प्रदायिकता से अधिक ओतप्रोत थी। ऐसी स्थिति में सरकारी पक्ष ने उक्त नेताओं को प्रोत्साहित कर साम्प्रदायिता के माध्यम से कांग्रेस को उसके लक्ष्य को प्राप्त करने में काफ़ी ... उत्पन्न करने का प्रयास किया। अत- हिन्दू और मुसलमान जो एक ...

वासी थे, उन्हें समान आवश्यकता की ओर प्रेरित करके, काग्रेस को राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करने की दिशा में प्रयास करना था, जिससे देश की दयनीय शोषण नीति से मुक्ति मिल सके। ऐसे समय में काग्रेस को हिन्दू और मुसलमानों को एकता के सूत्र मे बाधकर कार्य करने की दिशा मे मालवीयजी का प्रयास महत्वपूर्ण रहा है। अंग्रेजो ने जहाँ कही भी फूट डालने के लिए दोनो मे भेद करने का प्रयास किया, वहाँ मालवीयजी ने सदैव एकता स्थापित करने की चेष्टा की और दोनों को एक ही देश के निवासी होने के कारण समान हित, राष्ट्रीयता और देशभक्ति के आधार पर स्वीकृत करने का प्रयास किया। मालवीयजी के अनुसार एकता मानव जीवन का पहला पाठ है।

भारतीय सुधारवादी परिवर्तन आन्दोलन तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रसग में काग्रेस का प्रथम वर्ग नरमदल कहलाता था और दूसरा गरमदली। गरमदलीय प्रतिनिधि थे महादेव गोविन्द रानडे और गोपालकृष्ण गोखले। गरमदलीय नेता थे बालगगाधर तिलक।""""फूट इस दोहरे प्रश्न की ओर तथा समाज सुधार की ओर रवैये को लेकर पडी। तिलक का नारा था—'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है,—' वे विदेशियो को देश से बाहर निकालना चाहते थे। गोखले तर्क मे उदार सिद्धान्तो मे सहयोग मे तथा क्रमिक सुधार में विश्वास करते थे और इन विचारों के समर्थन में अपनी समझाने की विशिष्ट क्षमता का प्रयोग करते थे। समाज सुधार के विषय मे भी उनके बीच मतभेद था, जो सभी राष्ट्रवादियों के लिए ज्वलन्त प्रश्न था"""" गोखले मानते थे कि केवल पुनर्जागरण द्वारा ही भारतीय राष्ट्रसत्ता का सूत्र संभालने योग्य सफल बन सकेगा। इसके विपरीत तिलक हिन्दू समाज मे बाहर से कोई हस्तक्षेप नही चाहते थे। उनके विचार से पहले स्वतत्रता होनी चाहिए समाज सुधार बाद में।[१५] इस सघर्ष मे गरमदल विजयी हुआ और भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस ने १९०६ ई० मे स्वशासित अंग्रेज उपनिवेश के समान स्वशासी व्यवस्था को अपना लक्ष्य बनाया। गरम दल और नरमदल के बीच खुला अलगाव आगामी वर्ष काग्रेस के सूरत अधिवेशन मे प्रकट हुआ। गरमदल को काग्रेस से निकाल दिया गया।[१७] मालवीयजी ने उक्त आपसी सघर्ष के समय सदैव राष्ट्रीय दृष्टिकोण को महत्व दिया और उन्होने अपने समन्वयवादी कार्यों द्वारा देश की आपसी फूट को समाप्त करने का प्रयास किया। समझौता उनके राष्ट्रीय नेतृत्व और कार्य का महत्वपूर्ण अग था। उन्होने राष्ट्रीय चेतना और जागृति द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन को साथ-साथ चलाने की अपनी नीति निर्धारित की और सामाजिक सुधारों एव राष्ट्रीय आन्दोलनो पर समान रूप से बल दिया।

१९०३ ई० में मालवीयजी ने गाधीजी के नेतृत्व सभालने के बहुत पहले ही किसानों की सुख-सुविधा मे वृद्धि करने तथा लगान मे २५ प्रतिशत कमी करने को

माँग की थी ।[20] भारतीय समाज का आधार ग्रामीण कृषि व्यवस्था को बताते हुए उन्होंने कहा कि देश की जनसख्या का ८०-८५ प्रतिशत भाग खेती-व्यवस्था पर आधारित है। अत: किसानों की दशा सुधारने तथा सिंचाई आदि की व्यवस्था की मालवीयजी की माँग निर्धन तथा कमजोर वर्ग की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति को उन्नत बनाने के प्रगतिशील-परिवर्तन की सूचक विचारधारा को व्यक्त करती है।

१९०१ ई० मे कम्पनी के लाभ को बढाने के लिए देश में रेलो का विस्तार किया जा रहा था। मालवीयजी ने इस स्थिति को समझते हुए सरकार से माँग की कि रेलों की अपेक्षा इस समय देश को अकाल तथा सिंचाई व्यवस्था की आवश्यकता है।[21] सरकार को अपने देश के व्यापारिक लाभ को बढाने की अपेक्षा भारतवासियो को आजीविका से सम्बन्धित सिंचाई, शिक्षा आदि मौलिक आवश्यकताओं की ओर ध्यान देना चाहिए।

हिन्दू समाज-सुधार, परिवर्तन एवं मालवीयजी

समाज मे अस्पृश्यता जैसी अमानवीय प्रथा का प्रचलन समाज के लिए अभिशाप बन गया था। मालवीयजी ने अपने व्यस्त राजनीतिक जीवन मे इस ओर विशेष ध्यान दिया और अस्पृश्यों को कूपो, तालावों आदि पर सवर्णों द्वारा लगाये गये प्रतिबन्धो को समाप्त कराने के क्षेत्र मे पहल की। गाधीजी ने भी अपने अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रम को कार्यान्वित करते समय मालवीयजी के अस्पृश्यता निवारण विषयक निम्नलिखित प्रस्ताव का उद्धरण देते हुए, अस्पृश्यता को अशास्त्रीय बताया और मालवीयजी की अध्यक्षता मे पारित प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिए लोगों से निवेदन किया था। प्रसगवश उक्त प्रस्ताव का उद्धरण उल्लेखनीय है—

'हिन्दू परिषद् (मालवीयजी की अध्यक्षता में) प्रस्ताव पारित करती है कि हिन्दू समाज मे कोई जन्म के कारण अछूत नही माना जाएगा और जिन्हें आजतक अछूत माना जाता रहा है, उन्हे अब कुओ, पाठशालाओ, रास्तों तथा दूसरी सभी सार्वजनिक सस्थाओं का उपयोग करने का हिन्दुओं के समान अधिकार होगा। इस अधिकार के लिए मौका मिलते ही कानून की मंजूरी ली जाएगी। यदि स्वराज्य मिलने तक यह स्वीकृति न मिली तो स्वराज्य की पहली ससद मे यह पहला कानून पारित होगा।'[22]

'साथ ही यह भी निश्चय किया जाता है कि आजकल अछूत माने जाने वाले वर्गों पर जो सामाजिक पाबन्दियाँ रूढियों के कारण लगी हैं उन सबको और मन्दिरों मे जाने की मनाही को भी सभी उचित और शान्तिमय उपायो से दूर करना तमाम हिन्दू नेताओं का धर्म होगा।'

मालवीयजी की अध्यक्षता में पारित उक्त प्रस्ताव मे अस्पृश्यो के लिए कुओं, तालाबों, सार्वजनिक स्थानो तथा सार्वजनिक मार्गों पर जाने के लिए लगी

को समाप्त करने की प्रतिज्ञा दिलायी गयी थी। यहाँ हम पाते हैं कि मालवीयजी ने परम्पराओं के आधार पर धर्म के रूप में व्यवहृत अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए शास्त्रों को ही आधार बनाया था। उन्होंने तर्कों के आधार पर ही सिद्ध किया कि अछूत की समस्या शास्त्रीय नहीं है। जनमत को अपने पक्ष में तैयार करने का उनका यह प्रयास अधिक तार्किक तथा व्यवहृत पक्ष को व्यक्त करता है।

अछूतों के लिए लगी मन्दिर प्रवेश आदि की रोक का कारण उन्होंने रूढ़ियों को बताया और इसे तोड़ने के लिए हर सम्भव शान्तिमय उपाय करने के लिए हिन्दू नेताओं को प्रेरित किया। उन्होंने इसके निवारण के लिए इसे हिन्दुओं का धर्म बताया। महात्मा गांधी ने अपने अस्पृश्यता निवारण कार्यक्रमों में स्पष्ट रूप से कहा—'मालवीयजी महाराज के उपर्युक्त तर्क-सम्मत निर्णय के बाद हिन्दू धर्म में छुआछूत की कोई गुंजाइश नहीं है।'[२३]

अन्त्यजों का सामाजिक स्तर उन्नत करने के लिए मालवीयजी ने ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त के लिए मंत्र दीक्षा का व्यापक अभियान चलाया था।[२४] यहाँ हम देखते हैं कि मालवीयजी के कार्य का ढंग समाज में सुधार के क्षेत्र में अधिक व्यावहारिक है। मालवीयजी ने भाषणों के माध्यम से उक्त समस्याओं को हल होते न देखकर उसके मनोवैज्ञानिक पक्ष पर ध्यान दिया और उच्च वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्त्यज को एक साथ बैठाया और मंत्र दीक्षा द्वारा समानरूप से उनका समाजीकरण किया। इस प्रकार का सामाजिक सुधारवादी प्रयोग मालवीयजी की अपनी विशेषता थी, जो देश के किसी भी अन्य सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक नेता में नहीं पायी जाती।

भारतीय समाज के सुधारवादियों में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने यह प्रयत्न किया कि भारतीय शास्त्रों में वैधव्य का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है और बम्बई में माण्डलिक ने समुद्री यात्रा सहित अन्य कई सुधारों के लिए पण्डितों की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न किया। हिन्दू धर्म में शताब्दियों से चली आ रही अमान्य और दोषयुक्त अभिवृत्तियों को समाप्त करने के निमित्त राजा राममोहन राय वेदों की ओर उन्मुख हुए और जब स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म में वेदोत्तर अभिवृत्तियों की निन्दा की और १८७५ ई० में आर्यसमाज की स्थापना की तो वे भी राजा राममोहन राय का ही अनुसरण कर रहे थे।[२५]

परन्तु उपर्युक्त समुद्री यात्रा पर लगे प्रतिबन्ध के क्षेत्र में हम देखते हैं कि मालवीयजी ने राउण्डटेबुल कान्फरेन्स में गांधीजी के साथ समुद्रीयात्रा करके, उक्त प्रतिबन्ध को तोड़कर इसकी निरर्थकता सिद्ध की। विधवा विवाह के सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं एक विधवा का विवाह करा दिया था। इस प्रकार मालवीयजी के कार्यों में व्यावहारिक पक्ष अधिक दिखायी देता है। अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बीच उन्होंने विधवाओं के लिए प्रभावी कार्य न कर पाने पर खेद प्रकाश किया था। मालवीयजी शास्त्रों के समर्थक थे, किन्तु वे प्रगति और विकास के क्षेत्र में बाधक शास्त्र-

वचनो को भी हानिकर मानते थे। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि 'शास्त्रविहित विधियों का अन्धानुकरण निःसन्देह हानिकर है।'[26] इसके अतिरिक्त ब्रिटिश कालीन भारतीय संसद में उनका भारत रक्षा अधिनियम[27] १९१४-१५ ई० तथा प्रेस अधिनियम विरोध, उद्योगीकरण, ग्रामीण ऋण, रेल राष्ट्रीकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य पर राजस्व के अधिकाधिक व्यय के सार्वजनिक मद, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा आदि से सम्बन्धित कार्यो द्वारा उनकी परिवर्तन तथा प्रगतिशील विचार-धारा की पुष्टि हो जाती है।

अतः हम देखते हैं कि गाधीजी के नेतृत्व सँभालने के पहले ही मालवीयजी उपर्युक्त सुधारवादी कार्य आरम्भ कर चुके थे। यही कारण है कि नम्बर १९१७ ई० मे भारत मंत्री माटेग्यू ने अपनी इण्डियन डायरी मे लिखा था कि 'पं० मदन-मोहन मालवीय कौसिल के तथा भारतीय राष्ट्र के सबसे अधिक क्रियाशील राज-नीतिज्ञ हैं।'[28] परन्तु आश्चर्य है कि प्रोफेसर श्रीनिवास[29] ने नये आधुनिक भारतीय परिवर्तन और पुनर्जागरण के आलोकदाता—ठाकुर परिवार, विवेकानन्द, रानडे, गोखले, तिलक, पटेल, गाधीजी, जवाहरलाल नेहरू तथा राधाकृष्णन तक के नामोल्लेख के साथ मदनमोहन मालवीय के नाम का उल्लेख नही किया है, जबकि मालवीयजी के कार्य गाधीजी की ही भाँति महत्वपूर्ण हैं और प्रोफेसर श्रीनिवास द्वारा उल्लिखित उपर्युक्त नामो मे किसी से कम महत्व नहीं रखते।

मालवीयजी का समाज को देखने का विशेष चश्मा था। उनके विचार के अनुसार व्यक्ति एक वृक्ष की भाँति है, जिसकी शाखाएं मुक्त आकाश मे स्वच्छन्द होती है, किन्तु उसका तना दृढतापूर्वक भूमि पर खडा होता है, जिसकी जडें भूमि से सम्पूर्ण वृक्ष के भरण-पोषण के लिए जीविकोपार्जन हेतु आहार ग्रहण करती है। वह वृक्ष पूर्णरूप से उस भू-खण्ड की उर्वराशक्ति पर निर्भर होता है। उसमे वाह्य पर्यावरण से कृत्रिम खाद, रसायन आदि दिये जा सकते है, किन्तु उसका मूल स्रोत वह भू-खण्ड ही होता है, जहाँ वह वृक्ष उत्पन्न होता है। अतः व्यक्ति को अपने पैतृक, सामाजिक, सास्कृतिक आदि 'मूल' आलम्ब पर दृढ़ रहते हुए समाज के प्रति वृक्ष की उन्मुक्त लहलहाती हुई शाखाओ तथा पल्लवो की भाँति होना चाहिए।[30] मैक्स वेबर ने भी इसी प्रकार की बात की पुष्टि की है कि परम्परात्मक कार्य करने का व्यक्ति अभ्यस्त हो जाता है, उसे उस कार्य को सम्पन्न करने मे किसी प्रकार की चेष्टा नही करनी पडती। मालवीयजी का विचार था कि मानव, सभ्यता और सस्कृति वर्षों मे क्रमशः सीखता है। यदि मानव शिशु को समाज से पृथक् रखा जाय तो वह कुछ भी नही सीख पाएगा और उसका जीवन पशुवत् बन जाएगा।[31] अतः मालवीयजी के अनुसार—मानव को इन सस्कृतियो और सभ्यताओ के सस्कारों को अनवरत रूप से कायम रखना चाहिए। इस सम्बन्ध में मालवीयजी ने यहाँ तक कहा है कि धर्म नित्य है, यदि प्राण भी जाता हो, तब भी धर्म का त्याग नही करना चाहिए।[32]

इसी प्रसग मे उन्होने कहा था कि 'मानव शरीर अनेक जन्मों के पुण्यों का फल है।[३३] अनेक जन्मो का प्रतिफल कहने मे उनका पुनर्जन्म मे विश्वास माना जा सकता है, किन्तु ससार के मनुष्येतर अन्य प्राणियो को यदि देखा जाय तो वे जिस समय जन्म होता है वे उसी समय से आहार-विहार आदि जैविक आवश्यकताओ की पूर्ति करने लगते है। यदि शारीरिक दृष्टि से वे चलने-फिरने मे सक्षम नही है तो भी वे शारीरिक विकास के साथ नैसर्गिक ढग से चलना, उड़ना आदि सीख लेते है, परन्तु मानव शिशु ही ऐसा प्राणी है जो शारीरिक विकास के साथ *समाज द्वारा बहुत कुछ सस्कारो के माध्यम से क्रमश' सीखता रहता है*। उसके सीखने का यह क्रम जीवन-पर्यन्त चलता रहता है।

अनेक जन्मो के प्रतिफल मे डारविन का उद्विकासीय नियम भी माना जा सकता है। अनेक जन्मो के पश्चात् क्रमश विकसित होता हुआ मानव इस विकसित अवस्था को प्राप्त कर सका है। अत सत् एव असत् की परख की जो विवेक बुद्धि उसे प्राप्त हुई है, उसका मानवीय मूल्यो के अनुसार उपयोग करने की आवश्यकता पर मालवीयजी ने विशेष बल दिया है।[३४] इस प्रकार हम देखते है कि संस्कृति और सभ्यता के जो तथ्य और मूल्य मानव को प्राप्त हुए है, उनका हर कीमत पर सरक्षण किया जाना चाहिए। यह संरक्षण उसी प्रकार होना चाहिए, जिस प्रकार ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी के विकास को आविष्कार द्वारा प्राप्त वैज्ञानिक रहस्य की बातें प्रशिक्षण द्वारा संरक्षित रहती है तथा नवीन *आविष्कार उस सचित ज्ञान के आगे किया जाता है*।[३५]

आधुनिकीकरण और मालवीयजी

प्रयाग में गाधीजी मालवीयजी के यहाँ ठहरे थे। मालवीयजी घूमने जाते समय गाधीजी को भी साथ ले गये। मालवीयजी ने कहा कि प्रयाग विश्वविद्यालय के छात्रों की कठिनाइयों को ध्यान मे रखकर मैंने हिन्दू बोर्डिंग हाउस का निर्माण कराया है। बिजली आदि आधुनिक उपकरणो से सुसज्ज उस विशाल भवन को देखकर गाधीजी बोले—'पर भाई साहब, बिजली के पंखो से सुसज्जित इन सुन्दर बने हुए कमरो मे रहने के बाद तो ये गरीब विद्यार्थी गाँवो में जाकर अपने टूटे-फूटे कच्चे मकानों मे रहना क्या कभी पसन्द करेंगे? आप तो उनकी आदतें खराब कर रहे है।' मालवीयजी ने कहा—'हाँ, एक अंश मे आप ठीक कह रहे है, पर मैं जानबूझ कर इन विद्यार्थियो की आदतें बिगाड रहा हूँ। सारे गाँव के लोगों को नगर में रखना असम्भव है। मैं तो चाहता हूँ कि इन भवनो मे प्राप्त होने वाले सुखों के ये ग्रामीण भाई इतने अधिक आदी हो जाँय कि इनके बिना वे रह ही न सकें और अपने-अपने गाँवो में ऐसे-ऐसे सुन्दर भवन बनाने के लिए मजबूर हो जायें।[३६]

इस प्रकार हम देखते है कि गाधी और मालवीय के विचारों मे आधुनिकीकरण के सम्बन्ध मे अन्तर है। गाधीजी चाहते है कि व्यक्ति अपने को इस स्थिति

मे रखे कि थोडे में निर्वाह सम्भव हो सके और उसे अभावबोध न हो, किन्तु मालवीयजी व्यक्ति का आधुनिकीकरण इस प्रकार कर देना चाहते हैं कि आधुनिक सुख-सुविधा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति उसका अभ्यस्त हो जाय और उसी के अनुसार अपना जीवन स्तर आधुनिकीकृत करे। यहाँ मालवीयजी की विचारधारा आधुनिकीकरण और अपरिवर्तन की दिशा मे अधिक प्रगतिशील दिखाई देती है। गाधीजी देश की स्थिति के अनुसार गरीबी को स्वीकार करते हुए उसी के अनुसार रहन-सहन का स्तर नीचे ही रखने की बात करते है, किन्तु मालवीयजी आधुनिकीकरण द्वारा वह स्थिति पैदा करना चाहते है जहाँ अभाव बोध करके व्यक्ति साधन प्राप्त करने का प्रयास करे। अत यहाँ मालवीयजी की विचारधारा मे गाधीजी की अपेक्षा सामाजिक गतिशीलता अधिक दृष्टिगोचर होती है। मालवीयजी आधुनिक बिजली-पखों की सुख-सुविधा उपलब्ध कर ग्रामीण समाज का आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की सुख-सुविधा वाली सामग्रियों की दिशा मे उनका (व्यक्ति का) संस्कृतीकरण करना चाहते है, परन्तु गाधीजी सीमित साधन के अनुसार व्यक्ति को गीता के जो कुछ हैं, उसी मे सुखी रहने के लिए' सादा जीवन और आडम्बर से रहित सामान्य जीवन व्यतीत करने की बात करते है। वह अपने सीमित साधन के अनुसार रहने को कहते हैं, किन्तु मालवीयजी आधुनिक युग के विकसित साधनों की आदत डालकर आधुनिक साधन की उपलब्धि के लिए उसके अभाव बोध की स्थिति मे साधन जुटाने की प्रेरणा देते हैं, ताकि देश का आधुनिकीकरण हो। मालवीयजी आधुनिक युग के विकसित बिजली, पखो आदि का प्रसार भारत के घर-घर मे करना चाहते थे। इसके प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए युवा पीढी (छात्रों) के लिए उक्त आधुनिक साधनो की व्यवस्था करके इनके महत्व के प्रति अभ्यस्त कराते है, ताकि इस युवा पीढी के माध्यम से सम्पूर्ण देश मे आधुनिक सुख-सुविधा के वैज्ञानिक साधन फैल सकें।

पुनर्जागरण : राजा राममोहन राय और मालवीयजी

भारतीय पुनर्जागरण के जनक राजा राममोहन राय पश्चिमीकरण से अत्यधिक प्रभावित थे। देश के पुनर्जागरण और सुधारवादी परिवर्तन के लिए वह देश का पश्चिमीकरण करना सुधार का आवश्यक अंग मानते थे। उनके कार्य की विधि पश्चिमी सभ्यता की पोषक थी। वह प्रगति और विकास के लिए अग्रेजी का अध्ययन आवश्यक मानते थे और सस्कृत शिक्षा पर सरकारी धन का व्यय किया जाना अनुचित मानते थे, परन्तु मालवीयजी भारतीय परम्पराओं और प्रथाओं के परिप्रेक्ष्य मे पश्चिम की भौतिकवादी सभ्यता और विकास को भारतीय स्वरूप मे ढालकर आत्मसात् करते हैं। भारतीय सभ्यता और सस्कृति को दोनो ही महत्व प्रदान करते हैं, किन्तु राजा राममोहन राय इसके परम्परावादी स्वरूप को भौतिक विकास के लिए बाधक मानते है। वह अद्वैत, नैतिकता तथा सास्कृतिक सश्लेषण के पक्षधर थे। वह हिन्दू पाखण्डवाद के भी विरोधी थे, परन्तु मालवीयजी अद्वैत-

द्वैत, साकार-निराकार तथा मूर्तिपूजा आदि के प्रतीक रूप में समर्थक होने के साथ ही उनमें केवल उपासना पद्धति का अन्तर मानते थे। वह तो हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि सभी धर्मों में भी केवल उपासकों के पृथक्-पृथक् धर्मों में उपासना-पद्धति में भिन्नता मात्र मानते थे और उनमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं करते थे। मालवीयजी शास्त्रीय बुद्धिसंगत वाक्यों को ही प्रमाण मानते थे। भारतीय समाज की उन्नति हेतु वह महिलाओं, निर्धनों तथा पिछड़े वर्ग की उन्नति आवश्यक मानते हैं। उनकी यह विशेषता थी कि वह निम्नवर्ग के लोगों (हरिजनों आदि) की सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए ब्राह्मणों से लेकर अन्त्यज पर्यन्त को एक साथ मंत्र दीक्षा देते हैं। राजा राममोहन राय निर्धनों को निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था के पक्षपाती थे। मालवीयजी भी इसके समर्थक थे और उन्होंने प्राइमरी शिक्षा निःशुल्क तथा अनिवार्य करने की संसद में माँग की थी। राममोहन राय तथा मालवीयजी ने किसानों के लगान में तथा भारतीय सेवाओं में भारतीयों को नियुक्त करने की माँग की थी। दोनों ही सती प्रथा तथा विधवा-अविवाह के विरोधी थे।

इस प्रकार मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वह सुधार और प्रगतिशील परिवर्तन भारतीय पृष्ठभूमि में करना चाहते थे और भारतीय संस्कृति को हर कीमत पर कायम रखना चाहते थे। वस्तुतः राजा राममोहन राय का पुनर्जागरण विकास के लिए देश को पश्चिम की ओर ले जाना चाहता था। इसके विपरीत मालवीयजी पश्चिम को भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सन्दर्भ में अवतीर्ण करना चाहते थे। राजा राममोहन राय भौतिक विकास के लिए मात्र पश्चिमी सभ्यता को ही महत्वपूर्ण मानते थे, परन्तु मालवीयजी प्रगति के लिए भारतीय सभ्यता और संस्कृति को ही महत्वपूर्ण मानते थे और किसी भी भौतिक उन्नति को भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सातत्य (कान्टीन्यूइटी) में बिना भारतीयता के स्वरूप को बदले ही करना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में धर्म-दर्शन, साहित्य, कला-कौशल आदि के साथ ही भौतिक समृद्धि हेतु ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी की शिक्षा व्यवस्था की थी। मालवीयजी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के पिछड़े और प्रगतिशील सभी प्रकार के लोगों को समान महत्व देते थे और क्रमशः पिछड़े तथा भारतीय परम्परावादी शास्त्रीय मतावलम्बियों को भी बिना किसी प्रकार का दबाव डाले उनकी भावनाओं का समादर करते हुए, सहिष्णु ढंग से प्रगतिशील मार्ग प्रशस्त करते थे। हिन्दू कट्टर-पन्थियों और रूढ़िवादियों को वह समवेत रूप में बिना उनकी भावनाओं को उद्वेलित किये यथार्थ मार्ग प्रशस्त करते हैं। वह केवल रास्ता ही नहीं दिखाते थे, किन्तु इस क्षेत्र में स्वतः नेतृत्व भी करते थे, यथा—समुद्र यात्रा पर लगे प्रतिबन्ध को उन्होंने स्वतः (गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए) विदेश-यात्रा करके, महत्वहीन सिद्ध कर दिया था। जातीय संकीर्णता को समाप्त करने के लिए

इन्होंने सर्वप्रथम सभी ब्राह्मणों को एक करने का प्रयास किया और इस सम्बन्ध में अपने मालवीय कुल की कन्या का विवाह अन्य ब्राह्मण समाज में किया। राजा राममोहन राय जहाँ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति को भौतिक विकास के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे, वहीं मालवीयजी भारतीय संस्कृति और सभ्यता को नैतिक विकास के लिए आवश्यक मानते थे। वह अपनी संस्कृति और सभ्यता बनाये रखते हुए पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी को विशुद्ध ज्ञान के रूप में ग्रहण करना चाहते थे। राजा राममोहन राय को भय था कि संस्कृत शिक्षा देश की प्रगति में बाधक सिद्ध हो सकती है, किन्तु मालवीयजी इसे भौतिक विकास में मानवीय पक्ष को सजीव रखने के लिए आवश्यक मानते थे। वह देश के राष्ट्रीय चरित्र और राष्ट्रीयता की चेतना और विकास के लिए भी इसे सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे।

राजा राममोहन राय जात-पाँत को समाज सुधार और प्रगति में बाधक मानते थे, किन्तु मालवीयजी तथा उन्हीं की भाँति गांधीजी भी वर्णाश्रम व्यवस्था को अत्यधिक महत्वपूर्ण और हिन्दू जीवन-दर्शन का मूल मानते थे। उनके अनुसार—*वर्ण व्यवस्था, पेशा और कार्य के सामाजिक वितरण के लिए है।* मालवीयजी इस व्यवस्था को परस्पर एक दूसरे पर अन्योन्याश्रित और समन्वयात्मक मानते थे। राजा राममोहन राय भारतीय सभ्यता के 'मूल' वेद को प्रमाण मानकर चलते हैं और हिन्दू पाखण्डवाद तथा सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार करते हैं, किन्तु *मालवीयजी वेद और शास्त्र सम्मत मूल और शाखा* दोनों का अंगीकरण करते हुए, समाज में व्याप्त कुरीतियों का राष्ट्रीयता के आधार पर बिना किसी प्रकार का वैचारिक दबाव डाले उनका (कुरीतियों का) परिष्कार करने की दिशा में आगे आते हैं। राममोहन राय सती प्रथा आदि कुरीतियों को समाप्त करने के लिए कानून का सहारा लेते हैं, तो मालवीयजी भी प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा को समाप्त करने के लिए अंग्रेजों पर आन्दोलन का दबाव डालकर कानून बनवाते हैं। यहाँ उनका दबाव शासकवर्ग पर था। परन्तु बाल विवाह का समाज में विरोध करने वाले मालवीयजी, इस सम्बन्ध में कानून बनाकर हिन्दुओं पर दबाव डालने की बात संसद् में स्वीकार नहीं करते और इसके लिए वह जागृति पैदा करने पर बल देते हैं, जिससे लोग स्वतः बाल विवाह बन्द कर दें। धर्म-दर्शन, कला साहित्य के साथ परिवर्तन और प्रगति के लिए वह किसी का विरोध नहीं करते, अपितु इस कार्य के लिए वह काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसी विशालकाय संस्था की स्थापना करते हैं, जहाँ भावी पीढ़ी को उनके विचारों के अनुसार उच्च, प्रगतिशील, विकासवादी शिक्षा द्वारा बिना किसी दबाव और तनाव के परिवर्तन और विकास का भारतीय पर्यावरण में अपनी संस्कृति और सभ्यता की पृष्ठभूमि में मार्ग प्रशस्त हो सके। यही स्वरूप है मालवीयजी तथा राममोहन राय के पुनर्जागरण और परिवर्तन की दिशा में कार्य

करने का। दोनों का लक्ष्य एक है, किन्तु कार्य और लक्ष्य की ओर जाने वाले मार्ग में परस्पर कुछ अन्तर है।

मालवीयजी की विचारधारा भारतीय समाज की स्तरीकृत संरचना में उच्च-निम्न की भावना के प्रति परिवर्तनवादी थी। स्तरीकरण की अवधारणा में उद्भूत भारतीय समाज की संरचना में अनेक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गयी थीं, जिनमें अस्पृश्यता और ऊँच-नीच की भावना प्रमुख थी, जो आज भी समाज में किसी-न-किसी रूप में वर्तमान है। समाज का सुविधा और अधिकार-सम्पन्न वर्ग आज भी चाहता है कि वह अपने सामाजिक अधिकारों को कायम रखे। वह किसी भी कीमत पर अपने इन विशेषीकृत श्रेष्ठता के द्योतक अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहता। ऐसी स्थिति में सामाजिक परिवर्तन के दो विकल्प सामने आते हैं—प्रथम विधि (कानून) द्वारा बलपूर्वक अधिकार सुलभ करा दिये जायें, जो पूर्ण-रूप में सम्भव नहीं है। द्वितीय सुधार और पुनर्जागरण की सुसंस्कृत नव चेतना द्वारा क्रमशः समाज व्यवस्था में परिवर्तन किया जाय, जिससे वर्ग-संघर्ष और तनाव न्यूनतम हो। मालवीयजी इन्हीं विचारों के पोषक रहे हैं। उन्होंने अपने सुधारवादी परम्पराओं और मूल्यों के परिवर्तन के प्रगतिशील विचारों और कार्यों में सदैव इस बात का ध्यान रखा कि सामाजिक परम्पराओं में सुधारवादी परिवर्तन के समय परम्पराओं के समर्थक वर्ग तथा परिवर्तन की दिशा में उन्मुख वर्ग के बीच द्वन्द्व की न्यूनतम स्थिति उत्पन्न हो अथवा उनका प्रयास यह रहता था कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो ही न हो। अतः इस संघर्ष को बचाने के लिए वह क्रमशः आगे बढ़ते थे—हरिजन मन्दिर प्रवेश और अस्पृश्यता निवारण आदि के क्षेत्र में किये गये प्रयास उनकी इसी विचारधारा के द्योतक हैं।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में पुनर्जागरण एवं सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में हम पाते हैं कि मालवीयजी संस्कारों द्वारा अर्जित सभ्यता और संस्कृति के 'मूल' के सातत्य के साथ-साथ समाज को उसकी परम्पराओं के आधार पर स्थिर रखने वाली मूल मान्यता 'एकता' को भंग करने वाली परम्पराओं, प्रथाओं तथा लोकाचारों आदि में युग की माँग के अनुसार क्रमशः एकता को भंग करने वाले संघर्षों से विरत रखते हुए, नवजागरण की चेतना की जागृति द्वारा समन्वयात्मक ढंग से परिवर्तन की दिशा में सार्वजनिक रूप से प्रयास करते थे। मालवीयजी की कार्यपद्धति का यही मूल दर्शन था, जिसको उन्होंने अपने सभी सामाजिक, धार्मिक तथा राष्ट्रीय कार्यक्षेत्रों में संस्थापित करने का प्रयास किया था। मालवीयजी राजा राममोहन राय, गोखले आदि की भाँति यह अनुभव करते थे कि देश में पुनर्जागरण द्वारा समाज और राष्ट्र के प्रति नव-चेतना का संचार होने पर ही स्वराज्य प्राप्त हो सकता है।

प्रयाग मे विद्यार्थियों की आवासीय असुविधा को देखकर मालवीयजी ने बिजली-पखों से सुसज्जित एक बोर्डिंग हाउस का निर्माण कराया था। रास्ते मे मालवीयजी ने उसे गाधीजी को दिखाया। बोर्डिंग हाउस देखकर गाधीजी मालवीयजी से कहते है कि ग्राम मे रहने वाले गरीब भारतीय किसानो के बच्चो को इन आधुनिक सुविधाओ से युक्त भवनो मे रखकर आप इनकी आदत बिगाड़ रहे हैं। भाई साहब ! ये बच्चे इन सुख-सुविधाओ मे रहने के बाद पुन गाँवो मे कैसे रह सकेंगे? इस पर मालवीयजी ने कहा—मैं इनकी आदतें जान-बूझकर खराब कर रहा हूँ, ताकि आधुनिक युग के साधनो के प्रति अभाव बोध होने पर ये लोग इन आधुनिक वैज्ञानिक बिजली-पखो आदि साधनों की व्यवस्था करें और देश का आधुनिकीकरण हो सके। इस प्रकार गाधीजी जहाँ सीमित साधनो मे रहने की बात करते है, वहां मालवीयजी नवीन साधनो को अपना कर देश को आधुनिक बनाना चाहते है, जो उनकी प्रगतिशील विचारधारा की द्योतक है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय पुनर्जागरण के जनक राजा राममोहन राय और मालवीयजी के पुनर्जागरण और परिवर्तन का कार्य-क्षेत्र एक था, परन्तु मालवीयजी की कार्य पद्धति की कुछ अपनी विशेषताएँ थी। मालवीयजी पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान को भारतीय सस्कृति और सभ्यता की पृष्ठभूमि मे अवतीर्ण करना चाहते थे। वह हिन्दू समाज मे व्याप्त कुरीतियो के विरोधी थे। वह समाज मे व्याप्त रीतियों-कुरीतियो आदि के परिष्करण हेतु किसी प्रकार का दबाव डालकर कार्य नही करना चाहते थे, किन्तु वह चाहते थे कि जनजागृति पैदा करके ही जनमानस को बदला जाय। बलपूर्वक किसी की प्रकार्यात्मक अथवा अप्रकार्यात्मक भावनाओ, विश्वासो, अभिवृत्तियो आदि के विपरीत कार्य करना वह सर्वथा अनुचित एव पाशविक वृत्ति का द्योतक मानते थे। उन्होने देश मे व्याप्त अस्पृश्यता, निवारण, बहु-विवाह प्रथा-निवारण, पशु बलि निरोध, दहेज प्रथा विरोध आदि अन्यान्य क्षेत्रो मे पुनर्जागरण और परिवर्तन सम्बन्धी कार्य किये थे। सभी स्थानो पर उनके कार्य की विधि किसी के विचारों के हनन अथवा दबाव के विपरीत थी।

मालवीयजी पुनर्जागरण और परिवर्तन के लिए सामाजिक चेतना की जागृति पैदा करना चाहते थे, परन्तु उनके कार्य का ढग भारतीय शास्त्रीय परम्पराओ के आन्तरिक स्वरूप द्वारा निर्देशित था, जिसका ओचित्य गाधीजी भी स्वीकार करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी के कार्य करने की अपनी पद्धति थी, जिसमे पुनर्जागरणकालीन सुधारवादियों की परम्पराओं मे सामाजिक परिवर्तन की अपनी विशेषता निहित थी।

REFERENCES

1. M.N. Srinivas : Social Change in Modern India, p. 1, Orient Longman, Bombay (1972).
2. D. Lerner : The Passing of Traditional Society, pp. 45-49, Glencoe III (1958).
3. Ibid, p. 48.
4. Marion J. Levy : Modernization and Structure of Societies, pp. 35-36, New Jersey, Vol. I, (1966).
5. S.C. Dube : Modernization and its Adaptive Demands on Indian Society, Published article, The Sociology of Education in India (ed.), p. 34 by M.S. Gore and others–National Council of Educational Research and Training, New Delhi (1967).
6. Encyclopaedia of Social Sciences, p. 281, Vol. XIII, The Macmillan Co., United States (1934).
7. Ibid, pp. 23-26.
8. Social Change in Modern India, op. cit, p. 81.
9. D. Kumar : Caste and Landlessness in South India in Comparative Studies in Society and History, p. 337, Vol. IV, No, 3, April 1962.
10. Yogendra Singh : Modernization of Indian Tradition (A Systematic Study of Social Change), p. 1, Thomson Press, India Limited, Publication Division, Delhi, 1973.
11. Social Change in Modern India, op. cit., p. 84.
12. P. Spear : The Twilight of the Mughals, p. 292, Cambridge, England (1951), see note 56.
13. A.L. Basham : The Wonder that was India, pp. 4-8, New York (1959).
14. Social Change in Modern India, op. cit., p. 78.
15. C.Y. Chintamani . Indian Politics Since the Mutiny, pp. 17-18, (1940), Delhi.
16. Ibid, pp. 31-32.
17. सन् १८८७ की सर सैयद अहमद खां की तकरीर—मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० १-२३ ।
18. Social Change in Modern India, op. cit. p. 86.
19. Ibid, p. 86.

20. The Honourable Pt. Madan Mohan Malviya Life and Speeches, p. 457, Madras, 2nd edition, 1908.
21. Ibid, 1906-1908, pp. 373 and 458.
22. महात्मा गाधी की वर्ण व्यवस्था, पृ० १५१, अनु० श्री रामनारायण चौधरी; प्रकाशक : नव भवन, नवीन प्रकाशन, अहमदाबाद (१९४८)।
23. वही, पृ० ५४।
24. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ६२।
25. Social Change in Modern India, op. cit. p. 81.
26. 'अभ्युदय' २ मई, सन् १९०८।
27. Proceeding : Council of Governor General (Legislative), 1911, Vol. 49, pp. 468-469.
28. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० २१५
29. Social Change in Modern India, op. cit. p. 77.
30. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ८७।
31. २२ जुलाई १९३५ ई०, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी के दीक्षान्त भाषण से उद्धृत।
32. वही।
33. वही।
34. वही।
35. वही।
36. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० ६३।

—. ० .—

अध्याय—४

भारतीय समाज व्यवस्था का शास्त्रीय स्वरूप और मालवीयजी

भारतीय समाज-व्यवस्था

भारतीय समाज-व्यवस्था के मूलरूप को समझने और उसके विश्लेषण के लिए भारतीय शास्त्रों का अवलोकन तथा अनुशीलन आवश्यक है। भारतीय समाज के सम्बन्ध में वैदिक मान्यता या सम्भवत मनुस्मृति में अन्य स्मृतियों की अपेक्षा विस्तृत रूप में उपलब्ध है। मालवीयजी ने भी प्रायः मनुस्मृति के उद्धरणों पर बल दिया है। अतः भारतीय समाज-व्यवस्था से सम्बन्धित किसी स्तर की विवेचना के प्रसग में यह आवश्यक है कि भारतीय समाज-व्यवस्था का मूल व्यक्त करने वाले ग्रंथ मनुस्मृति की सामाजिक व्यवस्था का संक्षिप्त स्वरूप प्रस्तुत किया जाय, ताकि सम्बद्ध अध्ययन के सन्दर्भ में समस्या का आपेक्षित मूल्यांकन पुनर्जागरण और परिवर्तन के सन्दर्भ में स्पष्ट किया जा सके।

इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि भारतीय समाज-दर्शन का मूल स्तरीकरण की समाज-व्यवस्था पर आधारित है, जिसका आधार भले ही जन्मना की अपेक्षा कर्मणा ही क्यों न रहा हो अथवा जन्मना-कर्मणा दोनों का समन्वित स्वरूप रहा हो, परन्तु मूल आधार सर्वत्र स्तरीकरण ही माना गया है।

सामान्यतया समाजशास्त्री यह मानते हैं कि समूह स्तरीकरण सभी सामाजिक व्यवस्था की मूलगत (instrinsic) संरचना है। श्री डेविस का कहना है कि विश्व-संस्कृति का अवलोकन करने पर वर्गविहीन तथा अस्तरीकृत समाज कहीं भी नहीं मिलेगा। पार्सन्स का भी इसी से मिलता-जुलता दृष्टिकोण है। सामाजिक स्तरीकरण सभी सामाजिक व्यवस्थाओं की संरचना का सामान्यीकृत रूप है। तात्पर्य यह कि प्रत्येक स्थान पर जहाँ लोग एक साथ रहते हैं, एक सामाजिक संगठन निर्मित होता है, जिसमें कुछ लोग विशेष सुविधाजनक स्थिति बना लेते हैं। परिणामस्वरूप वे दूसरों पर प्रभाव डाले रहते हैं। इस प्रकार के वर्ग की उत्पत्ति के बहुत से कारण हो सकते हैं। अवस्था, धार्मिक विश्वास, चामत्कारिक मेधा, शारीरिक शक्ति या साहस, सम्पत्ति आदि में चाहे जो भी रहे हो आज्ञापालन और आज्ञा अनुशासन प्रत्येक समाज में पाया जाता है—एक वर्ग वह होता है जिसे

अधिकारी का स्थान प्राप्त होता है और दूसरा वह होता है, जो उसके आदेशों का पालन करता है।

जो भी हो, प्रभुत्व की स्थिति शासकवर्ग द्वारा विशेष सुविधाएँ उपलब्ध करने की ओर ले जाती है। वह राजनीतिक शक्ति, प्रमुख व्यवसाय तथा शिक्षा पर अधिकार कर लेता है। इस प्रकार जब एक वर्ग अधिकारी की स्थिति प्राप्त करने में सफल हो जाता है, तब वह सभी सम्भव सा नो द्वारा स्थिति को निरन्तर बनाये रखने का प्रयास करता है। वेबर ने भी बताया है कि सामान्यत यह प्रक्रिया देखने मे आती है कि प्रभुत्वशाली वर्ग प्रभुत्व की वस्तुओं पर अधिकार कर लेता है। इस प्रकार वह सगठित समूह बना लेता है। यह प्रक्रिया प्रत्येक स्थान पर मिलती है।

प्रभुत्व की स्थिति प्रारम्भिक काल से ही लोगों को प्रभावित करती रही है। उसके कारण समाज की विकास-प्रक्रिया मे परिवर्तन होता है। वर्गीकृत समाज मे जहाँ एक समूह का दूसरे समूह पर प्रभुत्व होता है, लोग सामाजिक वास्तविकता में विभिन्न प्रकार के व्यवहार करते हैं। मानव समूह मे कुछ ऐसे व्यक्ति दिखलाई पडते है, जो प्रभावशाली स्थान प्राप्त कर लेते हैं, जैसे—जो वीर होता है, वह सेनानायक बनता है, जो अच्छा गायक होता है, वह गायकों का नेता होता है, आदि। यद्यपि मात्र प्रभुत्व ही समाज निर्माण प्रक्रिया का कारण नही माना जा सकता, तथापि इसकी समाज-निर्माण-प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका रही है।

व्यक्तियो की असमान शक्ति के कारण समूहों की असमान शक्तिद्वारा सामाजिक संरचना निर्धारित होती है। समूहों की शक्ति उसके सदस्यों की शक्ति, बुद्धि, साहस तथा धार्मिक विचार आदि से सम्बद्ध मानी जा सकती है।

स्तरीकरण तथा पूर्वजन्म की अवधारणा

भारतीय दर्शन तथा धर्मशास्त्रों के मूल मे पूर्वजन्म की अवधारणा प्रायः सर्वत्र पायी जाती है। ८४ लाख योनियो की कल्पना मे भी पूर्वजन्म का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। उच्च तथा निम्न श्रेणी मे जन्म, पूर्वजन्म का प्रतिफल माना जाता है। मनु के अनुसार—कर्म से ही मनुष्य को उत्तम, मध्यम तथा अधम गति प्राप्त होती है। शुभ तथा अशुभ कर्मों का उत्पत्ति स्थान मन, वाणी तथा कर्म होता है।[1] मनु ने कर्म के फल के अनुसार विभिन्न स्तरीकृत योनियों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार—सात्विक मनुष्य देव, राजसगुणवाला मनुष्य और तमोगुण वाला तिर्यक् योनि प्राप्त करता है।[2]

मनु के अनुसार गुण भेद से बनी हुई यह त्रिविध गति कही जाती है। वह कर्म और विद्या की विशेषताओं से उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार की हो जाती है।[3] सभी जीवों की जैविकीय सरचना की उत्कृष्टता तथा अनुत्कृष्टता कर्मफल का ही परिणाम है। सभी जीव कर्मों के अनुसार ही उच्च तथा निम्न

शरीर धारण करते हैं। स्थावर कृमि, कीट, मछली, सर्प, कछुआ, पशु तथा मृगों को उन्होंने तमोगुण की अधम गति मानी है। इसी प्रकार हाथी, घोड़े, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ जाति, सिंह, व्याघ्र और सूकर ये तामस वृत्ति की अधम गति हैं। चारण, गुरुड़, धार्मिक पुरुष, राक्षस तथा पिशाच ये तामसी गुण की उत्तम गतियाँ हैं। झल्ला (लाठी चलाने वाला) मल्ल, नट, शस्त्रजीवी, जुआ और मदिरा पीने वाले रजोगुण की अधम गति हैं। राजा क्षत्रिय, राजपुरोहित तथा विवाद करने में प्रमुख राजस गुण की मध्यम गति है। गन्धर्व गुह्यक, यक्ष, देव अनुचर (विद्याधर) तथा अप्सरा ये रजोगुण की उत्तम गति हैं। तामस वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, वैज्ञानिक, नक्षत्र और दैत्य ये सत्व गुण की अधम गति हैं। यज्ञकर्त्ता, ऋषि, देवता, वेदाभिमानी, ज्योति (ध्रुवादि) वत्सर, पितृगण, साध्यगण ये सत्व-गुण की मध्यम गति हैं। ब्रह्मा, विश्वसृज (मरीचि आदि) धर्म महान् और अव्यक्त इनको महर्षियों ने सत्वगुण की उत्तम गति कहा है।[4]

इन्द्रियों के प्रसंग से धर्म का आचरण न करने वाले मूर्ख से मूर्ख अधम मनुष्य इस संसार में पापयोनि प्राप्त करते हैं।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु की अवधारणा में कर्मफल के अनुसार जीवधारियों की जैविक संरचना की योनियों में भेद कर्मों का ही प्रतिफल है और सामाजिक स्तरीकरण की पद्धति गुण के सिद्धान्त पर आधारित है। भारतीय विचारक इन बातों से अभिज्ञ थे कि अपने स्वभाव के अनुसार निर्मित नियमों के अनुसार बनाये गये नियमों के बीच ही मानव के 'अहं' को पल्लवित होने का सुयोग प्राप्त होना सम्भव है। उस समय के बुद्धिजीवियों ने जो मार्ग निकाला था, उससे सहमति या असहमति का सबको अधिकार है, किन्तु ब्राह्मणों द्वारा बनायी हुई वर्ण-व्यवस्था का नियम उस स्थिति के समीप पहुँचा हुआ स्थल है, जहाँ व्यक्ति प्रतिस्पर्धा के गुणों के स्थान पर स्वार्थ में तादात्म्य का अनुभव करता है।

भारतीय समाज-व्यवस्था आरम्भ से ही समाजशास्त्रियों के अध्ययन के लिए रुचिकर विषय वस्तु रही है। भारतीय समाज-व्यवस्था का अध्ययन पश्चिम की समाज-व्यवस्था के प्रसंग में पश्चिमी समाज शास्त्रियों के दृष्टिकोण से नहीं किया जा सकता। अतः इसके अध्ययन के लिए भारतीय शास्त्रों की ओर जाना होगा, जहाँ समाज का स्वरूप धर्मशास्त्रों में दिखायी पड़ता है।[6]

प्रकृति भी अपनी संरचना में अनेक स्तर के जीवधारियों की सृष्टि करती है। इसका स्वरूप जीवधारियों की विविध योनियों में दिखाई पड़ता है। 'सामाजिक स्तरीकरण' भी प्रकृति के नियमों से संचालित होकर संस्कारों के परिप्रेक्ष्य में कल्पित हुआ है। असमानता एक सार्वभौमिक घटना है। कोई भी समाज पूर्ण-रूपेण समानता का स्तर नहीं प्राप्त कर सका है। सामाजिक असमानता समाज में स्तरीकरण के कारण ही होती है। जानसन के अनुसार—'स्तरीकरण एक

प्रक्रिया है अथवा व्यवस्था है, जिससे व्यक्तियों या समूहों के स्तर को विभेदीकृत रूप में पद प्रदान किया जाता है, जिससे किसी भी एक स्तर में प्राय समानान्तर के व्यक्ति अथवा समूह पाये जाते हैं।[7] मनु की समाज व्यवस्था में जानसन की उक्त अवधारणा के अनुसार—वर्ण व्यवस्था में स्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को चार पदों में वर्गीकृत करके उन्हें उच्च निम्न पद प्रदान किया गया है। इनमें क्रमशः सोपान-क्रम है। इस क्रमागत परम्परा में ब्राह्मण को सर्वोच्च सामाजिक स्थान तथा शूद्र को निम्न स्थान दिया गया है। उपर्युक्त वर्गों के स्तरीकरण की अवधारणा में मनु की पवित्रता और अपवित्रता की भावना का भी समावेश है। उन्होंने लिखा है कि नाभि के ऊपर पुरुष अत्यन्त पवित्र होता है। उसमें भी सभी अंगों में ब्रह्मा ने मुख को सर्वाधिक माना है।[8] उन्होंने उत्तमांग (मुख) से उत्पन्न होने तथा वेद को धारण करने के कारण इस संसार का स्वामी धर्म से ब्राह्मण को माना है।[9] श्रेष्ठता के वर्णगत स्तरीकरण की धारणा पर व्यापक प्रकाश डालते हुए मनु ने लिखा है कि जिस ब्राह्मण के मुख से देवगण हव्य तथा पितृगण कव्य पाते हैं, उससे कौन प्राणी श्रेष्ठ हो सकता है।[10]

मनु की समाज-व्यवस्था में स्तरीकरण की यह अवधारणा भूतमात्र में कल्पित है। मनु ने लिखा है कि भूतों (स्थावर-जंगम) की सृष्टि में कीटादि श्रेष्ठ हैं। प्राणियों में बुद्धि से व्यवहार करने वाले जीव आदि श्रेष्ठ हैं, बुद्धि रखने वाले जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। ब्राह्मणों में विद्यावान् (विद्वान्) और विद्वानों में कृत बुद्धि (शास्त्रोक्त अनुष्ठानों में उत्पन्न कर्तव्य बुद्धि वाले), इनमें कर्म करने वाले और इनसे ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं।[11] मनु ने नामकरण स्तरीकरण में कहा है कि ब्राह्मण का नाम मंगलवाचक, क्षत्रिय का बलवाचक, वैश्य का धनवाचक तथा शूद्र का दास से युक्त नामकरण करना चाहिए।[12] यदि मनु की समाज व्यवस्था का आधार कर्मणा वर्ण-व्यवस्था होती तो बाल्यकाल में नामकरण के समय ही वर्णों के अनुसार नामकरण की उक्त व्यवस्था न होती। अतः यहाँ उनकी जन्मना वर्ण व्यवस्था की विचारधारा प्रतिपादित होती है।

संस्कारों में भी मनु की उत्तमता से क्रमशः निम्नतम का प्रविधान दृष्टिगोचर होता है। उपनयन संस्कार गर्भ के आठवें वर्ष ब्राह्मण का, गर्भ के ग्यारहवें वर्ष क्षत्रिय का तथा गर्भ के १२वें वर्ष वैश्य का (उपनयन) संस्कार करना उत्तम माना गया है।

वर्ण और उनके कार्य

ब्राह्मण—मनु के अनुसार—ब्राह्मणों का कार्य स्वाध्याय, व्रत, होम तथा करना है।[13] क्षमा, शील, धैर्य और निर्मलता ब्राह्मण के प्रमुख गुण हैं। ब्राह्मणों को देवों तथा पितरों को हव्य और कव्य पहुँचाने के कारण

बताया है।[14] मनु के अनुसार—भूतों (स्थावर जंगम रूप पदार्थों) में कीटादि को श्रेष्ठ बताया है। प्राणियों में स्तरीकरण करते हुए उन्होंने बौद्धिक व्यवहार करने वाले पशुओं को श्रेष्ठ बताया है। बुद्धि रखने वाले जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ हैं और मनुष्यों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है।[15] ब्राह्मण धर्म के लिए उत्पन्न होता है। अतः मोक्ष प्राप्त करने का वही मात्र अधिकारी है।[16] मैक्सवेबर ने (आइडियल टाइप में) ब्राह्मणों का विचारगत प्रतिनिधित्व माना है। लोक वृद्धि करने वाले ब्राह्मण ही श्रद्धा के पात्र माने गये हैं।[17] ब्राह्मणों के कार्यों के विषय में मनु ने स्पष्ट लिखा है कि ब्राह्मणों का मुख्य कार्य अध्यापन करना है। परन्तु मनु ने यह भी लिखा है कि स्त्री, रत्न, विद्या, धन, पवित्रता, अच्छे वचन, कार्यकौशल जहाँ भी सुलभ हो ग्रहण करना चाहिए। आपत्काल में अब्राह्मण से विद्याध्ययन का विधान है, किन्तु ऐसे गुरु की सेवा अध्ययनकाल तक ही करनी चाहिए।[18] इस प्रकार मनु ने अध्यापन कार्य ब्राह्मणेतर लोगों के लिए भी बताया है, किन्तु उनकी इस व्यवस्था में शिष्य को सेवा मात्र अध्यापन काल तक ही सीमित कर दी गयी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनु ने ब्राह्मण जाति के लिए ही अध्ययन-अध्यापन कार्य करने का अपरोक्ष रूप से प्रविधान किया है। अब्राह्मण से पढ़ने की व्यवस्था मनु ने आपत्ति[19] काल में की है।

ब्राह्मणों के कार्य

मनु ने ब्राह्मणों के अध्यापन, अध्ययन, यजन-याजन, दान और प्रतिग्रह छः कर्म बताये हैं।[20] इनमें से ब्राह्मणों की जीविका के लिए याजन (यज्ञ कराना), अध्यापन तथा विशुद्ध दान लेना[21] ब्राह्मणों की जीविका बतायी गयी है। ब्राह्मण यदि उपर्युक्त कार्य से अपना जीविकोपार्जन करने में असमर्थ रहे तो उसे निकट के धर्म क्षत्रिय धर्म के कार्यों द्वारा जीविकोपार्जन करना चाहिए।[22] यदि इन दोनों द्वारा भी यह (ब्राह्मण) अपनी जीविका उपार्जित न कर सके तो खेती तथा गोरक्षा द्वारा वैश्यवृत्ति[23] ग्रहण करने का भी उल्लेख किया गया है।

क्षत्रियों के कार्य

क्षत्रिय का प्रमुख कार्य प्रजा की रक्षा करना है।[24] क्षत्रिय का वर्ण स्तरीकरण क्रम में दूसरा स्थान है। वस्तुतः क्षत्रिय का कार्य हथियार धारण करके रक्षा कार्य में प्रवृत्त रहना है।[25] किन्तु वैश्यवृत्ति अपनाने में ब्राह्मण या क्षत्रिय को व्यापार पक्ष छोड़ देना चाहिए।[26] अपनी विपत्ति को क्षत्रिय अपने बाहुबल द्वारा पार करें।[27] क्षत्रियों का प्रमुख कार्य रक्षा कार्य है।[28] क्षत्रियों को इसी कार्य द्वारा जीविकोपार्जन करना चाहिए। क्षत्रियों के लिए प्रजा की रक्षा करना, दान यज्ञ करना, पढ़ना, विषयों (गीत नृत्यादि) में आसक्त न होना—पाँच कर्म निश्चित किये गये हैं।[29] क्षत्रियों को कभी ब्राह्मण के धन का अपहरण नहीं करना चाहिए।[30] अपनी वृत्ति से जीविकोपार्जन न कर पाने पर क्षत्रिय वैश्य की वृत्ति अपना सकता है।[31]

वैश्य के जीविकार्जन कार्य

पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, रोजगार करना, सूद पर ऋण देना तथा कृषि करना वैश्यो के कार्य हैं।[32] वैश्य यदि अपने लिए विहित कर्म द्वारा जीविका न प्राप्त कर सके तो वह शूद्र वृत्ति द्वारा जीविकार्जन कर सकता है, परन्तु सक्षम होने पर उसे शूद्र वृत्ति से जीविकार्जन प्राप्त करना छोड़ देना चाहिए।[33]

शूद्र के जीविकार्जन कार्य

वर्णक्रम मे शूद्रो का चौथा स्थान माना गया है। इसका कार्य केवल द्विजवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) की सेवा करना है। परन्तु यदि इस वृत्ति से उनकी जीविका न चल पाये तो वे कारीगरी का काम करके जीविका प्राप्त करें।[34]

इस प्रकार भारतीय समाज व्यवस्था में समाज के कार्यों का विभाजन कर दिया गया है, जिसमे वर्ण धर्म की मान्यता के आधार पर वर्ण सघर्ष की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया गया है। उपर्युक्त प्रसंग मे जातीय सघर्ष की प्रवृत्ति के विपरीत शास्त्रीय तर्क प्रस्तुत करते हुए १९२४ई० मे हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन में मालवीयजी ने कहा था—'ब्राह्मण अब्राह्मण दोनो एक ही सम्यता के अन्तर्गत आते है। दोनों को भाई-भाई की भाँति रहना चाहिए। ब्राह्मणों को चाहिए कि गुण और योग्यता जहाँ कही भी मिले उसका आदर करें।.........दु:ख की बात है कि सरकारी नौकरियों तथा दो एक मत्री के पदों की लालच से जो हिन्दू मात्र की एकता के सामने तुच्छ वस्तुएँ है, हम आपस मे लडते हैं। हमे दूसरो की शक्ति और सुख देखकर प्रसन्न होना चाहिए।.........क्या महात्मा गाधी अब्राह्मण नही हैं और क्या यह सत्य नहीं है कि इस समय जितनी उनकी प्रतिष्ठा है, उतनी और किसी की नही है। मैं अपने ब्राह्मण-अब्राह्मण भाइयों से आपस का भ्रम दूर करने का अनुरोध करता हूँ।'[35] मालवीयजी के उक्त विचार वर्ण-समन्वय की विचारधारा की पुष्टि करते है। उनके अनुसार—जो शूद्र मन और इन्द्रियों को रोकने मे, सत्य मे तथा धर्म में सदा लगा रहता हो, उसको मैं ब्राह्मण मानता हूँ। ब्राह्मण चरित्र से ही होता है।[36]

'भक्ति के आगे कुल, आचार गुणो से क्या? यदि मनुष्य शम्भु की भक्तियुक्त है तो वह देहधारियों मे वन्द्य है।'[37]

मालवीयजी के अनुसार—'स्मृति, पुराण, भारतादि इतिहास ग्रथों में उदारता के *साथ बहुत-से सामाजिक विधान और कथाएँ हैं, जिनका अधिकार* द्विजाति की भाँति अन्त्यजादि शूद्र भाइयो को भी है। इस पर भी आत्मबल की कमजोरी के कारण आजकल बहुत-सी बातो में उन्हें अनधिकारी समझकर रथ-यात्रा आदि देवोत्सवो में परस्पर-विवाद और द्वेषमय झगड़ा होता है, ।

ऋषियों का हृदय बड़ा उदार था। उन्होंने रथयात्रादि देवोत्सवों में सम्मिलित होने का अधिकार उन्हें भी दे रखा था।'[38] यहाँ हम देखते हैं कि हिन्दू समाज में असवर्णों को भाग न लेने देने की परम्परा से मालवीयजी खिन्न थे और उन्होंने उसका विरोध किया था। मालवीयजी ने स्पष्ट रूप से यह भी बताया कि ऋषियों की परम्परा इसके विपरीत रही है। उन्होंने सबको समान अधिकार प्रदान किया है।

विद्याधिकार और अन्त्यज

मालवीयजी के अनुसार—विद्या के अभाव में किसी देश या जाति की उन्नति असम्भव है। अन्त्यजों में जो कुछ भी त्रुटि समझी जाती है, उसका सबसे प्रबल कारण उनमें विद्या प्रचार की कमी है।[39]

जातियों तथा उपजातियों का वर्तमान स्वरूप मध्यकाल में निर्मित हो चुका था। इस काल में व्यावसायिक संघों ने उपजातियों का रूप धारण कर लिया था।[40] परिवर्तन की इस बात को उस काल के कतिपय ग्रंथों में स्वीकार किया जा चुका है। इस समय श्रेणियों को जातियों के रूप में ही माना गया है। मिताक्षरा[41] में श्रेणियों का उद्भव व्यवसायों से ही माना गया है। इसके अनुसार—श्रेणी अन्यान्य जातियों का ऐसी सम्मिश्रित समुदाय है जो एक ही वृत्ति से जीविकोपार्जन करती है, यथा—ढेकावुक (घोड़े का व्यवसायी), तमोली, जुलाहा तथा चर्मकार। स्मृति चन्द्रिका[42] तथा वीरमित्रोदय[43] में उक्त परिवर्तन स्वीकार किया गया है। इसमें श्रेणी का अर्थ रजक (धोबी) इत्यादि १६ निम्न स्तरीय जातियों को बताया गया है।[44] इस प्रकार हम देखते हैं कि जातियों का उद्भव वर्णसंकर तथा व्यवसायों के संगठनों के आधार पर क्रमशः होता गया है, जिसके लिए अनेक तथ्यों की अपनी-अपनी भूमिकाएँ रही हैं। अतः इनके निर्माण की प्रक्रिया में मात्र किसी एक बात का होना सर्वथा सत्य से परे बात है। वर्णों के निर्धारण क्रम में अनेक जातियों तथा उपजातियों के मध्य व्यावसायिक दृष्टिकोण से ही बहुजातीय परम्पराओं में क्रमिक वर्गीकरण का एक आदर्श रखा गया है, जिसमें सभी भारतीय जातियों के लोगों ने अपने को संस्थापित करने का प्रयास किया है।

भारतीय गतिशीलता विभेदीकरण और मालवीयजी

१८७१ ई०, १९०१ ई० आदि की जनगणना में जातीय आँकड़ों के संकलन के समय निम्न जातियों ने अनेक प्रकार से अपने को अपने से उच्च जातियों में स्थापित करने का प्रयास किया।....उस (गणना) में आयुक्त सर हर्बर्ट रिजिले ने प्रत्येक जाति का स्थानीय सोपान पर और उसका वर्ण सम्बन्ध ठीक-ठीक अंकित किये जाने का निर्णय लिया था।[45] इस निर्णय के परिणाम के सम्बन्ध में प्रोफेसर घुर्ये के शब्दों में—'बहुत-सी महत्वाकांक्षी जातियों ने अपना स्थान ऊँचा करने

के अवसर को तुरन्त भाप लिया। उन्होंने अपने सदस्यो के सम्मेलन और इसका प्रवन्ध करने के लिए पंचायतें बना ली कि उनका स्थान उसी भाँति लिखा जाय जो उनकी दृष्टि से उनके गौरव के अनुकूल हो। दूसरे कुछ लोग, जिनका प्रगति के इस चोरी के मार्ग से रुष्ट होना स्वाभाविक था, उतनी ही तत्परता से उनके दावे का खण्डन करने लगे। इस प्रकार परस्पर आरोप-प्रत्यारोप का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। उच्चतम जातियों को छोड़कर वाकी सब जातियों के नेता खुलकर जनगणना को अपने उन सामाजिक दावों पर आग्रह करने और सम्भवतः कुछ मान्यता प्राप्त कर लेने का अवसर मानते थे, जो अपने से उच्च जाति के लिए लोग उन्हें नही देते थे।[46]

उक्त प्रसंग मे प्रो० श्रीनिवास ने लिखा है कि 'संक्षेप मे जनगणना का जातियों का पद स्थिर करने के लिए प्रयोग के प्रयास का विपरीत प्रभाव पड़ा, जिससे गतिशीलता को प्रेरणा मिली और अन्तर्जातीय प्रतिद्वन्द्विता बढ गयी। इसलिए कोई आश्चर्य नही कि राष्ट्रवादी भारतीय यह मानने लगे कि जनगणना में जाति के उल्लेख के पीछे अग्रेज साम्राज्यवादियों का भारतीय समाज मे पहले से वर्तमान विभाजनों को बढ़ाने का नही तो कम-से-कम बनाये रखने का कुचक्र अवश्य था। १९११ ई० की जनगणना मे अछूतों को अलग रखने के प्रयास से उनकी आशंकाएँ और सुदृढ हुई।[47]

राष्ट्रवादियो की उक्त आशंका के सम्बन्ध मे प्रो० श्रीनिवास की पूर्वोक्त आशका यथार्थ प्रतीत होती है, जिसमे उन्होंने राष्ट्रवादी भारतीय नेताओं का बिना नाम लिये हुए सशकित होने का उल्लेख किया है। उपर्युक्त आशंका के सम्बन्ध मे हम पाते है कि उक्त जातीय विभाजनवादी प्रवृत्ति को देखते हुए ही महान् राष्ट्रवादी प० मदनमोहन मालवीय ने सभी वर्णों के समन्वय के लिए जातीय एकता के निमित्त सुधार और एकतावादी विचार व्यक्त किया था। उन्होंने आगे (नेतृत्व के अध्ययन में उल्लिखित) हरिजन पृथक्तावादी विधेयक के विरोध का नेतृत्व महात्मा गाधी के साथ किया। उनके प्रवल विरोध के कारण उक्त विधेयक पारित नही हो सका और सरकार को उसे वापस लेना पड़ा।

शूद्रेतु यच्छूद्वेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥[48]

अर्थात् यदि ब्राह्मण के गुण शूद्र मे पाये जायें तो वह शूद्र नही है और यदि ब्राह्मण मे ब्राह्मण के गुण नही पाये जायें तो वह ब्राह्मण नही है। उक्त उदाहरण देते हुए मालवीयजी ने कर्म के आधार पर वर्णों के सामाजिक महत्व को स्वीकार किया है। उनके अनुसार—मनुष्य पुण्य कर्म से वर्ण के उत्कर्ष को तथा पाप कर्म से अपकर्म को प्राप्त होता है।[49]

मालवीयजी वर्णों का गुण के अनुसार ऊपर (उच्च वर्ण में) उठना स्वीकार करते हैं। उन्होने ब्राह्मणोचित गुण होने पर वर्ण धर्म-परिवर्तन स्वीकार किया है। इस प्रसग मे वसिष्ठ तथा विश्वामित्र का उदाहरण देते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर वसिष्ठ के सौ पुत्रो का वध कर दिया, परन्तु (ब्राह्मण वसिष्ठ क्रुद्ध नही हुए) उन्होने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि नही माना, किन्तु जब विश्वामित्र का क्षत्रिय क्रोध शान्त हो गया तो वसिष्ठ ने उन्हे ब्रह्मर्षि की उपाधि दी।'[५०]

मालवीयजी के वर्णों का स्वरूप समन्वयात्मक है, उनके अनुसार चार भाई हैं, चारों काम बाट लेते है —

(क) पूजा-पाठ तथा अध्ययन-अध्यापन करता है, वेद पढता और पढ़ाता है—ब्राह्मण।

(ख) शस्त्र से लैस होकर रक्षा का कार्य करता है, समाज में धार्मिक आचरणों को कायम रखने के लिए तत्पर रहता हुआ वेद पढ़ता है—क्षत्रिय।

(ग) घर का प्रबन्ध देखे, कृषि द्वारा अन्न उत्पादन करे, पशुपालन करे तथा वेद पढ़े—वैश्य।

(घ) शूद्र को मालवीयजी ने कहा—'भैया, तुम भी हमारे छोटे भाई हो, प्रेम के साथ सेवा करो। विद्या होगी तो तुम्हें भी ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य मान लेगे। जब तक नही है, तब तक जो पढ़ने-पढ़ाने, रक्षा-शिक्षा या व्यापार की वृद्धि मे लगे हैं उनकी सेवा शुश्रूषा करो।[५१] तुम लोगों में उक्त सेवा-सम्पर्क से अच्छे गुणो का विकास होगा। इस प्रकार मालवीयजी ने वर्ण व्यवस्था के सिद्धान्त को अत्यधिक स्पष्ट कर दिया। एक ही पिता के चार पुत्रों मे कोई पढ़ने-लिखने में निपुण होता है तो निश्चित रूप से पढ़ने-पढ़ाने के काम के लिए वही उपयुक्त माना जायगा। इसी प्रकार शस्त्र विद्या मे निपुण और बल मे श्रेष्ठ रक्षा के काम के उपयुक्त माना जायगा। घर के कृषि तथा पशुपालन मे लगा हुआ पुत्र गृहस्थी के योग्य माना जायगा। परन्तु पढ़ने-लिखने, शस्त्र-विद्या तथा कृषि-व्यापार आदि किसी में रुचि न रखने वाला अनिपुण पुत्र अवश्य ही उपर्युक्त कामों के अयोग्य माना जायगा, और पिता या परिवार के लिए उसका भी समान स्तर माना जाता है तथा वह भी उसी परिवार का सदस्य माना जाता है। ऐसे पुत्र के लिए सेवा वृत्ति का विधान किया गया है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है—बड़ा बनने के लिए बड़ा काम करना आवश्यक होता है, उनकी यह विचारधारा उनकी मानवीय विचारधारा की द्योतक है।

वेद के पुरुष सूक्त का उदाहरण देकर मालवीयजी ने कहा था—'हमारे वेद पुकार-पुकार कर कहते हैं कि हमारी हिन्दू जाति के अन्दर सब जातियाँ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र एक ही शरीर की अग है। अतः सबसे समान प्रेम करना चाहिए।[52]

वर्णो के विषय मे मालवीयजी का विचार स्पष्ट है। वह जन्म के आधार पर पैतृक कर्म या वृत्ति को वर्ण व्यवस्था का आधार मानते थे। वह ऊँच-नीच की भावना के विरोधी थे। उनके विचारों तथा महात्मा गाधी के विचारों में यहाँ पूर्ण समानता दिखायी पडती है। दोनों का ही इस व्यवस्था पर समान विचार और दृष्टिकोण है। शूद्रों को उन्होंने स्पष्ट कहा है कि यदि तुम भी विद्यावान हो जाओगे तो जिस प्रकार के गुण तुममे होगे उसी के अनुसार हमलोग तुम्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र वर्ण मे ले लेगे। इससे स्पष्ट होता है कि मालवीयजी वर्णों मे गतिशीलता-सिद्धान्त के समर्थक थे। उन्होने कहा था कि 'मैं मनुष्यता का उपासक हूँ। मनुष्यत्व के आगे मै जात-पाँत नही मानता हूँ..........गरीबों की सेवा कीजिए, उनका प्रेम से आलिंगन कीजिए और अपने कुकृत्यो पर पश्चात्ताप कीजिए।'[53]

जातीय गतिशीलता और मालवीयजी

प्रोफेसर श्रीनिवास ने जातीय गतिशीलता का उल्लेख करते हुए कहा है कि 'जब कोई नीची जाति धनी हो जाती है तो आमतौर पर वह अपनी जीवनशैली और कर्मकाण्डो का सस्कृतीकरण करके अपने को ऊँची जाति से सम्बद्ध करने का दावा करने लगती है।'[54] इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है कि गतिशीलता-सम्बन्धी आकाक्षाएँ स्थानीय जातियों मे पहले से वर्तमान प्रतिद्वन्द्विताओं से सम्बद्ध हो गयी। उनके परिणामस्वरूप प्रतिद्वन्द्विताएँ और जुड़ गयी।[55]

उपर्युक्त प्रसंग मे सस्कृतीकरण द्वारा ऊपर उठने की इच्छुक निम्न जातियो के आहार-व्यवहार, रहन-सहन आदि से उच्च वर्ण के लोगों को द्वेष न करने के लिए मालवीयजी ने स्पष्ट रूप से निम्नलिखित बातें कही थी—'हम सब भाई एक पिता के पुत्र हैं, जैसे पेड़ की चार शाखाएँ हो। सबको अपने-अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। ब्राह्मण धर्म-कर्म, क्षत्रिय देश-रक्षा और वैश्य वैभव-वृद्धि, शूद्र कला-कौशल तथा तीनों वर्णो की सहायता करते थे। राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न की भाँति चार भाई एक दूसरे से प्रेम करते थे। एक दूसरे के सुख-दुःख मे सम्मिलित होते थे।'[56]

भगवान ने जैसे हमे सुख पाने का इच्छुक बनाया है, वैसे ही शूद्रों को........ यदि वे सवारी पर बैठते हैं तो हमे बुरा क्यो लगता है? यदि गरीब की बेटी हमारी बहू-बेटियों की भाँति पालकी मे बैठती है तो हमे प्रसन्नता होनी चाहिए।[57]

इस प्रकार निम्नवर्ण के लोगों के संस्कृतीकरण को मालवीयजी स्वीकार करते हैं और इस द्वेष को समाप्त करने के लिए कहते हैं—एक हाथ में जैसे अंगुलियाँ होती हैं वैसे ही जातियाँ हैं, पर सब एक दूसरे की सहायता के लिए हैं।''''अछूत हमारे भाई हैं। हम उन्हें कष्ट क्यों देते हैं? कड़ुआ शब्द क्यों कहते हैं?'[५८]

मालवीयजी के उपर्युक्त मत से यह बात भी स्पष्ट होती है कि वह हिन्दू समाज में वर्णों का विभाजन गुणों के आधार पर ही मानते थे। उन्होंने अछूतोद्धार के लिए कहा था कि यदि उपर्युक्त मत शास्त्रों का है तो अछूतों की आर्थिक दशा सुधार कर, सदाचार सिखाकर और उनको मंत्र दीक्षा देकर, उनका उद्धार करना हमारा धर्म है।[५९]

मालवीयजी के मतानुसार वर्ण-व्यवस्था में उच्च पद प्राप्त करने में क्रमशः उन्नति होती है, यथा—'शूद्र योनि में उत्पन्न पुरुष यदि अपने में अच्छे गुणों का संग्रह करे तो हे ब्रह्मन्, वह वैश्य हो जाता है और क्षत्रिय यदि सदाचार का जीवन यापन करे तो हे ब्रह्मन्, वह ब्राह्मण धर्म को प्राप्त होता है।'[६०]

वर्ण व्यवस्था—मालवीय और गांधी

महात्मा गांधी के अनुसार—'वर्ण का तात्पर्य है प्रत्येक को अपने-अपने बड़ों की तरफ से मिला हुआ कर्तव्य।' इस प्रकार महात्मा गांधी वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में पेशागत आनुवंशिकता स्वीकार करते हैं। उन्होंने इसमें भेद-भाव को नहीं माना है। इस सम्बन्ध में उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा था—'मैं आपको यह कैसे समझाऊँ कि मैं ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं करता? मैं आपसे कहता हूँ कि जैसे—सीताजी व्यभिचारिणी नहीं थी, वैसे ब्राह्मण शूद्र से ऊँचे नहीं हैं। क्या आप नहीं मानते कि सीताजी ऊँची नहीं थी? वर्ण का अर्थ ऊँच-नीच का भाव नहीं है।'[६१]

गांधीजी ने कहा था कि 'वर्ण-धर्म के अन्तर्गत बाप-दादा का धन्धा ही उनकी पसन्द का एकमात्र धंधा होना चाहिए। यह पेशा करने में कोई बुराई नहीं है, किन्तु इसमें कुलीनता है।'[६२]

महात्मा गांधी ने कहा था कि—यदि ब्राह्मणों की बुराइयों का सामना करने के बदले ब्राह्मण-धर्म की जड़ पर चोट करेंगे तो आप हिन्दू नहीं रहेंगे—एक नया अनुशासन पैदा कर लेंगे''''''जो ब्राह्मण अपना धर्म भूलकर लालच करता है वह ब्राह्मण नहीं रहता।[६३]

गांधीजी ने वर्ण का आधार जन्म को माना था। इस बात की पुष्टि उनके निम्नलिखित प्रश्नोत्तर से होती है—

प्रश्न : किसी शूद्र में ब्राह्मण के सब गुण होते हुए भी क्या उसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता?

उत्तर : (गाधीजी)—वह इस जन्म मे ब्राह्मण नही कहलायेगा और उसके लिए यह अच्छा है कि जिस वर्ण मे वह पैदा नहीं हुआ उसे वह न अपनाये। यही नम्रता की निशानी है।[64]

महात्मा गाधी के अनुसार—'गीता यह अवश्य कहती है कि वर्ण गुण और कर्म के अनुसार होता है, किन्तु गुण और कर्म जन्म से विरासत मे मिलते है।'''' भगवान कृष्ण ने कहा है कि 'चातुर्वर्ण्य मया सृष्ट' जिसमे मैने जन्मत: का अर्थ निकाला है। वर्ण धर्म जिसमे जन्म से न हो तो उसके कोई माने नहीं।[65]

इस प्रकार वर्णों का आधार महात्मा गाधी के अनुसार जन्मना है। मालवीयजी ने कहा था कि 'वह शूद्र जिसमे ब्राह्मण के गुण आ जायेंगे वह ब्राह्मण के समान आदर पाने के योग्य हो जायगा, किन्तु ब्राह्मण नही हो जायेगा।[66]

उपर्युक्त प्रसग मे गाधीजी और मालवीयजी दोनों ने ही वर्णो का आधार मनु के अनुसार जन्मना और कर्मणा माना है। गाधीजी ने पैतृक पेशो के आधार पर वर्ण व्यवस्था का आधार जन्मना माना है, किन्तु मालवीयजी ने अपनी उदार नीति के कारण कर्म के आधार पर निम्न वर्णो को उच्च वर्णो की कर्म के आधार पर सस्कृतीकरण द्वारा उच्च वर्ण का पद प्राप्त करने पर उच्च वर्ण के समान पद-प्रतिष्ठा प्राप्त करने की बात स्वीकार की है। यहाँ उनकी जन्म-कर्म के मताव-लम्बियों के झमेले से परे वर्ण व्यवस्था के उभय मतो की समन्वयवादी विचारधारा की पुष्टि होती है।

पुनर्जन्म

महात्मा गाधी के अनुसार—'पुनर्जन्म कोई बहस की चीज नही है। यह एक सचाई है''''''''''यूरोप इसे अब समझ रहा है।[67] पुनर्जन्म के विषय मे भी मालवीयजी और गाधीजी की विचारधारा समान है। मालवीयजी भी पुनर्जन्म मे विश्वास करते थे।[68]

सवर्ण विवाह—मालवीय और गाधी के विचार

महात्मा गाधी के अनुसार—'एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करना भाई चारे की भावना बढ़ाने या अछूतपन मिटाने के लिए जरा भी जरूरी नही है''''''''परन्तु बाहर से लगायी गयी पाबन्दी समाज के विकास को रोकती है।[69]

मालवीयजी ने सवर्ण विवाह के औचित्य को स्वीकार करते हुए उसे शास्त्र-सम्मत बताया था।[70] इस प्रकार विवाह के सम्बन्ध मे मालवीयजी के विचार गाधीजी के समान है।

सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करना मानव व्यवहार की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया है। मनु के सामाजिक स्तरीकरण के प्रसंग मे 'प्रतिष्ठा' प्रदान करना उनकी सम्पूर्ण

समाज व्यवस्था को अपनी विशेषता है। प्रतिष्ठा द्वारा ही उन्होंने ब्राह्मण को सर्वोच्च सामाजिक स्थान प्रदान किया है। शक्ति तथा धन का मनु ने क्रमशः क्षत्रियों तथा वैश्यों में वर्गीकरण किया है। क्षत्रिय लोग राजकुलों से सम्बद्ध होने के कारण शक्तिसम्पन्न होते हैं। वैश्य व्यापार वृत्ति से धनार्जन करने में सबसे आगे होता है। अतः इनकी व्यवस्था में मुख्य रूप से स्तरीकरण का आधार निम्नलिखित है—

(क) सम्मान तथा प्रतिष्ठा–ब्राह्मण।

(ख) शक्ति तथा साधन–क्षत्रिय।

(ग) धन तथा व्यापार–वैश्य।

(घ) सेवा वृत्ति–शूद्र।

मैक्स वेबर ने भी कहा है—जिस ढंग से सामाजिक सम्मान किसी समुदाय के विशिष्ट समूहों में, जो सामाजिक प्रतिष्ठा के सहभागी होते हैं, बँटी होती है, उसे हम व्यवस्था कह सकते हैं।[71] मैक्स वेबर के विचारों के प्रसंग में मनु की उपर्युक्त व्यवस्था को हम भारतीय समाज व्यवस्था का मूल आधार मान सकते हैं। मार्क्स ने जहाँ आर्थिक आधार को प्रधान मानकर समूहों का वर्गीकरण किया है, मनु ने अर्थ के स्थान पर प्रतिष्ठा को मूल में रखकर समाज का वर्गीकरण किया है। समाज की मूल क्रियाओं में मनु ने वर्ण के आधार पर स्तरीकरण किया है। यह मनु की समाज व्यवस्था की अपनी विशेषता है। मैक्स वेबर ने भी प्रतिष्ठा को आधार मानकर समाज व्यवस्था का वर्गीकरण किया है। मनु की समाज व्यवस्था में मैक्स वेबर की उपर्युक्त अवधारणा के अनुसार ही ....'सामाजिक सम्मान किसी समुदाय के विशिष्ट समूहों में जो सामाजिकता के सहभागी होते हैं, बँटी होती है।' भारतीय समाज व्यवस्था भी इसी क्रम में वर्गीकृत है।

मनु द्वारा प्रस्तावित वर्णों के व्यवसाय सम्बन्धी विचार वर्णों के उच्च-निम्न स्तरीकरण पर आधारित हैं। इस सम्बन्ध में मालवीयजी और गांधीजी की विचारधारा में समता है। मालवीयजी के अनुसार—मनु द्वारा निर्दिष्ट वर्ण कर्म ही वर्णों के पृथक्-पृथक् अपने कर्म हैं।[72] इसी विचारधारा की पुष्टि करते हुए गांधीजी ने लिखा है कि 'ब्राह्मण ब्रह्म ज्ञान देगा, क्षत्रिय रक्षा करेगा, वैश्य व्यापार वगैरह से धन कमायेगा तथा शूद्र सेवा करेगा और सब अपना-अपना कर्तव्य करके रोजी कमायेंगे, किन्तु गुजारे से ज्यादा नहीं कमायेंगे।[73]

इस प्रकार पेशे के चयन में मालवीयजी और गांधीजी दोनों की विचारधारा पूर्णरूपेण समान थी, जिसमें गांधीजी ने 'गुजारे[74] से ज्यादा न कमाने की' समाजवादी विचारधारा का समन्वय किया है। परन्तु मालवीयजी और गांधीजी दोनों ही नेताओं ने पेशा के विषय में शास्त्रोक्त वर्णों के वर्गीकरण को आधार माना है। गांधीजी के अनुसार—वर्ण व्यवस्था का जाति प्रथा से कोई सम्बन्ध नहीं है।....हमारे वर्ण हमारे अधिकारों को नहीं, अपितु कर्तव्यों को बताते हैं।

मूलरूप मे देखने पर हम देखते है कि वर्ण धर्म के सम्बन्ध मे स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाधी तथा महामना मालवीयजी के विचारों मे समता है। तीनों विचारक उक्त व्यवस्था के मूल को कर्म के आधार पर आधृत मानते हैं। इनकी समाज व्यवस्था के भारतीय स्वरूप पर गर्व और विश्वास के साथ आस्था भी है। प्रत्येक सुधारक पुरुष के लिए यह आवश्यक है कि वह भावी मान्यताओं, रूढ़ियों और परम्पराओं को जीवित रखने के लिए परिवर्तनवादी मोड या दिशा प्रदान करता रहे। आने वाले युग की मान्यताएँ निश्चित रूप से परिवर्तनवादी होती हैं— यह प्रकृति का शाश्वत स्वरूप और नियम है।

वर्णाश्रम धर्म की समन्वयात्मक विचारधारा

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार—'ब्राह्मण ही हमारे पूर्व पुरुषों के आदर्श थे। हमारे सभी शास्त्रों मे ब्राह्मणो का सात्विक चरित्र उच्च आदर्श माना गया है। यूरोप के बड़े-बड़े धर्माचार्य अपने पूर्वजो की श्रेष्ठता प्रमाणित करने के लिए जी तोड़ प्रयास करते है और सहस्रो रुपये व्यय करते है। उन्हे तब तक सन्तोष नही होता, जब तक वे अपनी वश परम्परा का सम्बन्ध किसी ऐसे भयानक अत्याचारी से जोड़ न लें जो किसी पहाड़ी पर रहता हो, वहाँ से यात्रियो को ताका करता हो और अवसर मिलते ही उन पर झपटकर उन्हें लूट लेता हो।.... वे धर्माचार्य तब तक सन्तुष्ट नहीं होते, जब तक इनमे से किसी एक से अपना वंशानुक्रम न ढूंढ़ लें। ठीक इसके विपरीत हम अमुक कोपीनधारी, सर्वस्वत्यागी, वनवासी, कन्दमूलाहारी और वेदपाठी ऋषि की सन्तान मानने मे गौरवान्वित होते है। अतएव हमारा उच्च जन्म का आदर्श अन्य देशों से भिन्न है। आध्यात्मिक साधन-सम्पन्न महात्यागी ब्राह्मण ही हमारे आदर्श है।.........आदर्श ब्राह्मणत्व वही है, जिसमे सांसारिकता नाममात्र की भी न हो तथा सच्चा ज्ञान पूर्ण मात्रा मे हो। हिन्दू समाज का यही आदर्श है.........शास्त्रो मे लिखा है—ब्राह्मण के लिए कोई नियम बन्धन नही, वह राजा द्वारा शासित नही होता और उसके शरीर को तनिक भी चोट नही पहुँचाई जा सकती।.........यदि समाज ऐसे ब्राह्मण से जो आध्यात्मिक एव सत्यभाव से युक्त है तो क्या उस समाज का समस्त कानूनो से परे एव ऊपर होना कोई आश्चर्य की बात है। ऐसे लोगो पर शासन करने के लिए पुलिस या सेना की आवश्यकता ही क्या है?.........सत्ययुग मे केवल एक ही जाति थी वह थी ब्राह्मण।[75] महाभारत मे बताया गया है कि पुरा काल में सारी पृथ्वी पर केवल ब्राह्मणों का ही निवास था। क्रमश: ज्यो-ज्यों उनका पतन हुआ, वे विभिन्न वर्णों में विभक्त हो गये।[76]

इस बात को और स्पष्ट करते हुए विवेकानन्द ने बताया है कि—'हमारी जाति समस्या का हल ऊँची जाति को नीचे लाने, मनचाहा आहार विहार करने और क्षणिक सुख-भोग के लिए अपनी-अपनी वर्णाश्रम धर्म-मर्यादा को तोडने से

नही निकलेगा। इसका अन्तिम हल तभी निकलेगा, जब हममें से प्रत्येक व्यक्ति वेदान्तिक धर्म के आदर्शों का पालन करेगा, जब हर कोई आध्यात्मिकता को प्राप्त कर लेगा और हममे से प्रत्येक आदर्श ब्राह्मण बन जायगा।·····ऊँच नीच सभी के लिए वेद का आदेश है—'चरैवेति, चरैवेति' इस देश के उच्चतम व्यक्ति से लेकर निम्नतम चाण्डाल को भी आदर्श ब्राह्मण बनने की चेष्टा करना है।'[77] उक्त विचार वर्णाश्रम धर्म के प्रति स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्त किया है। वस्तुतः रूढ़ियों में समाज की स्थिति अनेक विकृतियों से परिपूर्ण हो जाती है, जिसमें शास्त्रीय धार्मिक विधि-विधानो का लौकिक स्वरूप ही दिखाई पड़ता है। वर्तमान वर्ण व्यवस्था जन्म के आधार पर आधृत हो गयी है। यह है उसका वर्तमान लौकिक पक्ष। किसी भी समाज की व्यवस्था में एकाएक परिवर्तन नही हो सकता। भारतीय समाज की उक्त व्यवस्था जिसमे जातीयता का विकृत आधार जन्म पर आधारित हो गया है, उसमे उत्पन्न विकृति चाक्रिक है। हमारे शास्त्रो के अनुसार—पतन के बाद उत्थान प्रकृति का नियम है। वर्ण धर्म मे पतन के ही कारण ब्राह्मण युग के चतुर्थ चरण कलियुग में विभक्त हो गया है, परन्तु युग चक्र भविष्य में पुनः सत्ययुग के आने की सूचना दे रहा है और ब्राह्मण से चाण्डाल तक को उसी परम पद ब्राह्मणत्व को प्राप्त करना है। सोरोकिन के अनुसार—'सामाजिक अवकाश मानव जनसख्या का समग्र है। इस समग्र मे किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति प्रत्येक समूह से उनके सम्बन्धों तथा प्रत्येक समूहो मे इनके सदस्यो से उनके सम्बन्धो का योग है। किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति इन सम्बन्धों को निश्चित करके ही प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार के समूहो का योग सामाजिक सहतत्वों की एक व्यवस्था बनाता है, जिसके माध्यम से ही हम किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति परिभाषित कर सकते हैं।'[78]

भारतीय समाज व्यवस्था मे वर्णाश्रम व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमे सोरोकिन के उपर्युक्त मत के अनुसार क्रमशः निम्न वर्ण से उच्च वर्ण की सामाजिक स्थिति निर्धारित होती है। इस सम्बन्ध मे भारतीय शास्त्रकारो ने समाज मे ब्राह्मणो को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। वर्णो का यह स्तरीकरण राजनीति, शिक्षा, धर्म, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि सभी स्तरो पर दर्शाया गया है। इस स्तरीकरण के मूल मे शास्त्रकारो का आदिकालीन उद्देश्य भले ही जन्म की अपेक्षा कर्म पर अधिक रहा हो, किन्तु जन्म के आधार पर ही उसका विस्तार होता गया, जो सोरोकिन की उपर्युक्त स्तरीकरण की परिभाषा के आधार पर स्तरीकरण के वर्गीकरण का मूल आधार बन गया। मालवीयजी ने स्तरीकरण में उच्च तथा निम्न की भावनाओं के विकार को दूर करने का प्रयास किया और सभी वर्णों मे समन्वय की अवधारणा की स्थापना की है।

मालवीयजी ने शास्त्रीय विचारधारा का 'सार' ग्रहण किया है, किन्तु उसमें प्रयुक्त रूढिगत अतिशयोक्तियों पर बल नही दिया है, जैसे—व्यवहार मे मालवीय-

जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए, 'मनुस्मृति मे निर्दिष्ट स्त्री, रत्न, विद्या, धन,
पवित्रता, संतवचन, कार्यकौशल जहां भी सुलभ हों ग्रहण करना चाहिए'[७९] के
आधार पर जहाँ कहीं भी योग्य अध्यापक, धन, रत्न आदि सुलभ हुआ ग्रहण
किया, परन्तु अब्राह्मण से केवल आपत्काल मे ही विद्याग्रहण करना चाहिए और
ऐसे गुरु की सेवा आपत्काल तक ही करनी चाहिए'[८०] के प्रसग मे वह मौन रह
जाते हैं। उन्होंने अब्राह्मण विद्वान् का केवल समय पर स्वागत ही नही किया, किन्तु
उनका निरन्तर स्वागत करते रहे।

मनु ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कार्यो का उल्लेख किया है, जिसका
मालवीयजी ने युग के अनुसार महत्व दर्शाया है। मनु ने सभी वर्णों के पारस्परिक
वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा विविध जातियों की उत्पत्ति बतायी है।[८१] मालवीयजी ने
विवाह के प्रति संकीर्ण भावना को छोडने पर बल दिया है।

मालवीयजी ने ब्राह्मण से शूद्र पर्यन्त सभी को एक ही परिवार का चार
भाई माना है, जिनका कार्य विभाजन कर्म के आधार पर हुआ है। डॉ० भगवान-
दास प्रभृति विद्वानो ने मनु की वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म न मानकर कर्म
माना है। 'जन्मना जायते शूद्र.' (उक्ति के अनुसार), परन्तु मालवीयजी ने जन्म-
कर्म के इस तर्क में पड़े बिना इन दोनो मतावलम्बियो के मतभेदों के द्वन्द्व से परे
इसकी समाजपरक व्याख्या की है और कहा है कि चारों वर्ण के लोग उसी पुराण
पुरुष द्वारा उत्पन्न हुए हैं और सबका समान महत्व है। वे चाहते थे कि 'सार्व-
जनिक स्थानो से वर्ण भेद का प्रश्न हटा दिया जाय।'[८२]

मनु के अनुसार—ब्राह्मण कम आयु मे ही अन्य वर्ण वालो की अपेक्षा श्रेष्ठ
होता है।........उनके अनुसार ९० वर्ष की आयु में शूद्र भी माननीय होता
है।[८३] यहाँ मालवीयजी ने भी आयु मे श्रेष्ठ को ही श्रेष्ठ माना है। प० मोती-
लाल नेहरू, मालवीयजी के बहुत बाद में कांग्रेस मे आये थे, किन्तु आयु मे एक
वर्ष बड़े होने के कारण मालवीयजी उन्हें अपना बड़ा भाई मानते थे, जबकि
मालवीयजी के प्रयासो द्वारा ही प० मोतीलाल नेहरू कांग्रेस मे अध्यक्ष बन सके
थे। उस युग मे महामना मालवीय का कांग्रेस मे महत्वपूर्ण क्रान्तिकारी स्थान था।
मालवीयजी सभी प्राणियो मे बन्धुत्व की भावना रखते थे। मालवीयजी को
गाधीजी अतीव उच्च स्थान देते थे, जबकि मालवीयजी भी गाधीजी को देश के
लिए बड़ा महत्व देते थे। इस सम्बन्ध में मनुस्मृति में भी कहा गया है कि अधिक
आयु होने से ही कोई श्रेष्ठ नही होता, किन्तु जिसने वेद-वेदांत पढ़ा है, जो बुद्धि
समृद्ध है वही श्रेष्ठ है।[८४] इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी ने शास्त्रों के
मतान्तर की स्थिति मे समाजोपयोगी अपनी स्वतंत्र विचारधारा को अपना कर
शास्त्रों के सारभाग को ही ग्रहण किया है, न कि विवादास्पद प्रसंगो के तर्क और
सम्मतीत प्रसगों को।

मनुस्मृति की व्यवस्था के अनुसार—ब्याज की दर ब्राह्मण से सबसे कम और शूद्र स सबसे अधिक लेने का प्राविधान है।[८५] जबकि मालवीयजी सभी को समान रूप से कम ब्याजपर बैंक द्वारा ऋण दिलाने के पक्षधर थे।[८६] वह वर्तमान अछूत की भावना के विरोधी थे और हरिजनो को अन्य वर्ण के लोगो की भाँति हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के उत्तराधिकारी के रूप में मानते थे तथा उनको सभी प्रकार की उन्नति और अन्य वर्ण के लोगो के समान अधिकार देने के पक्षपाती थे।[८७]

मनु ने अतिथियों में भी स्तरीकरण को भावना का विचार किया है। उनके अतिथियों के स्वागत मे वर्गीकरण दृष्टिगोचर होता है।[८८] परन्तु मालवीयजी ने 'अतिथिदेवोभव' के अनुसार अतिथि रूप मे भारत आये प्रिंस आफ वेल्स (ब्रिटेन के राजकुमार) का स्वागत किया था और दोनो देशों की सद्भावना के लिए इस काम को आवश्यक बताया था।

शूद्र द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि को अपशब्द प्रयोग किये जाने पर उसके जिह्वा छेदन कर देने की बात की गयी है।[८९] परन्तु महामना मालवीयजी ने सभी वर्ण के लोगो के साथ सम भाव 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का उपदेश दिया है और उन्होने कही भी दण्ड व्यवस्था मे निम्न वर्णो के प्रति कठोर नीति की उक्त बात स्वीकार नही की है।

मनु के सामाजिक स्तरीकरण मे भारत की संस्कृति और सभ्यता की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं। पार्सन्स ने स्तरीकरण को समाज व्यवस्था के लिए प्रकार्यात्मक माना है। वह इस समाज की मौलिक घटना के रूप मे स्वीकार करते है। श्रम विभाजन की उत्पत्ति होने पर समाज व्यवस्था के लिए आवश्यक सभी सामाजिक क्रियाएँ समान महत्व की नही होती हैं। प्रत्येक समाज सामाजिक क्रियाओं के महत्व के अनुरूप उनमे विभेद स्थापित करने के कुछ मापदण्ड रखता है। उन्होंने सामाजिक क्रियाओं का मूल्यांकन किया है। इन्ही मूल्यों के अनुरूप इस तथ्य का निर्धारण किया जाता है कि कौन सी सामाजिक क्रिया समाजव्यवस्था के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। इस मूल्यांकन की निम्नलिखित तीन कसौटियाँ है—

(क) गुण : इसके अन्तर्गत व्यक्ति के प्रदत्त गुणो को सम्मिलित किया जाता है, यथा—वंशानुक्रम या योग्यता।

(ख) निष्पत्ति या परिणाम : निष्पत्ति के अन्तर्गत व्यक्ति की क्रियाओ का अन्य व्यक्तियो की क्रियाओ के सन्दर्भ मे तुलनात्मक मूल्यांकन सम्मिलित किया जाता है।

(ग) अधिकार : अधिकार के अन्तर्गत उन वस्तुओ, भौतिक वस्तुओ, योग्यता, बौद्धिक निपुणता के मूल्यांकनो को सम्मिलित किया जाता है, जिनपर व्यक्तियों का अधिकार होता है।

इन कसौटियों के आधार पर समाज की बृहत मूल्य व्यवस्था के मानदण्ड से व्यक्तियों की सामाजिक क्रियाओं का मूल्यांकन किया जाता है। उदाहणार्थ : धर्मोन्मुखी समाजों मे धार्मिक क्रियाओं को वरीयता दी जाती है। ऐसे स्थलों पर व्यक्ति के गुण परिमाण एवं अधिकार धार्मिक सन्दर्भो मे होंगे, यथा--भारतीय समाज इसका प्रमुख उदाहरण है। इसके विपरीत अमेरिकी समाज में आर्थिक प्रतिस्पर्धाजन्य मूल्यों को वरीयता दी जाती है। पार्सन्स ने मूल्य प्रतिमानों की चार श्रेणियो का उल्लेख किया है। इन्ही के अनुरूप समाज की चार प्रकार की प्रकार्यात्मक आवश्यकताओं पर प्रकाश डाला गया है। इनकी पूर्ति समाज की शाश्वतता के लिए आवश्यक हैं। ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं—

(क) अभियोजन : अभियोजन भौतिक पर्यावरण द्वारा अपेक्षित भागों के अनुरूप समाज व्यवस्था के अभियोजन की आवश्यकता, जिससे इन पर नियंत्रण प्राप्त किया जा सके।

(ख) लक्ष्य प्राप्ति : समाज व्यवस्था के सामूहिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए व्यक्ति पर दबाव डालने की आवश्यकता।

(ग) एकीकरण : समाज मे एकता स्थापित करने के लिए व्यक्तियो, संस्थाओ तथा सामाजिक इकाइयों में परस्पर सम्बद्धता के आधार पर एकीकरण की आवश्यकता होती है।

(घ) प्रतिमान संरक्षण : प्रतिमान संरक्षण एकता की आवश्यकता पर बल देता है। परन्तु इसके अन्तर्गत व्यवस्था के आन्तरिक सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण तथा नवीनीकरण का प्रयास किया जाता है, जो परिवर्तनशील अवस्था मे एकता बनाये रखने मे उपयोगी होते है।

प्रत्येक समाज अपने मूल्यो तथा विशिष्ट, अर्जित, प्रदत्त के अनुरूप इन सामाजिक प्रकार्यों का मूल्यांकन करते हुए इनमे वरीयता प्रदान करता है। प्रत्येक समाज में समय-समय पर इन प्रकार्यों की पूर्ति भी वरीयता प्राप्त करती है। अर्थात् एक समय मे एक प्रकार्य अधिक महत्वपूर्ण होता है, तो दूसरे समय मे कोई दूसरा प्रकार्य। परन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि अन्य प्रकार्यों का महत्व नहीं होता है। महत्व होता अवश्य है, किन्तु समाज एवं काल के सन्दर्भ मे इनकी महत्व-वरीयता मे परिवर्तन होता है। इसलिए मूल्यांकन के दृष्टिकोण से इन प्रकार्यों की स्थापना एक वरीयता क्रम में होता है और इनकी श्रेणीबद्धता बन जाती है, जो स्तरीकरण को उत्पन्न करती है तथा समाज व्यवस्था को गत्यात्मक सकलन के रूप मे स्थायित्व प्रदान करती है। प्रकार्यों के वरीयता-क्रम के परिवर्तन के साथ ही सामाजिक परिवर्तन घटित होता है। इस प्रकार बृहत् मूल्य व्यवस्था के अनुसार विभेदीकृत परिस्थिति वितरण समाज व्यवस्था की एक मौलिक घटना है।[१०]

स्तरीकरण की उक्त व्यवस्थाओं में हम मर्टन की निम्नलिखित विचारधारा का सकलित स्वरूप देखते हैं। उनके अनुसार—'सास्कृतिक संरचना, किसी समाज अथवा समूह के सदस्यों के व्यवहारों को सामान्य रूप से नियंत्रित करने वाले संगठित आदर्शात्मक मूल्यों के रूप में परिभाषित की जा सकती है तथा सामाजिक सरचना का तात्पर्य किसी समाज अथवा समूह के सदस्यों के संगठित सामाजिक सम्बन्धों से है।[९१] यहाँ स्पष्ट रूप से सामाजिक सरचना समूह की नियमितताओं को इंगित करती है जबकि सास्कृतिक सरचना लक्ष्य-व्यवस्था को निर्धारित करती है, अर्थात् सास्कृतिक संरचना लक्ष्यों एवं सामाजिक संरचना द्वारा मान्यता प्राप्त भूमिकाओं की ओर सकेत करती है।

इस प्रसंग में एक बात मुख्यरूप से उल्लेखनीय है कि मार्क्स के वर्ग स्तरीकरण या वर्गभेद की आर्थिक प्रक्रिया में मनु की समाज व्यवस्था का स्तरीकरण कदापि नहीं हुआ है। यह दुर्खीम आदि के श्रम विभाजन के सिद्धान्त की भाँति भी नहीं है। अतः चारों वर्णों को आर्थिक वर्ग मानना कदापि समीचीन नहीं है। इन वर्णों का मूल आर्थिक नहीं था।[९२] क्योंकि आर्थिक कारण में उत्पादन कार्य नहीं करते। मार्क्स ने स्पष्ट शब्दों में कहा है—'एक सामाजिक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का कोई भी एकीकरण है जो उत्पादन संगठन में समान प्रकार के कार्य करते हैं।[९३] व्यक्ति की वर्ण-स्थिति सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्राथमिक सामाजिक श्रेणी है। यह एक प्राथमिक निर्धारक के रूप में कार्य करती है, जो व्यक्ति के कार्यों, विचारों तथा परिस्थितियों का निर्धारण करती है। मार्क्स के स्तरीकरण का तात्पर्य वर्गों से है। वर्ग उत्पादन प्रणाली के अपरिहार्य परिणाम है, जो उत्पादन के साधनों पर अधिकार रखने वालों (haves) और इससे वंचित लोगों (have not) के विभाजन के रूप में अभिव्यक्त होते हैं। स्तरीकरण के सोपान-क्रम में बुर्जुआ वर्ग के नीचे एक मध्यम वर्ग का भी अस्तित्व पाया जाता है। मार्क्स का मत है कि बुर्जुआ वर्ग की प्रतिस्पर्धा में कमजोर पड़ने के कारण यह मध्यम वर्ग धीरे-धीरे सर्वहारा वर्ग में विलीन हो जाता है। इस प्रकार मार्क्स के वर्गस्तरीकरण की मूल धारणा मनु के वर्ण स्तरीकरण की मूल धारणा से सर्वथा भिन्न है। वर्ण-व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है, जिसमें मान एवं प्रतिष्ठा की मूल भावना समाहित है, न कि आर्थिक आधार पर उत्पादन के क्षेत्र की मार्क्स की वर्ग और उसके स्तरीकरण की भावना। मनु की वर्ण व्यवस्था में स्तरीकरण का सोपान क्रम सामाजिक प्रतिष्ठा एवं सम्मान पर आधारित है, जिसका आर्थिक वर्ग स्तरीकरण से कोई साम्य नहीं है।

आश्रम धर्म और मालवीयजी

आश्रम धर्म की व्याख्या करते [redacted] मालवीयजी ने कहा था—'आयुर्वेद वाले कहते हैं कि २५ वर्ष के पुरुष और १६ वर्ष की स्त्री का परस्पर सम्बन्ध होना

चाहिए। इस अवस्था से पहले जो सन्तान होगी वह या तो मर जायगी या दुर्बल और रोगी होगी। ब्रह्मचर्याश्रम सब धर्मों का मूल है, नीव है। नींव कमजोर हो जायगी तो क्या करोगे ? सनातन धर्म का उपदेश यही है कि पहले पचीस वर्ष तक ब्रह्मचारी रहो।[९४]

उपर्युक्त विचार के प्रसग में हम पाते हैं कि मालवीयजी वर्ण के साथ आश्रम-व्यवस्था के प्रति भी तादात्म्य रखते थे। आश्रम के सम्बन्ध में मालवीयजी ने कहा था—आश्रम धर्म ऐसी फिलासफी संसार के पर्दे पर और कहीं नही मिलती, जो मनुष्य नियम से रहे, किसी का बुरा न करे, वह १०० वर्ष तक जियगा। ब्रह्मचर्य पचीस वर्ष तक पढ़ो-लिखो, गुरुकुल में जाओ। नियम से रहो। कठोर तपस्या करो। गुरु के आशीर्वाद के बाद गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करो। ५० वर्ष तक गृहस्थाश्रम मे रहो। ५० वर्ष बाद लड़कों को काम सौप दो। स्त्री को संग लेकर देश-विदेश घूमो। जब साहस नहीं रहेगा, वृद्ध हो जाओगे, तब सेवा क्या करोगे। ७५ वर्ष बाद सन्यास धारण करो।[९५]

इस प्रकार मालवीयजी के आश्रम सम्बन्धी विचार शास्त्रीय हैं। देश के साथ विदेश भ्रमण की बात समुद्री यात्रा के परम्परागत रूढ़िवादी प्रतिबन्ध के विचार में परिवर्तन की सूचक है। उन्होंने कहा था—'पहले ब्रह्मचारी बनो, तब अंग्रेजों का सामना कर सकोगे।'[९६] यहाँ हम देखते हैं कि मालवीयजी बल और पौरुष सचय हेतु भी आश्रम धर्म के महत्व को सर्वोपरि मानते थे। इस सम्बन्ध में मालवीयजी और गांधीजी के विचारों मे समता थी।

निष्कर्ष

भारतीय समाज व्यवस्था पूर्ण रूप से शास्त्रो में उल्लिखित व्यवस्था पर व्यवहृत नहीं है, किन्तु सारे समाज के 'मूल' मे इस व्यवस्था की छाप वर्तमान है। उच्च से लेकर निम्न वर्ण के सभी लोग उक्त व्यवस्था के प्रति निष्ठा रखना अपना धर्म (कर्तव्य) समझते हैं। आधुनिक पश्चात्य सभ्यता के साक्षात्कार तथा प्रभाव के कारण उक्त व्यवस्था मे परिवर्तन हुए हैं, किन्तु आज भी परम्परा तथा विश्वासो के कारण, उक्त व्यवस्था पर समाज की 'मूल' अवधारणा आधृत है। संस्कार, विवाह आदि सभी कर्मकाण्ड ब्राह्मणों द्वारा ही सम्पादित कराये जाते हैं। ब्राह्मणों से बरतन, कपड़े धोने आदि का कार्य आज भी प्रायः नही कराया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि परिवर्तन के इस युग मे भी जबकि विधान ने सभी को समान अधिकार प्रदान किये हैं, रूढ़ियों और परम्पराओं के प्रभाव के कारण लोग शास्त्र-विरुद्ध कार्य कराना उचित नहीं समझते और समाज की मान्यता मे अभी भी धार्मिक विश्वासो का स्वरूप किसी-न-किसी रूप में वर्तमान है।

उक्त विश्लेषण में यह पाया गया है कि भारतीय समाज-व्यवस्था की आधारभूत मान्यता स्तरीकरण पर आधारित है। मनु की समाज-व्यवस्था के उक्त स्वरूप दर्शन के सातत्य के सन्दर्भ में हम पाते हैं कि महामना मालवीयजी की विचारधारा प्रगतिशील तथा परिवर्तनोन्मुखी रही है। इस समाज-व्यवस्था के तातत्य स्वरूप में मालवीयजी की गतिशील और परिवर्तनवादी विचारधारा के सापेक्षिक स्वरूप की पुष्टि होती है। मूल रूप से मालवीयजी ने भारतीय समाज को समग्र रूप में लिया है और मनुस्मृति के स्तरीकृत श्रेणीगत स्वरूप में समता और एकता के स्वरूप का आधुनिक समन्वयात्मक विचार प्रस्थापित करने का प्रयास किया है।

एक ही समाज और संस्कृति में भाग लेने वाले समूहों में शक्तिशाली वर्ग के लोग वहाँ के सांस्कृतिक कार्यकलापों में अधिक भाग लेते हैं। पृथक्-पृथक् समूहों के लिए पृथक् मिथ, कानून, विचार तथा दर्शन होते हैं। वर्ग अपनी विशेषताओं को बनाये रखने का प्रयास करता है, यह प्राकृतिक नियम है। प्रभुत्वशाली वर्ग अपनी नैतिकता, संस्कृति, लोकाचार, रहन-सहन की प्रविधि तथा सम्मान-सहिताएँ पृथक्-पृथक् बनाता है। वह इसे सदा बनाये रखने का प्रयास करता है। वस्तुतः व्यक्ति का व्यवहार वैयक्तिक स्तर पर नहीं होता, किन्तु वह अपने समूह के प्रतिनिधि के रूप में व्यवहार करता है। इस प्रकार समूहों के बीच दीवार खड़ी कर दी जाती है। शक्तिशाली वर्ग का प्रभुत्व निरन्तर स्थिर रहने वाला नहीं है, अपितु समय-समय पर दूसरा वर्ग उसे समाप्त कर देता है।

विधि व्यवस्था द्वारा शक्तिशाली वर्ग अपनी स्थिति को बनाये रखने का प्रयत्न करता है। इसके द्वारा वह कुछ प्रमुख व्यवसाय, पद तथा प्रशासन आदि का अधिकार सुरक्षित रखता है। भारतीय वर्ण व्यवस्था में इस प्रकार के वर्णित समाज के स्तरीकरण के उदाहरण देखने को मिलते हैं। कहीं पुरोहित शक्तिशाली होता है, कहीं शासक, वस्तुतः अलग-अलग व्यवसाय करने वालों से ही समाज बनता है।

मनु की समाज व्यवस्था में सामाजिक स्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है। इनकी व्यवस्था में भारत का प्रभुत्वशाली समूह या वर्ग (ब्राह्मण-क्षत्रिय) अपने सामाजिक स्तर को बनाये रखना चाहता है। वह विभिन्न प्रकार के संस्कारों तथा कर्मकाण्डों का निर्माण करता है। इस प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था में भी स्तरीकरण दृष्टिगोचर होता है। उपर्युक्त वर्णित विषयों के प्रसंग में मनु ने समूहों के रूप में वर्णों की असमान शक्ति का भी वर्णन किया है। इस सम्बन्ध में उनको कायम रखने के नियमों का भी उन्होंने उल्लेख किया है।

भारतीय 'व्यक्ति' शास्त्रों की आज्ञा मानना अपना धर्म समझता है। फिर मालवीयजी तो जन्म कर्म सभी दृष्टियों से सुसंस्कृत ब्राह्मण वंशीय थे और उन्होंने

विधिवत् शास्त्रों का गहन अध्ययन तथा मनन किया था। उनका संस्कार धर्म-शास्त्रो के अनुरूप परम्परावादी परिवार मे हुआ था। ऐसी परिस्थिति मे भारतीय समाज व्यवस्था के उक्त सन्दर्भ में अवतरित होकर भी, उन्होने उक्त व्यवस्था को जीवित रखने के लिए उसमे आधुनिक मोड़ देने का प्रयास किया और सम्पूर्ण व्यवस्था के मूल स्वरूप पर आघात पहुँचाये बिना, विराट् समाज की मूल वैदिक भावना के सन्दभ मे भारतीय समाज व्यवस्था को प्रगतिशील पथ पर अग्रसरित करने मे योगदान किया। कहना नही होगा कि मालवीयजी के कार्य करने की शैली इस प्रकार की थी कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए वह विप्लववादी विचारधारा का प्रवर्तन करके, किसी व्यवस्था मे विद्रोही परिवर्तन नही कराना चाहते थे, किन्तु वह समाज की रूढ़ियों, परम्पराओं आदि के प्रवाह में क्रमश: परिवर्तनवादी मोड देने का प्रयास करते थे, जिससे शास्त्रीय मूल धारा अबाधित रूप से समाज की निरन्तरता को कायम रख सके। मनु की समाज व्यवस्था में उच्च वर्णों की उत्कृष्टता बनाये रखने के लिए शास्त्रों मे उल्लिखित कर्मकाण्डों के प्रति मालवीयजी ने प्रगतिशील विचार व्यक्त किया है। उन्होने भारतीय समाज को समग्र रूप में देखा है तथा मनु के शास्त्रीय विविधतावादी स्वरूप मे समता और समन्वयवादी विचार व्यक्त किया है। अत: हम पाते है कि मनुस्मृति के स्तरीकरण पर आधारित समाज व्यवस्था मे संस्कार, वर्ण, जाति, राज्य, राज्यदण्ड, कर तथा यज्ञादि कर्म-काण्डों में सर्वत्र स्तरीकरण की अवधारणा सन्निहित हैं, परन्तु मालवीयजी के विचार, पुनर्जागरण के सुधारवादी नेताओ की भाँति, शास्त्रों पर आस्था एव विश्वास रखने वाली जनता की भावनाओ को शास्त्रों की मूल मान्यता की दिशा में उन्मुख करने वाले हैं, न कि 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' का अधानुकरण करने वाले। इस प्रकार शास्त्रो की परस्पर विरोधी बातों में मालवीयजी ने सदैव प्रगतिशील विचारों को सामाजिक गतिशीलता प्रदान करने का प्रयास किया है।

—: ० :—

सन्दर्भ

1. शुभाशुभफलं कर्म मनोवाग्देहसम्भवम्।
कर्मजा गतयो नृणामुत्तमाधममध्यमाः॥ मनुस्मृति, अध्याय १२, श्लोक ३।
2. देवत्वं सात्विका यान्ति मनुष्यत्वं च राजसाः।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधा गतिः॥ वही, अध्याय १२, श्लोक ४०

3. त्रिविधा त्रिविधैषा तु विज्ञेया गौणिकी गतिः ।
अधमा मध्यमाग्र्या च कर्मविद्या विशेषत- ॥ वही, श्लोक ४१ ।
4. मनुस्मृति, अध्याय १२, श्लोक ४२-५० ।
5. मनुस्मृति, अध्याय १२, श्लोक ५२ ।
6. प्रो० श्यामाचरण दुबे - अध्यक्षीय भाषण, १३वाँ अखिल भारतीय समाज वैज्ञानिक सम्मेलन, चण्डीगढ (१९७६) ।
7. M. Harry Johnson, Sociology—A Systematic Introduction p. 469, Allied Publishers Pvt. Ltd., India, Bombay, 1966.
8. मनुस्मृति, १-९२ ।
9. वही, १-९३ ।
10. वही, १-९५ ।
11. वही, १-९६ ।
12. वही, २-३१, ३२ ।
13. वही, २-२८ ।
14. वही, १-९५ ।
15. वही, १-९६ ।
16. वही, १-९८ ।
17 वही, २-२४० ।
18. वही, २-२४१ ।
19. वही, १-२४१ ।
20. वही, १०-७५ ।
21. वही, १०-७६ ।
22. वही, १०-८१ ।
23. वही, १०-८२ ।
24. वही, १७-८० ।
25. वही, १०-७९ ।
26. वही, १०-८५ ।
27. वही, ११-३४ ।
28. वही, १०-७९ ।
29. वही, १-८६ ।
30. वही, ११-१८ ।
31. वही, १०-८६ ।
32. वही, १-९० ।

33. वही, १०-९८।
34. वही, १०-९९।
35 पण्डित मदनमोहन मालवीय (खण्ड २) (पूर्व उद्धृत), पृ० १२३।
36. यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्ते न हि भवेद्द्विजः ॥ महाभारत, वनपर्व २१५।
११-१२—(मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० २०६।
37. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० २३४।
38. वही, पृ० २८०।
39. वही, पृ० २८३।
40. मिताक्षरा, २-३०।
41. एपीग्राफिका इण्डिया, १-४३ (स० ४), पृ० ३८३।
42. वैजयन्ती, पृ० २७३।
43. वीर मित्रोदय-व्यवहार, पृ० १२।
44. वृहत् सहिता, ३४-१९।
45. M. N. Srinivas : Social Change in Modern India, p. 94, Published by Orient Longman, Bombay, Indian Edition, 1972.
46. G.S. Ghurye : Caste, Class in India, pp. 169-170, Popular Prakashan, Bombay.
47. Social Change in Modern India, op. cit., p. 100.
48. मनुस्मृति, ८-१८९, महामना मालवीयजी के लेख और भाषण, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (१९६१) पृ० १२।
49. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ६३१
50. महामना मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० २५३।
51. वही, पृ० ९५।
52. वही, पृ० ११९।
53. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, पृ० ९६ (११ अप्रैल, १९३१, कानपुर हिन्दू मुस्लिम दगे के बाद दोनो सम्प्रदायों की खुली सभा मे भाषण)
54. Social Change in Modern India, op. cit. p. 91.
55. Ibid., p. 91.
56. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत) पृ० १५।
57. " " "
58. " " "
59. वही, पृ० १३।

60. शूद्रयोन्रौ हि जातस्य सद्गुणानुपतिष्ठतः ।
वैश्यत्वं लमते व्रह्मन् क्षत्रियत्वं तथैव च ॥ महाभारत, वनपर्व, २०७-१५१
वही, मालवीयजी के लेख और भाषण, पृ० २०६ ।
61. पट्टाभि सीतारमैया, गाधी और गाधीवाद (एक अध्ययन) पृ० २१, (नव जीवन, ११-१२-१९२७), हिन्दी रूपान्तर, वेदराज वेदालंकार, प्रकाशक : शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्रा०लि०, आगरा (१९५९) ।
62. वही, पृ० २५ ।
63. वही, पृ० १७ ।
64. वही, पृ० २६ ।
65. पट्टाभि सीतारमैया, गाधी और गाधीवाद (एक अध्यायन) पृ० २८, द्वितीय भाग, हिन्दी अनु० (पूर्व उद्धृत) ।
66. महामना पं० मदनमोहन मालवीय के लेख और भाषण (भाग-१ धार्मिक) पृ० १८६, (१९६२), प्रकाशक : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ।
67. पट्टाभि सीतारमैया (पूर्व उद्धृत), पृ० ३५ (नव जीवन १८-१२-१९२७) ।
68. महामना पं० मदनमोहन मालवीय के लेख और भाषण (भाग-१ धार्मिक), पूर्व उद्धृत, पृ० ४ ।
69. पट्टाभि सीतारमैया (पूर्व उद्धृत) पृ० ६४ ।
70. महामना मदनमोहन मालवीय के लेख और भाषण (भाग-१ धार्मिक), पूर्व उद्धृत, पृ० २८७ ।
71. Max Weber : Class Status and Poverty in Class Status and Power—A Reader in Stratification, p. 64, Free Press of Glencoe 1953.
72. मालवीयजी के लेख और भाषण (पूर्व उद्धृत), पृ० ११ ।
73. पट्टाभि सीतारमैय्या, गाधी और गाधीवाद (एक अध्ययन), पृ० ६२ ।
74. वही, पृ० ६२ ।
75. उत्तिष्ठतजाग्रत (स्वामी विवेकानन्द का संदेश) (पूर्व उद्धृत), पृ० ७४-७५ ।
76. *न विशेषोऽस्ति वर्णाना सर्वं ब्रह्ममिदं जगत् ।*
77. उत्तिष्ठत जाग्रत, (पूर्व उद्धृत) पृ० ७६ ।
78. A Pitirim Sorokin : Social and Cultural Mobility, p. 11, The Free Press of Glencoe, Illinios (1959).
79. मनुस्मृति, अध्याय २, श्लोक २४० ।
80. मनुस्मृति, २-२४१ ।
81. मनुस्मृति १०-८,९,१०,११,१४ ।
82. सार्वजनिक भाषण, हिन्दू महासभा, पूना १९३५ ।

83. मनुस्मृति-२-१३६-१३७।
84. मनुस्मृति-२-१४५।
85. मनुस्मृति-८-२१०।
86. Proceeding : Council of Governor General (Lagislative) 1911, Vol. 49, pp. 418, 419, 421.
87. हिन्दू महासभा, कानपुर अधिवेशन, सन् १९२५।
88. मनुस्मृति-३-११०-११६।
89. मनुस्मृति-८-२७३।
90. T. Parsons : An Analytical Approach to the Theory of Social Stratification, p. 849, Published by American Journal of Sociology, Nov. 1940.
91. R.K. Merton : Theory and Social Structure, p 216, The Free Press, New York, 1968.
92. कृष्णदत्त द्विवेदी : 'वर्ण व्यवस्था' भारतीय समाजविज्ञान समीक्षा, पृ० ८८-११४, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, अंक २ तथा ३, सन् १९७१।
93. R. Bendix & Lipoel, S M. Karl Marx : Theory of Social Class, p. 28, In Class Status and Power, Edited by Bendix and Lipset, Free Press of Glenco, 1953.
94. वासुदेवशरण (संकलन कर्त्ता) : महामना पण्डित मदनमोहन मालवीयजी के लेख और भाषण (भाग-१), धार्मिक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, (१९६२), पृ० १८८।
95. वही, पृ० १८८।
96. वही, पृ० १८८।

—: o :—

अध्याय—५

मालवीयजी के सामाजिक सुधारवादी विचार एवं कार्य

मालवीयजी समाज सुधार के क्षेत्र में

समाज मे बहुत-सी ऐसी प्रथाएँ कायम हो जाती है, जिनके परिणामस्वरूप प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अनेक हानियाँ होती है। ऐसी प्रथाओं या परम्पराओं में सुधार हेतु सुधारवादी प्रयास और संघर्ष की आवश्यकता पड़ती है। ऐसे संघर्षों में सुधारको का कट्टरपंथियों के रूढिवादी विचारों से टकराव होता है। प्रोफेसर श्रीनिवास ने एस० नटराज के 'भारत मे समाज सुधार के सौ वर्ष' (पृ० ३४) का उल्लेख करते हुए लिखा है कि कट्टरपंथियों और सुधारकों दोनो द्वारा ही अपने-अपने विचारो के समर्थन मे शास्त्रो की दुहाई दी जाती थी। बुद्धिवादी राजा राममोहन राय को भी सतीप्रथा के विरुद्ध संघर्ष मे शास्त्रो का आश्रय लेना पड़ा था।[1]

मालवीयजी परम्पराओ मे मूलभूत संशोधन और परिवर्तन के समर्थक थे। हिन्दू धर्मशास्त्रो मे राजतन्त्र की व्यवस्था के साथ ही राज्य के प्रति निष्ठा की बात कही गयी है, परन्तु मालवीयजी 'राजभक्ति की अपेक्षा देशभक्ति, राजतन्त्र की अपेक्षा प्रजातंत्र को महत्वपूर्ण मानते थे और वह इसी के समर्थक थे। भारत धर्म महामण्डल को मालवीयजी का उपर्युक्त परिवर्तनवादी विचार स्वीकार नही था। भारत धर्म महामण्डल के मतानुसार—'मालवीयजी का उक्त मत परम्पराओं के विरुद्ध था।'[2]

जनतान्त्रिक विचारधारा के प्रसंग मे हम देखते हैं कि मालवीयजी की विचारधारा पूर्णरूपेण जनतान्त्रिक थी। उन्होने स्पष्ट रूप से उपर्युक्त भारत धर्म महामण्डल के विरोध के बावजूद राजभक्ति के स्थान पर देशभक्ति, राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातान्त्रिक मूल्यों की प्रगतिशील विचारधारा का औचित्य प्रतिपादित किया और इसी परिवर्तनशील विचारधारा के अनुसार देशभक्ति के आधार पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रजातान्त्रिक ढग से संघर्ष किया, जो उनके प्रगतिशील आधुनिकीकृत सामाजिक विचारो का परिचायक है।

भारतीय 'स्त्री' : परिवर्तन और मालवीयजी

भारतीय स्त्रियों का परम्परावादी रूप घर में पर्दे के भीतर निहित हो गया था। मालवीयजी के अनुसार—भारतीय स्त्री को पर्दे और घर के बाहर पुरुषोचित आत्मबल से युक्त होना चाहिए। मालवीयजी ने कहा था कि 'मैं चाहता हूँ कि हमारे देश की सभी स्त्रियाँ अंग्रेज महिलाओं की भाँति पिस्तौल और बन्दूक रखें और उनको चलाना सीखें। वे किसी भी आक्रामक से अपने सतीत्व की रक्षा कर सकें।""इस बात का ध्यान रखें कि आप पहले भारतवासी है, फिर हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई या और कुछ।[3]

इस प्रसग मे हम देखते हैं कि मालवीयजी के अनुसार—भारतीय स्त्री को धैर्य और वीरता मे पाश्चात्य स्त्रियों के समान होना चाहिए। उन्होने स्पष्टरूप से अंग्रेज स्त्रियों की वीरता को आदर्श प्रारूप मानकर उनकी भाँति भारतीय स्त्रियो को पिस्तौल-बन्दूकधारी होने की बात कही है। मालवीयजी की उक्त विचारधारा निश्चित रूप से पश्चिमीकरण से प्रभावित भारतीय परम्परावादी विचारधारा के विपरीत प्रगतिशील और परिवर्तनवादी है। परम्परागत पर्दे मे रहने वाली भारतीय 'स्त्री' के वर्तमान रीति-रिवाज उन्हे पसन्द नही थे। राष्ट्रीय आन्दोलन मे भी पुरुषों की भाँति स्त्रियों को आगे आने का आवाहन उन्होने किया था। उनके इन विचारों के प्रसग मे हम पाते है कि मालवीयजी की दृष्टि मे 'भारतीय स्त्री' पुरुषों के हाथ का खिलौना नही है, अपितु वह स्वावलम्बी और अपनी रक्षा स्वय करने वाली है। अत. मालवीयजी की दृष्टि में 'आदर्श नारी' घर की चहारदीवारी के अन्दर की शोभा न होकर कर्म तथा धर्म के क्षेत्र मे स्वावलम्बी है। इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी परम्पराओ मे परिवर्तन के क्षेत्र मे आगे रहते थे और वह जो कुछ परिवर्तन आवश्यक समझते थे, उसके क्षेत्र मे केवल विचार ही व्यक्त नहीं करते थे,अपितु उस क्षेत्र मे सक्रिय नेतृत्व भी करते थे। मालवीयजी हिन्दू समाज की कुप्रथाओं के सम्बन्ध मे सक्रियरूप से कार्यरत थे।

हिन्दू विवाह की 'मूल' समस्याएँ और मालवीयजी

हिन्दू विवाह की वैसे तो समाज मे अनेक समस्याएँ है, किन्तु उनमे से प्रमुख समस्याएँ, जिन पर मालवीयजी के प्रगतिशील विचार उल्लेखनीय हैं, निम्नलिखित हैं—

(क) वर मूल्य : प्रोफेसर कपाडिया के अनुसार 'हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार हिन्दू विवाह एक धार्मिक संस्कार है। वेदो का आदेश है कि स्त्री एव पुरुष के सहयोग से वेदसम्मत नियमो का पालन करना चाहिए।'[4] 'कन्यादान के लिए शूद्र को भी शुल्क नही लेना चाहिए।'[5] मालवीयजी भी वर मूल्य या दहेज लेना अनुचित मानते थे। उनके अनुसार—स्त्री-पुरुष जीवन पर्यन्त मेल के साथ कार्यों मे सहयोग देते हुए रहें। सक्षेप मे यही स्त्री-पुरुष का धर्म है। इन

मे दहेज या वरमूल्य जैसी प्रथा का प्रचलन दोष है। समाज मे दहेज समाप्त होना चाहिए।[6] मालवीयजी यह भी चाहते थे कि 'संस्कारों में बहुत अधिक धन व्यय न किया जाय तथा फैशन समाप्त होना चाहिए।[7]

बाल विवाह

स्मृतिकाल मे विवाह इस स्थिति को प्राप्त हो गया था कि लोग बाल विवाह को धर्म मानने लगे थे। धीरे-धीरे बाल विवाह का व्यापक प्रचलन होता गया। बाल विवाह का विरोध करते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'हमें नरक में जाना स्वीकार है, परन्तु बाल विवाह करना स्वीकार नहीं है।'[8] महामना मालवीयजी बाल-विवाह के विरोधी थे, किन्तु कौंसिल में जब श्री भूपेन्द्रनाथ बसु[9] ने बाल-विवाह पर रोक हेतु १९१२ ई० में विधेयक प्रस्तुत किया तो मालवीयजी ने यह कहकर उसका विरोध किया कि इससे सनातनियों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचेगी और मुझे इस विधेयक के अमल होने में सन्देह है। अत: इसके लिए पहले जनमत तैयार किया जाना चाहिए।

मालवीयजी (८ वर्ष या १२ वर्ष) के पूर्व कन्या के विवाह[10] के शास्त्रीय मत के विपरीत इस प्रकार के विवाह को सर्वथा अनुचित मानते थे। उनके मतानुसार—अल्पायु में बालक और बालिकाओं का विवाह करने पर बल घट जाता है।[11]

अनैतिक बालिका व्यापार

१९१२ ई० मे मालवीयजी ने विधान कौंसिल में मांग की कि नाबालिग लड़कियो का अनैतिक व्यापार बन्द होना चाहिए और सहवास की आयु बढ़ानी चाहिए।[12] उन्होंने वेश्याओ द्वारा छोटी लड़कियों को गोद लेने की तथा पत्नियों के हस्तान्तरण जैसे घृणित व्यवहार को भी बन्द करने की जोरदार मांग की थी।[13]

विधवा विवाह

विधवा विवाह, स्त्रियों के बाल विवाह के कारण, उस युग की जटिल समस्या थी। पुरुषों को जहाँ शास्त्रो मे अनेक विवाहो की अनुमति दी गयी है, स्त्रियों के ऊपर अन्यान्य प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। विधवा को हिन्दू समाज मे अशुभ माना गया है। ऐसी स्थिति में प्रगतिशील विचारधारा के पक्षधर मालवीयजी का विधवा विवाह का समर्थन करना युग की मांग के अनुरूप माना जा सकता है। मालवीयजी के अनुसार—'यदि विधवा चाहे तो उसका विवाह कर देना चाहिए। परन्तु इस सम्बन्ध में सनातन धर्मियों की सभा की जानी चाहिए और उसके निर्णय के अनुसार सब काम होना चाहिए।'[14]

मालवीयजी परम्परा-विरुद्ध कोई कार्य करने के पूर्व तर्क के आधार पर उसके लिए सामाजिक स्वीकृति भी ले लेना चाहते थे, जिससे उस कार्य को समाज का समर्थन मिल सके और समाज उस नवीन कार्य को ग्रहण कर सके। इसके पूर्व ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने भी यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि शास्त्रो मे वैधव्य का कोई विधान नही है। इसी प्रकार वम्बई मे माण्डलिक ने समुद्री-यात्रा सहित अन्य कई सुधारों के लिए पण्डितों की अनुमति प्राप्त करनी चाही थी।[15] मालवीयजी ने स्वयं एक विधवा का विवाह करा दिया था, परन्तु उनकी विधवा बुआ को जब इस बात का पता लगा तो उन्होने मालवीयजी को बहुत फटकारा था। काशी के प्रसिद्ध वैद्य पं० यदुनन्दन उपाध्याय ने वताया था कि एक बार मालवीयजी जब वह बहुत वृद्ध हो गये थे, कहा था कि यद्यपि उन्होंने (मालवीयजी ने) बहुत-से क्षेत्रों मे बहुत-सी सेवाएँ की हैं, किन्तु विधवाओं की कोई सेवा नही कर सके।[16] इसपर उन्होंने पश्चात्ताप व्यक्त किया था।

स्वामी दयानन्द और मालवीयजी

स्वामी दयानन्द ने वेदों को अपौरुषेय माना और मूर्तिपूजा आदि का खण्डन करते हुए विशुद्ध वैदिक धर्म की स्थापना का प्रयास किया। धर्म-परिवर्तन की स्वीकृति देते हुए किसी भी धर्मानुयायी के लिए वैदिक धर्म स्वीकार करने की व्यवस्था दी। उन्होंने शुद्धीकरण का व्यापक अभियान भी चलाया था। मालवीयजी उनकी विचारधारा से प्रभावित थे। उन्होने १९३६ ई० मे पजाब मे होने वाले आर्य समाज के अधिवेशन का सभापतित्व भी किया था।[17] स्वामी दयानन्द द्वारा शुद्धीकरण कार्य के अनुसार-सनातन धर्म की अन्यान्य मान्यताओं को कायम रखते हुए मालवीयजी ने हिन्दू सनातन धर्म के अन्तर्गत शुद्धीकरण का कार्य आरम्भ किया था, जिसका सक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

अस्पृश्यता और महामना मालवीयजी

मालवीयजी छुआ-छूत की भावना के घोर विरोधी थे। अपने भाषणों मे उन्होने अस्पृश्यता का विरोध किया। इस पर लोगों मे से किसी ने कहा—'दूसरो को उपदेश देते हैं, किन्तु स्वयं इसी भावना के है।' उनकी शंका का समाधान तब हुआ, जब मालवीयजी ने मंच पर एक हरिजन व्यक्ति का हाथ पकड़कर कहा—'अब मेरे भाई बिहारीलाल कुछ कहेंगे।' इस सम्बन्ध मे उन्होने स्पष्टरूप से अस्पृश्यता का खण्डन करते हुए कहा था कि 'हरिजनों से स्पर्श हो जाने पर कोई विचार नही किया जाता। हरिजनों को भी उसी ईश्वर ने उत्पन्न किया है, वे सेवा का पवित्र काम करते हैं। अतः उनको इस कार्य प्रणाली के कारण उन्हें हेय दृष्टि से देखना समाज के लिए कलक की बात है।'[18] हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन-भाषण मे मालवीयजी ने स्पष्टरूप से यह बात कही थी—हाथ की पाँचों उँगलियों की भाँति विभिन्न धर्मावलम्वी होते हुए भी हम एक हैं। इस

प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी के विचार समन्वयवादी थे। वह स्पष्ट रूप से इस वर्गीकृत समाज को पारस्परिक सम्बन्धों के माध्यम से समग्र की व्यापक भावना से देखते थे। परन्तु मालवीयजी शुचिता (पवित्रता) को जीवन के लिए आवश्यक धर्म मानते थे। उनका विचार था कि जिस प्रकार गन्दे कपडों को साफ रखने के लिए उन्हें धोना आवश्यक है, उसी प्रकार शरीर को पवित्र रखने के लिए स्नान-ध्यान आवश्यक है। डाक्टर रोगी को देखने के बाद अपना हाथ धो लेता है। इसमे उसकी रोगी से घृणा करने की बात नही मानी जा सकती। स्नान करके घर मे प्रवेश करना, हाथ मुँह धोकर भोजन करना शुचिता के लिए आवश्यक सनातन धर्म है।[20] मालवीयजी स्वयं इस परम्परा के घोर समर्थक थे और वह चाहते थे कि प्रत्येक सनातन धर्मावलम्बी इस परम्परा का पालन करे। वह बाहर से आकर स्नान करके घर में प्रवेश करते थे। इसे वह उसी प्रकार मानते थे, जिस प्रकार किसान खेत में काम करने के बाद स्नान तथा वस्त्र बदल कर अपने घर मे जाता है।[21] उसके इस प्रकार के स्नान मे खेत और खेत के पौधों से उसकी घृणा की भावना नही मानी जा सकती, उसके हृदय मे अपने खेत और खेत के पौधो के प्रति अगाध प्यार भरा रहता है। अतः स्नान और ध्यान आदि को किसी से घृणा या परहेज रखने के अर्थ मे नही लिया जाना चाहिए।

मालवीयजी ने समाज मे अस्पृश्यो की दयनीय स्थिति को देखते हुए उनकी स्थिति में सुधार के लिए निरन्तर प्रयास किया। उन्होने सनातन धर्म महासभा में स्पष्टरूप से निम्नलिखित प्रस्ताव पारित कराया, जिससे उनकी उदार एवं सुधारवादी मनोवृत्ति का सहज बोध होता है—

(क) ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त दीक्षा लेकर शिवमन्त्र से परमात्मा की उपासना के अधिकारी हैं।

(ख) अस्पृश्यता की कोटि में रखी गयी जातियाँ भी सनातनी हैं। अतः इस धर्म के अनुयायी उन जातियों की सहायता करें।

(ग) अस्पृश्य जातियों को भी देव-दर्शन का अधिकार है।

(घ) इन जातियो के लिए देव-दर्शन जहाँ अप्राप्त है, वहाँ मन्दिर के गर्भ-भाग के बाहर से सर्वमान्य मर्यादा के अनुसार देव-दर्शन इनके लिए भी सुलभ किया जाना चाहिए।[22]

मालवीयजी की उपर्युक्त विचारधारा अपनी थी। उस समय समाज में असवर्ण लोगों को हेय दृष्टि से देखा जाता था। पहले हरिजनों को मन्दिर के द्वार पर भी नही जाने दिया जाता था। किन्तु मालवीयजी ने प्रयत्न करके उन्हें मन्दिर मे जाने का अधिकार दिलाया और वे गर्भगृह में न जाकर दूर से दर्शन करने के अधिकारी बने। सवर्णों के विरोध के बावजूद भी मालवीयजी ने उक्त प्रस्ताव

पारित कराया और अन्त्यजों को सवर्णों के समान अधिकार दिलाने की पृष्ठभूमि तैयार की।

उस समय अस्पृश्यों को देवालयों में फटकने नहीं दिया जाता था। मालवीयजी ने इस कट्टरपन्थ से आगे बढ़कर सवर्णों के विरोध के बावजूद भी उनके लिए मन्दिर प्रतिमा के गर्भ गृह के बाहर से देव-दर्शन को सुलभ कराने के लिए उक्त प्रस्ताव पारित कराया। सवर्णों द्वारा उक्त मान्यता प्राप्त हो जाने के बाद उन्होंने हरिजनों के लिए सवर्णों की भांति मन्दिर प्रवेश का अधिकार स्वीकार कर लिया था।[23]

इस प्रकार मालवीयजी की विचारधारा में समाज की रूढ़ियों और संस्कारों के प्रति स्पष्टरूप से गतिशीलता दृष्टिगोचर होती है, परन्तु समाज के संस्कारों और मान्यताओं में वह एकाएक ऐसे बड़े परिवर्तन के पक्षपाती नहीं थे, जिससे एक वर्ग-विशेष के संस्कारों और मान्यताओं को आघात पहुँचे तथा समाज के वर्गों में विद्वेष की भावना बढ़े और वह संघर्ष का रूप ले ले। उस समय सवर्ण लोग इसके लिए तैयार नहीं हो रहे थे, किन्तु मालवीयजी ने सनातन धर्म महासभा में अपने तर्कों के आधार पर इसके लिए सबको तैयार किया। मालवीयजी की विचारधारा स्पष्टरूप से गतिशीलता लिए हुए थी, किन्तु उन्होंने वही कार्य किया जिससे वर्ग-संघर्ष की स्थिति उत्पन्न न हो सके। हिन्दू महासभा के अधिवेशन-भाषण में उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया कि 'समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए नियमों में ढील दी जानी चाहिए।'[24] नियमों में ढील देने की बात उनकी उदार एवं परिवर्तनोन्मुखी, गतिशील विचारधारा की परिचायक है।

मालवीयजी ने हरिजनों का धर्म-परिवर्तन रोकने के लिए एक भाषण में कहा था—'मैं हरिजन बन्धुओं को छोटा नहीं मानता। मैं उनकी चरणरज तक लेने को तैयार हूँ।[25] परम्परागत मूल्यों के अनुसार ब्राह्मण के लिए शूद्रों की चरणरज लेने की बात सर्वथा सामाजिक नियम के विरुद्ध है, किन्तु यहाँ मालवीयजी की उक्त विचारधारा उनके प्रगतिशील सामाजिक विचारों की द्योतक है।

अन्त्यजोद्धार-दीक्षा और मालवीयजी

हरिजन भाइयों को सवर्णों के समीप लाने के लिए महामना मदनमोहन मालवीय ने दीक्षा के महत्व को शास्त्रविहित बताया। उनके अनुसार—'हिन्दू जाति के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक हिन्दू सन्तान को (स्त्री को भी और पुरुष को भी) दीक्षा दी जाय।[26] इस कार्यक्रम में उन्होंने ब्राह्मण से अन्त्यज तक को एक ही मण्डप में दीक्षा दी।[27] कांसे पर रस का प्रयोग करने से वह सोना हो जाता है, वैसे ही दीक्षा लेने से मनुष्य द्विजत्व को प्राप्त करता है।[28] दीक्षा द्वारा उन्होंने समाज के सभी वर्ग के लोगों के पृथक्तावादी और पारस्परिक विद्वेष की भावना को दूर करने के लिए उच्च वर्ग और निम्न वर्ग को

एकीकृत करने के लिए 'दीक्षा' का प्रयोग किया। यह उनका एक प्रयोग था, जो मार्क्स के द्वन्द्ववाद की अपेक्षा अधिक रचनात्मक तथा भारतीय दर्शन 'सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया.' के सिद्धान्त के अनुसार अनेक जाति तथा वर्ग में विभाजित भारतीय समाज के लिए अपने ढंग का एक प्रयोग था। यद्यपि उनके इस प्रयोग से उस समय के सवर्ण लोग प्रसन्न नही थे और कलकत्ते के दीक्षा-मण्डप मे तो सवर्णो ने पथराव किया तथा कीचड भी फेका था, किन्तु दूरदर्शी मालवीयजी को आने वाले युग की परख थी और वे दलित तथा उच्च वर्ग के आपसी धार्मिक स्तरीकरण की सामूहिक भावना को समाप्त करना चाहते थे। यही कारण है कि उन्होने अपने इस प्रयोग के लिए बड़े-बड़े मण्डपो मे दीक्षा का आयोजन किया और स्वत मन्त्र-दीक्षा देने का कार्य किया।

इस दीक्षा कार्यक्रम के विरोध में कलकत्ते के विशाल पण्डाल मे सवर्णो ने उनके इस कार्य का घोर विरोध किया और उनके ऊपर कीचड़ फेका तथा पण्डाल उजाड़ दिया। किन्तु उन्होने हरिजनो को मत्र दीक्षा देने का कार्यक्रम नही छोड़ा और हरिजनों को समाज का अभिन्न अग बताया।[२३]

इस प्रकार मालवीयजी हरिजनों एव पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए सदा प्रयत्नशील रहे। वह हरिजनों को ऊपर उठाने के लिए सदैव लगे रहे। सवर्णों की अस्पृश्य भावना के सम्बन्ध में मालवीयजी ने कहा था—'आप लोग अछूतो से प्रेम-व्यवहार करे। उन्हें भी अपना भाई समझे। छुआ-छूत को दूर करें। उनकी अवस्था को सुधारें। उनकी उन्नति का मार्ग सोचें। मै आप लोगो से उनके साथ भोजन तथा विवाह करने को नही कहता, किन्तु इतना अवश्य चाहता हूँ कि आप उन्हें अपना अग समझें और प्रेम की दृष्टि से देखें।

मालवीयजी का उक्त विचार महात्मा गाधी की विचारधारा से बिलकुल ही मिलता-जुलता है। उनके विचार से हरिजन भी हिन्दू समाज के अभिन्न अंग है। सवर्णों को उन्हें अपना अग समझना चाहिए। खान-पान तथा विवाह के विषय मे उन्होंने कहा कि मै इसके लिए सवर्णों पर दबाव नही डालना चाहता, अपितु यह तो अपनी-अपनी रुचि की बात है, किन्तु अपने ही अग को अपना अग न समझना, नितान्त भ्रामक है, फिर छुआ-छूत की भावना तो समाज के लिए अतीव हानिकारक है।

गाधीजी के विचार भी मालवीयजी से मिलते-जुलते है। अन्तर्जातीय विवाह के सम्बन्ध मे उन्होने उत्तर दिया था कि 'व्यक्तिगत रूप से मैं जाति से बाहर विवाह की सम्मति नही दूँगा, परन्तु साथ ही मैं जातियो के कृत्रिम विभाजन और उनकी सख्या-वृद्धि में जैसा कि भारत में हुआ है विश्वास नही करता हूँ। वर्ण का सच्चा आदर्श इस दोष तथा अस्पृश्यता के दोष दोनो से ही पृथक् या परे है।' इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी और गाधीजी में यहाँ विचार साम्य है।

गांधीजी व्यक्तिगत रूप से अन्तर्जातीय विवाह और खान-पान के समर्थक नही थे। यहाँ खान-पान के विषय मे गाधीजी का विचार स्पष्ट है। गाधीजी ने कहा है कि अन्तर्जातीय भोजन यहाँ तक कि अन्तर्जातीय विवाह हानिप्रद है। गाधीजी ने कहा था—'मै खुद हर किसी के साथ सब कुछ खाने को धर्म न मानता हूँ, न उसे पालता हूँ।'[30]

वर्ण विवाह

गाधीजी के अनुसार—'आत्मा के शीघ्र विकास के लिए अन्तर्जातीय विवाह एवं भोजन पर प्रतिबन्ध आवश्यक है। परन्तु ऐसे प्रतिबन्ध वर्ण-व्यवस्था के लिए अनिवार्य नही है।'[31]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी और गाधीजी मे उक्त विचारधारा मे वैचारिक समता है। दोनों की ही उक्त विचार-समता एक दूसरे की विचार-धारा की पोषक है। वह विवाह के सम्बन्ध में वैवाहिक सकीर्णता की भावना के विरोधी थे। उन्होने कहा था कि वर्णो में विवाह के सम्बन्ध मे जो सकीर्णता आ गयी है, उसको और उदार बनाया जाना चाहिए। उनका विचार समन्वयात्मक था और वह क्रमश' व्यष्टि से समष्टि की ओर बढ़ने वाले थे। अत· उन्होने सर्वप्रथम वर्णगत एकता को कायम करने के लिए एक अधिवेशन बुलाया और सर्वसम्मति से 'सब ब्राह्मण एक' का प्रस्ताव पारित कराया। उन्होने केवल प्रस्ताव ही पारित नही कराया, बल्कि इस सम्बन्ध मे उन्होने कट्टर मालवीय ब्राह्मणों का सम्बन्ध गौडो, सनाढ्यो तथा सारस्वतों आदि में करवाया।[32] धार्मिक दृष्टि से विवाह के जातिगत बन्धन के मालवीयजी विरोधी थे।

उनके अनुसार 'आवागमन की असुविधा, धार्मिक, भौतिक और अनेक प्रकार की सामाजिक आपत्तियों के कारण लोग अपनी ही श्रेणी मे समान आचार-विचार वालो से विवाह सम्बन्ध करने लगे। धीरे-धीरे यही प्रथा समाज में प्रचलित हो गयी। कुछ लोग इसी को धर्म मानने लगे और विभिन्न श्रेणी में विवाह निषिद्ध समझा जाने लगा।'[33]

विवाह के सम्बन्ध मे मालवीयजी अधिक उदार नीति रखते थे। सामाजिक वर्ण-जातिगत स्तरीकरण के प्रसंग में उनमें पारस्परिक एकता के लिए उन्होंने सवर्ण विवाह को स्वीकार किया था। इसके लिए वह प्रान्तीयता की सीमा को बाधक नही मानते थे।

पशुबलि और महामना मालवीयजी

समाज मे कुछ ऐसी बातें प्रचलन मे आ गयी थी, जिनके द्वारा निरर्थक कर्म-काण्ड और अपव्यय हो रहे थे। कर्मकाण्डो मे धर्म के नाम पर यज्ञो मे पशुबलि का प्रचलन भी उनमे से एक था। समाज में वैदिक यज्ञ क्रिया की अक्षुण्ण धारा दीर्घकाल तक चलती रही।

शास्त्रों में उपर्युक्त ज्योतिष्टोमादि वैदिक कर्मों के बड़े-बड़े विधान पाये जाते रहे हैं, जिनमे पशुबलि की भी विधि देखने मे आती है। ऐसे वैदिक यज्ञ कम होगे जिनकी विधि मे पशु-वध का विधान न हो। यहाँ तक कि बहुत-से यज्ञों का नाम तत्तत् पशुवध की प्रधानता को लेकर ही किया गया है। जैसे अश्वमेध, नरमेधादि। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी 'सौत्रामण्यादि' वैदिक याग हैं, जिनमें सुरापानादि का विधान देखा जाता है। इन यज्ञों की विधि मे जो अनेक पशु हिंसा होती है, उसके विषय मे शास्त्रो मे यह भी वर्णन देखा जाता है कि विधाता ने पशुओ को यज्ञ के लिए ही बनाया है। इस कारण देवतोद्देश्यक 'पशुवध' वध नही कहा जाता है।[३१] इतना ही नही, किन्तु श्रुति में यह भी देखा जाता है कि प्रतिवर्ष छ-छ मास मे सोमादि पशु याग करना चाहिए। श्रुतियों में यह भी उल्लेख है कि यज्ञादि तीर्थों के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर प्राणी-हिंसा न करें।.... अतएव वैदिकी हिंसा 'अहिंसा' होती है, यह सिद्धान्त स्थिर होता है। इसलिए उस हिंसा मे पाप भी नही होता। तत्कालीन तत्वज्ञ लोग यज्ञ द्वारा ही सर्वसिद्धि समझते थे। किन्तु समय ने पलटा खाया और उन्हें यह प्रतीत हुआ कि कर्म ही आत्मोन्नति की चरम सीमा नही हैं, इससे भी बढ़कर ज्ञान का स्थान है।........ कर्म तो चित्त शुद्धि का साधन मात्र है। अतः जनकादि कर्मवादियों ने कर्म मार्ग में सुधार किया और यह निष्कामादि नाम से जाना जाने लगा। आगे चलकर नरमेध आदि अनेक कर्म कलियुग में वर्जित कर दिये गये।

समाज मे पहले किये जाने वाले कर्म धीरे-धीरे विकृत होने लगे। हिंसा अधिक मात्रा मे होने लगी। यह देखकर व्यासजी ने महाभारत और पुराणादि ग्रन्थों मे वैदिक कर्मों के साथ तीर्थ, व्रत, पूजा और उपवासादि अनेक विधानों को प्रतिपादित किया तथा यज्ञो के फलो के ही समान इनके फलो को भी बताया। इस प्रकार कर्मों मे सुधार लाने पर भी वैदिक कर्मों के नाम पर लोगों ने अनेक प्रकार की हिंसा का अवलम्बन जारी रखा। यह स्वरूप जैन और बौद्धकाल तक ज्यों का त्यों बना रहा। पुन. बुद्धदेव ने इसके विरुद्ध घोर आन्दोलन किया और संसार को ज्ञान मार्ग का विशेष उपदेश दिया। उनके प्रभाव से उस समय वैदिक कर्मों का लोप-सा हो गया था। पीछे कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य जैसे महात्माओ ने बौद्धों को परास्त कर पुनः वैदिक धर्म की स्थापना की।

उक्त सन्दर्भ मे महामना मालवीयजी ने पशुबलि का वैदिक स्वरूप चित्रित किया है। उनके सम्बन्ध मे 'परिवर्तन' को स्वीकार करते हुए उन्होने कहा था—'कुछ दिनों से पशुबलि के विषय में समाज मे आन्दोलन उठा हुआ है। इसके विरोध मे पं० रामचन्द्र शर्मा ने कलकत्ता में दृढ़तापूर्वक अनशन व्रत किया। तबसे यह प्रश्न विचारणीय हो गया है। इस सम्बन्ध मे मैं प्राचीन यज्ञों के विधानों पर अपना विचार प्रकट नही करूँगा, क्योंकि वे यज्ञ अब नाम मात्र के

ही रह गये है। उनके विधानो को लेकर समाज में कोई आन्दोलन भी उपस्थित नही हुआ है।'[35]

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि मालवीयजी समाज के शान्त स्वरूप को कहीं भी आन्दोलित करने के पक्ष में नही रहे हैं। उपर्युक्त तथ्यों से यह बात स्पष्ट होती है कि वैदिक यज्ञों से सम्बन्धित पशुवलि के प्रसंग और विधि-विधानों को अव्यावहारिक मानते हुए उन्होंने उसमे परिवर्तनोन्मुख विचारो का प्रतिपादन किया है।

पशुवलि का विरोध उन्होने वैदिक परम्पराओ का विरोध करके नही किया, किन्तु उन्होंने शास्त्रों में नवीन तर्को के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि उक्त पशुबलि के विना भी पूजा सम्पन्न की जा सकती है।[36]

महामना मालवीयजी ने लिखा है कि 'पशुवलि सम्बन्धी जितने भी प्रकरण है, उनमे कही भी ऐसा उल्लेख नही है कि पशुवलि अवश्य की जाय और उसके न करने से दोप या पाप होगा। अत. पशुवलि किसी के लिए भी नित्य विधि नही है। कूष्माण्ड, नारियल आदि से भी वलिक्रिया की जा सकती है। ब्राह्मण के लिए तो कालिका पुराणादि मे पशुवलि का सर्वथा प्रतिपेध पाया जाता है।[37]

'युद्धादि स्थलों मे क्षत्रिय के लिए 'हिंसा' धर्म होने पर भी यह आवश्यक नही कि वह देवी के सन्मुख भैंसा या बकरे का वलिदान करें।""""क्षत्रिय के लिए निर्दिष्ट कर्म का रहस्य यह है कि राजा युद्ध की तैयारी के पूर्व विजय कामनार्थ अपने शस्त्रों का पूजन करें।'[38]

यहाँ मालवीयजी ने अपने अहिंसा के विचारों का प्रतिपादन किया है। उन्होंने अपनी वात को और स्पष्ट करते हुए कहा है कि वर्णों के लिए भी पशुवलि का विधान नित्य विधि या आवश्यक कर्त्तव्य नही है।""""समग्र प्रकार से यही निश्चय होता है कि पशुवलि प्रधान कर्म नही है।'

इस प्रकार मालवीयजी स्पष्ट रूप से उक्त प्रसंग मे पशुवलि का विरोध करते हुए देवपूजा के सात्विक अहिंसा पक्ष पर बल देते है। इस सम्बन्ध में मालवीयजी का निम्नलिखित मत उनके उक्त मत को और भी स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होगा। '""हिंसा से युक्त होने पर भी यदि हम पशुवलि करके हिंसा का पाप बढ़ावें तो हमारे लिए एक शोचनीय बात होगी। यदि इस पर भी कुछ शास्त्रज्ञ लोग शास्त्रीय वचनो के आधार पर पशुवलि का विरोध करना उचित नही समझते हो तथा शास्त्रानुसार उसका अनुमोदन करना उचित समझते हों एवं पशुवलि के बिना प्रजा की अपूर्णता समझते हो तो उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि यद्यपि शास्त्र के अनुसार श्राद्ध मे मास के प्रयोग का विधान प्रवलता के साथ देखा जाता है, परन्तु वर्तमान समय मे व्यवहार में श्राद्ध में मास अशुद्ध माना जाता है और श्राद्ध में मास देने की प्रथा कही प्रचलित नही विदित होती।

यदि कलिवर्ज्य रूप किसी आधार से मास के बिना भी श्राद्ध-कर्म सम्पन्न हो सकता है तो उसी प्रकार के आधारान्तर मे पशुवलि के बिना भी नवरात्रादि मे देवीपूजा सर्वथा सम्पन्न हो सकती है।''''''''इस पर भी जो लोग शास्त्र के आधार पर पशुवलि के लिए विशेष आग्रह करना उचित समझते हो तो उन्हें सर्वथा यही उचित है कि भगवती को प्रसन्न करने के लिए उस दिन अवंध, असहाय, मूक, पशुबलि न देकर, अपने रुधिर या सिंह की वलि दें, क्योंकि कालिकादि पुराणों मे वलिद्रव्यो की गणना मे शार्दूल, मनुष्य और अपने शरीर के रुधिर को भी वलि-द्रव्य माना गया है।'[३९]

उक्त शास्त्रोक्त विचारधारा की दुहाई देने वाले दुराग्रही लोगो के सम्बन्ध मे मालवीयजी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि 'वाचस्पति में आये हुए पद्मपुराण के पद्मोत्तर खण्ड मे विस्तार के साथ पार्वतीजी शिवजी से कहती है कि 'जो लोग मेरी (देवी की) पूजा के नाम से प्राणी की हिंसा में तत्पर रहते है, उनकी पूजा अमेध्य अर्थात् अपवित्र और अशुद्ध है। उनके दोष से मनुष्य की अधोगति होती है।''''' पशु को बाँधकर हत्या करके रुधिर का कीचड करने वाला मनुष्य यदि स्वर्ग को चला जाय तो भला बताओ कि फिर नरक मे कौन जायगा ?[४०]

इस प्रकार मालवीयजी ने युग धर्म के अनुसार शास्त्रों मे विहित सभी बातों का अन्धानुकरण करने के बजाय उन पर तर्कयुक्त दृष्टि रखी है और शास्त्रो की उन बातों का खुलकर खण्डन किया है, जिनका समाज और देश के लिए कोई सार्थक महत्व नहीं है। मालवीयजी ने 'विषस्य विषमौषधम्' का सदैव प्रयोग किया है। पशुबलि के लिए शास्त्रो की दुहाई देने वालों के लिए उन्होने शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा उसका खण्डन भी किया है। उन्होंने वेदो, महाभारत तथा पुराणो के अनेक उदाहरण प्रस्तुत करते हुए पशुवलि का खण्डन किया है और शास्त्रों की उक्त परस्पर विरोधी बातों के सम्बन्ध मे अहिंसा और पशुबध न करने को प्रमाणों के आधार पर श्रेष्ठ बताया है।

मालवीयजी में अपने कथनों को व्यक्त करने की विशेष क्षमता थी। कभी-कभी परस्पर विरोधी शास्त्रीय मतो के कारण कतिपय लोग शास्त्रीय तर्कों की ओट लेकर सामने आते रहते है। उपर्युक्त प्रसंग मे भी ऐसा ही दृष्टिगोचर होता है। पशुबलि आराधना के लिए उपयोगी बताने वालों को मालवीयजी ने ऊपर पर्याप्त तर्कों द्वारा उक्त अहिंसा का महत्व स्पष्ट किया है। इस सम्बन्ध में उन्होंने महाभारत के निम्नलिखित भीष्म-युधिष्ठिर सवाद का उल्लेख भी किया है— युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा—'पितामह, आपने अहिंसा का बड़ा महत्व बताया है। भला हिंसा किये बिना पितरो को मास कैसे दिया जा सकता है ? ये बातें मेरी समझ मे नही आ रही है।' उत्तर मे भीष्म पितामह ने कहा—'हे युधिष्ठिर ! मास त्याग और अहिंसा का बड़ा महत्व है। रूप, शान्ति, बल, आयु, ओज,

स्मृति और बुद्धि को चाहने वाले महापुरुषों ने हिंसा को वर्जित किया है। हे युधिष्ठिर, इस सम्बन्ध में ऋषियों मे वडा सवाद चला था उसके अनुसार—उनका मत है कि जो मनुष्य प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता है, वह यदि मद्य, मास छोड दे तो वह मास त्याग उन अश्वमेध यज्ञों के बराबर होता है।'[41]

महामना मालवीयजी जहाँ शास्त्रों के अनुमोदक थे, वही वह समाज को उपयोगी बातों के लिए 'नानापुराण निगमागमसम्मत' अपनी विचारधारा के अनन्य प्रतिपादक भी थे। उपर्युक्त पशुवध के प्रसंग में जहाँ पशुवध का विधान शास्त्र-सम्मत था, वही वह पूजा में अनास्था पैदा करने वाला था। मालवीयजी ने तर्कों द्वारा इस प्रथा का विरोध किया। केवल उनके विरोध करने मात्र से लोग उनके मत का अनुगमन नही करते। अत. उन्होंने शास्त्रों के पशुवध विरोधी मतों के उद्धरण देकर शास्त्रज्ञों द्वारा चलायी गयी पशुवध की परम्परा का खण्डन किया। इससे यह सिद्ध होता है कि मालवीयजी जहाँ परम्परावादी थे वही वह परम्पराओ मे अन्ध विश्वास करते हुए चिपके रहनेवाले नही थे, किन्तु उनमें समयानुसार परिवर्तन करते रहने के पक्षधर थे। जबकि लोग हरिजनों को मन्दिर के द्वार पर भी नही फटकने देते थे, उस समय पहले हरिजनों को मन्दिर में प्रतिमा के गर्भ भाग से दूर रहकर दर्शन कराने की दिशा मे अनुमति दिलाने के लिए प्रयत्न-शील थे—पश्चात् सवर्णों की भाँति हरिजनों के लिए भी देव दर्शन की बात स्वीकार कर लेते हैं। इसी प्रकार विवाह आदि के सम्बन्ध मे भी वह ब्राह्मणो के प्रान्त और भाषागत वर्गीकरण को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।

मालवीयजी समाज की एक ऐसी सुधारवादी विचारधारा के पोषक थे, जो परम्पराओ मे एकाएक परिवर्तन नही करना चाहती थी, किन्तु वह धीरे-धीरे परिवर्तन की पक्षपाती थी। वस्तुत परम्पराओं से हटकर एकाएक कोई भी कार्य समाज में सघर्ष की स्थिति पैदा करने वाला होता है। अत. मालवीयजी इस विचार के थे कि क्रमशः नवीन मूल्यो की स्थापना की जानी चाहिए न कि तत्काल अपनी मूल-भूत विचारधारा के अनुसार समाज प्रति-शोधक परिवर्तन। उनका विचार था कि समाज नदी की धारा की भाँति प्रवाहयुक्त होता है, इसमें कोई भी परिवर्तन क्रमशः धारा की दिशा मे क्रमिक मोड़ देकर किया जा सकता है। परम्पराओं मे कोई भारी परिवर्तन धारा को उलटी दिशा मे प्रवाहित करने की भाँति दुष्कर होता है।[42]

मालवीयजी के मतानुसार—'चाण्डाल जाति के देव-दर्शन और पूजनादि से देव-विग्रह मे वैसा दोष नही होता, जैसा कि कुछ लोग समझते है, किन्तु कर्म-चाण्डाल के दर्शन, स्पर्श और पूजन से प्रतिमा दूषित हो जाती है, वह कर्म चाण्डाल चाहे किसी भी ऊँची जाति का ही क्यों न हो।'[43] इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी के विचार के अनुसार दोष या दूषण की अवधारणा कर्म के आधार पर निर्धारित होती है, न कि जाति के आधार पर।

'काशी खण्ड मे लिखा है कि तुलसीदल से शालिग्राम की पूजा करने वाला ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज आदि चाहे कोई भी हो वह देवताओ के यहाँ पारिजात की माला से पूजा जाता है।'[४४] इस प्रकार मालवीयजी ने उपर्युक्त उद्धरण द्वारा द्विजातियो के समान शूद्रो को भी देव पूजन सद्य स्वीकार किया है। परन्तु उन्होने जहाँ कही भी इसके सम्बन्ध में इससे विपरीत मत व्यक्त किया है, उससे स्पष्ट होता है कि वह सवर्णो को असन्तुष्ट करके वर्ण संघर्ष का बीजारोपण करके, असवर्णों को देव दर्शन कराना नही चाहते थे। उनके मतानुसार—यदि बलपूर्वक एक पारम्परिक सस्कारी (सवर्ण) को इससे कष्ट होता है तो यथार्थ देव-दर्शन का लाभ नही मिल सकता। अत सवर्णों को सन्तुष्ट करके ही असवर्णों का देव दर्शन और मन्दिर प्रवेश अधिक उपयुक्त होगा। इसके लिए उन्होने अन्त्यजों को अधिकार दिलाने का क्रमश प्रयास किया था।

अन्त्यज शिक्षाधिकार और मालवीयजी

उस समय सवर्ण लोग अछूतों की शिक्षा के विरोधी थे। यह बात मालवीयजी के निम्नलिखित विचारो से स्पष्ट होती है—'…… ……शिक्षा का अधिकार अन्त्यज भाइयो को पूर्णतया प्राप्त है। दुःख है कि अभी तक इस बात का विशेष प्रबन्ध नही हो सका है। समाज मे धर्म की विपरीत भावना ने ऐसा कुप्रभाव जमा रखा है कि कुछ लोगो ने इन भाइयो के स्कूल मे पढने का विरोध किया है।……… धार्मिक भावना को लेकर जिनकी यह धारणा है कि अन्त्यजादि जाति का पढना उचित नही है, उनको शास्त्रीय सिद्धान्तों का स्मरण करा देना उपकारी होगा।'[४५] इस प्रकार हम देखते है कि उस काल के समाज मे अन्त्यजो के पठन-पाठन का भी विरोध था, परन्तु मालवीयजी ने इस मत का विरोध किया और धर्म के कट्टरपन्थियो को निम्नलिखित शास्त्र वचनों का स्मरण कराया—'विद्यादान से बढकर परम दान न तो हुआ है और न होगा।…… इस कारण धार्मिक द्विज पण्डितो को उचित है कि वे सदा विद्यादान दें।'[४६] इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होने कहा था—'विद्या कुल की, जाति की, रूप की और पुरुष-सम्बन्धी पात्रता की परवाह नही करती है, किन्तु जो कोई भी पढे विद्या उसका उपकार ही करती है।[४७]

अन्त्यजों को उक्त अध्ययन-सम्बन्धी अधिकार दिलाने के लिए उन्होने स्पष्ट रूप से कहा था—'अन्त्यजो के सम्बन्ध मे उदारता के साथ शुद्ध हृदय से मनन करने की आवश्यकता है कि 'सर्वभूतहितेरता·' ऋषियो का अभिप्राय सदा उदार और सर्व उपकारी रहा है। उन्होंने सब जातियो की भलाई और सब समय के लिए उपयोगी विधान अपने अक्षय धर्मग्रंथो मे रख दिये हैं। उस पर भगवान् व्यास ने जितना हो सकता था उतना अगाध धार्मिक साहित्य हमारे लिए रख छोडा है। आज हिन्दू जाति जीवित है तो व्यासजी की दी हुई धार्मिक अमृत संजीवनी बूटी से। आगे भी यदि हमें जीवित रहना है तो व्यासजी के ही वचना-

मृत पीकर जीवित रह सकते हैं। उसके सिवा और कोई प्रबल शरण नहीं है। व्यासजी की दृष्टि में जैसे द्विजाति थे, उससे भी बढ़कर असमर्थ दीन अन्त्यजादि शूद्र भाई थे। व्यासजी को सम्भवतः इनसे भी अधिक अन्त्यज भाइयों की चिन्ता थी। यही कारण है कि उन्होंने तीर्थ माहात्म्य और देवदर्शनादि कार्यों में किसी-न-किसी प्रकार अन्त्यज भाइयों को सम्मिलित कर रखा है।'[48]

निष्कर्ष

मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करते थे। शास्त्रों में राजतन्त्र और उसके प्रति निष्ठावान् रहना धर्म बताया गया है, परन्तु मालवीयजी राजतंत्र के स्थान पर प्रजातंत्र और राजभक्ति के स्थान पर देशभक्ति को महत्व देते थे।

मालवीयजी की नारी हिन्दी कवि जयशंकर प्रसाद की नारी की भाँति श्रद्धा मात्र नहीं है, अपितु वह पाश्चात्य नारी की भाँति बन्दूक और पिस्तौलधारी है। वह दया, पर्दा और पुरुषों के हाथ की खिलौना नहीं है, किन्तु वह स्वावलम्बी अंग्रेज महिलाओं की भाँति आत्म-निर्भर है। मालवीयजी उक्त कठोरता और स्वावलम्बन के क्षेत्र में पाश्चात्य नारी को आदर्श रूप में सामने लाते हैं, परन्तु वह शील, सकोच, ज्ञान तथा धर्म के क्षेत्र में सीता, सावित्री तथा मैत्रेयी के रूप में नारी का दर्शन करते हैं। अतः यहाँ उनके विचारों में पाश्चात्य और भारतीय वैचारिक समता के साथ ही उनका समन्वयवादी रूप दृष्टिगोचर होता है।

बाल-विवाह, दहेज प्रथा आदि के मालवीयजी विरोधी हैं, परन्तु संसद में बाल विवाह-निवारण विधेयक प्रस्तुत किये जाने पर वह उसका विरोध करते हैं और यह कहते हैं कि कानून द्वारा निषेध लगाने पर हिन्दू धर्मावलम्बियों की भावना को ठेस लगेगी। अतः इसके लिए जनमत तैयार किया जाना चाहिए। यहाँ हम पाते हैं कि मालवीयजी विवाह आदि सास्कारिक बातों पर राज्य या कानून का हस्तक्षेप अनुचित और प्रभावहीन मानते थे। विधवा-विवाह की बात भी मालवीयजी को स्वीकार थी, किन्तु वह चाहते थे कि इसमें विधवा की राय लेकर ही कार्य किया जाना चाहिए। वह विधवा को अशुभ नहीं मानते थे। उन्हें दुःख था कि वे विधवाओं के लिए कुछ नहीं कर सके।

कर्मकाण्डों में पशुबलि का प्रचलन बढ़ गया था। मालवीयजी कुछ शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इस व्यवस्था के प्रतिपादकों की बातों से सहमत नहीं थे। वह इस कार्य को लौकिक दृष्टि से अतार्किक मानते थे और इसका कोई औचित्य नहीं समझते थे। अतः उन्होंने इसका विरोध किया और पण्डितों द्वारा तर्क प्रस्तुत किये जाने पर कहा है कि इसका प्रचलन और व्यवस्था है, परन्तु इसका महत्व नहीं है। उन्होंने कहा कि पशुबलि आवश्यक नहीं है और इसे न करने पर

नही लगता। इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी शास्त्रो की बातो का अन्धानुकरण करने की अपेक्षा युग के अनुरूप व्यवस्था प्रस्तुत करके,उसका लौकिक हिताहित के आधार पर व्यवहार अधिक उपयुक्त मानते थे। पशुवलि के सम्बन्ध मे भी उनके यही विचार उल्लेखनीय हैं।

अस्पृश्यता को मालवीयजी हिन्दू समाज के लिए कलंक मानते थे और इसे दूर करने के लिए उन्होंने सार्वजनिक सम्मेलनो में प्रतिज्ञा करायी थी। इसी प्रकार देव दर्शन और मन्दिर प्रवेश की दिशा मे लगा प्रतिबन्ध भी मालवीयजी अनुचित मानते थे, परन्तु इस प्रश्न को वह विवाद का विषय न बनाकर सार्वजनिक सभाओ मे जनमत तैयार करने के क्षेत्र मे कार्य करते थे। उस युग के समाज मे मालवीयजी की ये बातें द्विजातियों की सामान्य धारणा के विपरीत थी। सवर्ण लोग शिक्षा-दीक्षा पर अपना एकाधिकार समझते थे और इस अधिकार में अन्त्यजो को बराबरी का स्थान देना पसन्द नही करते थे। इस सम्बन्ध में बात करने वालो को समाज का प्रबुद्ध वर्ग हेय और घृणित दृष्टि से देखता था। ऐसे समय में शास्त्रो का मन्थन करके उक्त तर्कसम्मत बात रखकर मालवीयजी ने भारत के अनेक जात-पाँत मे वर्गीकृत हिन्दू समाज के दलितवर्ग के उत्थान के लिए शास्त्रीय प्रमाण के आधार पर अन्त्यजो को उनका अधिकार दिलाने का अथक प्रयास किया। शास्त्रीय प्रमाण रखने के मूल मे मालवीयजी की स्वयं की व्यक्तिगत धार्मिकता का भी बोध होता है, किन्तु रूढ़िगत परम्पराओ के दोष का निवारण करने के लिए वह धर्मशास्त्रो की दुहाई देने वाले सवर्णो पर उन्ही के आधारस्तम्भ शास्त्रो के तर्कों द्वारा युग धर्म की बात करते है, जिससे प्रबुद्ध वर्ग अन्त्यजो का अपहृत अधिकार स्वेच्छया उन्हें दे दे और आपसी सौहार्द कायम रहे। इस प्रकार के कार्यों द्वारा सस्कारो की डोर बँधे हुए मालवीयजी को स्वतः भी आत्मतुष्टि होती थी। अत. शास्त्रो से प्रभावित मालवीयजी जहाँ शास्त्रो के वचनों से आबद्ध हैं, वही वह शास्त्रो मे सुधारवादी युगप्रवर्तक तत्वो का अन्वेषण करके अपने स्वतत्र परिवर्तनवादी व्यक्तित्व का भी परिचय देते हैं।

—: ० :—

सन्दर्भ

1. Social Change in Modern India, Op. cit. p. 81.
2. 'अभ्युदय' २५ जनवरी, १९०९ ई०।
3. ३१ दिसम्बर १९२२ ई० को भारतीय कांग्रेस महासभा के पण्डाल में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में भाषण।

4. मनुस्मृति, अध्याय ९, श्लोक ९६।
5. मनुस्मृति, अध्याय ९, श्लोक १०१।
6. सीताराम चतुर्वेदी : महामना प० मदनमोहन मालवीय(पूर्व उद्धृत),पृ० १०५
7. वही, पृ० १०५।
8. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ६७।
9. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत), पृ० १८५
10. मनुस्मृति, ९-९४।
11. ३१ दिसम्बर १९२२ई०, भारतीय राष्ट्रीय महासभा के मण्डप में हिन्दू महासभा के अधिवेशन में भाषण ' महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १८५।
12. वही, पृ० १८५।
13. वही, पृ० १५५।
14. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ० २४५।–(महामना मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ३१६।
15. *L.S.S. O'malley (ed.) Op. cit. p. 67.*
16. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत),पृ० ३१६
17. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूव उद्धृत), पृ० ६४।
18. प्रयाग माघ कृष्ण ३०, सं० १९८०, हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन में भाषण।
19. एस० सोमस्कन्दन उप-कुलसचिव, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी से साक्षात्कार द्वारा।
20. वही।
21. वही।
22. २६ जनवरी १९२६ ई० सनातन धर्म महासभा मे भाषण—(महामना प० मदनमोहन मालवीय, पृ० ६२)।
23. वही, पृ० ६२-६३।
24. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १११।
25. वही, पृ० १००।
26. मालवीयजी के लेख और भाषण, पृ० २१०।
27. वही, पृ० २१०।
28. यथा काचनता याति कास्यां रसविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्वं जायते नृणाम्॥
वैष्णव तंत्र—(महामना मालवीयजी के लेख और भाषण, पृ० २११)।
29. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ८४-८५।

30. वर्ण व्यवस्था लेखक, महात्मा गांधी, अनु० रामनारायन चौधरी, प्रकाशक : नव भवन, नवीन प्रकाशन, अहमदाबाद (१९४८), पृ० १५ तथा ६४।
31. ,, ,, ,, ,,
32. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ, (पूर्व उद्धृत), पृ० २०९।
33. मालवीयजी के लेख और भाषण (धार्मिक) (पूर्व उद्धृत), पृ० २८७।
34. महामना मालवीयजी के विचारों का संग्रह 'सनातनधर्म' साप्ताहिक मुख पत्र, वर्ष ३, अंक १३, दिनांक २० अक्टूबर, १९३५ ई०।
35. मालवीयजी के लेख तथा भाषण (पूर्व उद्धृत), पृ० ३०४।
36. वही, पृ० ३०५।
37. वही, पृ० ३०६।
38. मालवीयजी के लेख और भाषण (भाग १), (पूर्व उद्धृत) पृ० ३०६।
39. वही, पृ० ३०९।
40. वही, पृ० ३११।
41. वही, पृ० ३११, ३१२, ३१३।
42. महामना द्वारा स्थापित लिटरेरी इंस्टीच्यूट में भाषण।
43. मालवीयजी के लेख और भाषण (पूर्व उद्धृत) पृ० २८२।
44. शालिग्राम शिला येन पूजिता तुलसीदलैः, स पारिजातमालाभिः पूज्यते सुरसद्मनि। अंक १८, श्लोक ६२-६३।
45. मालवीयजी के लेख और भाषण (पूर्व उद्धृत), पृ० २८२।
46. विद्यादानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति।
येन दत्तेन चाप्नोति शिवं परमकारणम्॥
विद्याच श्रूयते लोके सर्वधर्मप्रदायिका।
तस्माद्विद्या सदा देया पण्डितैर्धार्मिकैर्द्विजैः॥
पद्मपुराण, पद्मोत्तर सं० ११७ (मालवीयजी के लेख और भाषण)—(पूर्व उद्धृत), पृ० २८६।
47. न हि विद्या कुलं जातिरूप पौरुषपावताम्।
वशते सर्वलोकानां पठिता उपकारिका॥ देवी पुराण॥
—(मालवीयजी के लेख और भाषण), (पूर्व उद्धृत), पृ० २८४।
48. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० २८५।

—:०:—

अध्याय—६

मालवीयजी के धर्म तथा समाज सम्बन्धी विचार एवं कार्य

समाज में धर्म का अपना व्यापक महत्व है। धर्म सामाजिक नियन्त्रण के अभिकरणों में अपनी प्रमुख भूमिका रखता है। प्राय सभी समाजों में किसी-न-किसी रूप में धर्म अवश्य पाया जाता है। मालवीयजी की धर्म-सम्बन्धी अपनी विशिष्ट विचारधारा थी। उनका सामाजिक और राजनीतिक नेतृत्व उनकी धार्मिक विचारधारा से विशेष रूप से प्रभावित था। उनकी धार्मिक भावना से ईसाई, मुसलमान आदि सभी प्रभावित थे। उस जमाने में जहाँ कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनकी प्रशसा में खण्ड काव्य लिखा था, मुसलमान कवियों ने भी उनकी प्रशसा की थी। हिन्दू धर्मावलम्बी उनको अपने धर्म का मूल स्तम्भ मानते थे। उस युग में धार्मिक विवादों के समय मालवीयजी की धार्मिक व्याख्या सभी वर्ग के लोगों ने सहर्ष स्वीकार की थी। सक्षेप में यहाँ सर्वप्रथम हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि धर्म क्या है। पुन. मालवीयजी के विचारों के प्रसग में उसका सामाजिक अध्ययन करेंगे। वस्तुतः धर्म का अभिप्राय किसी ईश्वरीय मत से नहीं है, अपितु इसका तात्पर्य जीवन की एक प्रविधि अथवा आचरण की एक सहिता (code) अथवा परम्परा से है, जो कि स्वय व्यक्ति के रूप में तथा समाज के सदस्य के रूप में एक व्यक्ति के कार्यों को नियमित या नियन्त्रित करती है। इसका उद्देश्य व्यक्ति में क्रमबद्ध विकास करना तथा उसे इस योग्य बनाना है कि वह मानवीय जीवन या अस्तित्व के अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच सके। धर्म शब्द अंग्रेजी के रिलीजन (Religion) शब्द से कहीं अधिक व्यापक है। धर्मशास्त्रों के अनुसार—धर्म प्रजा को धारण करता है।[1] इसमें धर्म के समाजशास्त्र का व्यापक अर्थ निहित है। आज विश्व के सभी राष्ट्र, समूह या सम्प्रदाय विभिन्न धार्मिक, राष्ट्रीय, साम्प्रदायिक आदि समूहों में विभक्त हैं। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में धर्म को शाश्वत सत्य माना है। वैशेषिक दर्शन[2] के अनुसार–धर्म के दो उद्देश्य प्रमुख हैं–(क) अभ्युदय तथा (ख) नि श्रेयस की सिद्धि। अभ्युदय का अर्थ है लौकिक सुख, समृद्धि तथा सम्पन्नता में वृद्धि करने वाला धार्मिक तत्व। नि श्रेयस का तात्पर्य पारलौकिक सफलता या मुक्ति प्राप्ति है। इसका सम्बन्ध पुनर्जन्म से लगाया जाता है।

मालवीयजी ने धर्म की कोई अपनी शाब्दिक परिभाषा नहीं दी है, किन्तु उन्होंने धर्म की शास्त्रीय व्याख्या और अर्थ को ही तार्किक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। मालवीयजी धर्म के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक बल देते हैं।

मालवीयजी के अनुसार—'धर्म ही सारे जगत् की प्रतिष्ठा (मूलाधार) है। ससार में प्रजा लोग धर्मशील पुरुष के पास पहुँचते हैं। धर्म से पाप को दूर करते हैं। धर्म मे सब प्रतिष्ठित हैं, अर्थात् धर्म के मूलाधार पर सब स्थित हैं, इसलिए धर्म को सबसे बड़ा कहते हैं।'' ''''सबसे बड़ा उपकार जो किसी प्राणी का कोई कर सकता है, वह यह है कि उसको धर्म का ज्ञान करा दे। धर्म मे उसकी श्रद्धा उत्पन्न कर दे अथवा आस्था दृढ कर दे। ससार में धर्मदान के समान दूसरा कोई दान नहीं है।'[3]

यहाँ हम देखते हैं कि मालवीयजी धर्म को समाज का मूल मानते हैं। वह ससार की स्थिति धर्म पर आधारित बताते हैं। यदि प्राणिमात्र में धर्म का यथार्थ बोध हो जाय तो मानव की पशुता समाप्त हो जाय और पारस्परिक द्वन्द्व की स्थिति भी समाप्त हो जाय। अतः संसार मे सामाजिक सम्बन्धों की निरन्तरता और समन्वय हेतु मालवीयजी धर्म को आवश्यक मानते हैं। अपने विचारों की पुष्टि हेतु महाभारत[4] का उद्धरण देते हुए उन्होंने कहा था कि 'दान, प्राणिमात्र पर दया, ब्रह्मचर्य और इन्द्रियों को वश मे रखना तथा सत्य का पालन करना, प्राणियों के दु:ख मे सहानुभूति, धीरज और क्षमा ये सनातन धर्म के 'मूल' हैं।'[5]

मालवीयजी के धर्म का मन्तव्य किसी सम्प्रदाय विशेष के धर्म से नहीं है, अपितु सनातन अर्थात् शाश्वत शब्द का बोधक है, जो ससार के सभी प्राणियों के लिए अनुकरणीय है। उन्होंने वेद वाक्य 'सत्य वद' अर्थात् सत्य बोलना चाहिए—का उद्धरण देते हुए बताया है कि संसार मे इस ध्रुव सत्य का कौन खण्डन कर सकता है। ऐसा कौन-सा धर्म है, जो सत्य बोलने की बात को न माने। सभी लोग इसको मानते हैं और सभी सत्पथ वाले धर्मावलम्बी इसका अनुकरण करते हैं। मालवीयजी के अनुसार—सभी धर्म उपर्युक्त धर्म की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। विश्व का कोई भी धर्मावलम्बी जब उक्त सत्य के परे, रागद्वेष से प्रेरित होकर ससार के विविध धर्मों मे भेद करता है और परस्पर द्वेष करता है तो ऐसी स्थिति मे वह धर्म को मूल धारणा से टूट जाता है और धर्म से परे पशुता को ओर पहुँचकर, साम्प्रदायिक तनाव का बोध करता है। धर्म का अर्थ विश्व धर्म के अर्थ का बोधक है न कि किसी सम्प्रदाय का सोमित अर्थ व्यक्त करने वाला। अतः हम पाते हैं कि मालवीयजी की धर्म की अवधारणा व्यष्टि से परे समष्टिवादी है। उनका धर्म से अभिप्राय मानवतावाद है जो परम्परागत अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के आधार पर विभक्त मानव समाज की पृथक्ता के विपरीत उनकी समन्वयवादी प्रकृति का परिचायक है।

महामना मालवीयजी का उक्त मत स्वामी विवेकानन्द के मत से मिलता-जुलता है। स्वामी विवेकानन्द ने सनातन धर्म को स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'अन्य धर्मों के समान हिन्दू धर्म भिन्न-भिन्न प्रकार के मत-मतान्तरो पर आधारित विश्वास से सम्बन्धित नही है, अपितु हिन्दू धर्म प्रत्यक्ष अनुभूति अथवा साक्षात्कार का धर्म है। हिन्दू धर्म मे आध्यात्मिकता का एकजातीय भाव निहित है। यह अनुभूति की वस्तु है, अपने द्वारा कही गयी मनमानी बात, मतवाद, युक्तिमूलक कल्पना नही है—चाहे वह कितनी ही सुन्दर क्यो न हो, आत्मा को ब्रह्म के रूप में समझ लेना, उसमे लयलीन हो जाना और उसका साक्षात्कार करना यही धम है। धर्म केवल सुन लेने अथवा मान लेने की वस्तु नही है, अपितु जब समस्त मन-प्राण विश्वास के साथ हो जाय, तब इसी को हम 'धर्म' कहते है।········ नि.स्वार्थता और कर्तव्यपरायणता ही धर्म की कसौटी है, जो जितना अधिक नि स्वार्थ और कर्तव्यपरायण है, वह उतना ही अधिक आध्यात्मिक और शिव के समीप है।'[6]

उपर्युक्त विश्लेषण मे स्वामी विवेकानन्द ने धर्म के जिस स्वरूप का दर्शन कराया है, वह भारतीय सामाजिक विचारधारा के मूल से सम्बन्धित है, जिसका सभी विचारको ने समर्थन किया है। किंग्स्ले डेविस के अनुसार—'धर्म मानव समाज का एक ऐसा व्यापक, स्थायी एवं शाश्वत तत्व है, जिसको सम्यक् रूप से समझे बिना हम समाज के स्वरूप को नही समझ सकते।'[7] वस्तुत धर्म शब्द से धर्म-शास्त्रकारों का अभिप्राय किसी ईश्वरीय मत या सम्प्रदाय से न होकर, जीवन की एक ऐसी विधि अथवा आचरण की एक ऐसी सहिता से है, जो एक व्यक्ति के रूप मे तथा समाज का सदस्य होने के रूप मे व्यक्ति की क्रियाओ को नियमित करती है तथा जिसका उद्देश्य व्यक्तित्व का क्रमबद्ध विकास करना तथा उसे इस योग्य बनाना है कि वह मानव अस्तित्व के लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार—'धर्म शब्द अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। यह 'धृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ बनाये रखना, धारण करना, पुष्ट करना है। यही वह मानदण्ड है, जो विश्व को धारण करता है, किसी भी वस्तु का वह मूल तत्व है, जिसके कारण वह वस्तु 'वह' है। धर्म का मूल सिद्धान्त मानवीय आत्मा के गौरव को प्राप्त करना है, जो भगवान् का निवासस्थान है। सब धर्मों का सर्व स्वीकृत मूल सिद्धान्त यह ज्ञान ही है कि परमात्मा प्रत्येक जीवित प्राणी के हृदय में निवास करता है। हिन्दू धर्म हमारे सम्मुख नियमो का कार्यक्रम प्रस्तुत करता है और यह अनुमति देता है कि उनमें निरन्तर परिवर्तन किया जा सकता है।'[8]

डॉ० राधाकृष्णन् ने आगे कहा है कि 'सनातन धर्म को मानने का अर्थ स्थिर खड़ा हो जाना नहीं है, अपितु इसका अर्थ है, उसके अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को ग्रहण कर लिया जाय और उसका आधुनिक जीवन मे प्रयोग किया जाय।'[9]

डॉ० राधाकृष्णन् ने परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य को हिन्दू धर्म का 'मूल' माना है। मालवीयजी ने भी स्पष्ट शब्दों में कहा था कि 'विश्व में भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदाय है, सबके उच्च और शुभ नियम मानवमात्र को मान्य हैं। वे चाहे हमारे देश के हों या अन्य देशों के।'[10] डेविस की भाँति मालवीयजी भी समाज के स्वरूप के स्थायित्व के लिए धर्म को आवश्यक मानते थे। उन्होंने इस सम्बन्ध में स्पष्ट रूप से कहा था कि—'समाज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए नियमों में ढील दी जानी चाहिए।'[11] इस प्रकार उनके विचारों से समाज के वर्तमान का महत्व देश, काल और संस्कृति के परिवर्तन की ओर उन्मुख होना है। डॉ० राधाकृष्णन् ने ऊपर इसी बात को स्पष्ट किया है कि परिवर्तनशीलता हिन्दू धर्म की अपनी विशेषता है।

हिन्दू धर्म भेद-भाव से दूर है। मालवीयजी[12] ने गीता का उदाहरण देते हुए कहा था कि 'मैं (ईश्वर) प्राणिमात्र में एक समान हूँ।'[13] प्राणियों में ईश्वर भी भेद भाव नहीं करता। अतः मनुष्य द्वारा भेद-भाव, राग-द्वेष 'सत्य' से परे विकार की उपज है। विश्व धर्म की समष्टि के दृष्टिकोण के सन्दर्भ में मालवीयजी[14] सामाजिक नियंत्रण के लिए धर्म की आवश्यकता पर विशेष बल देते हैं, परन्तु धार्मिक भेद-भाव उनके विचार से कदापि उचित नहीं हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने महाभारत का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा था कि 'धर्म का स्वरूप और भेद सुनकर, इसके अनुसार आचरण करो। जो अपने को प्रतिकूल जान पड़े, जिस बात में अपने को पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो।'[15]

महामना मालवीय[16] के अनुसार—'राग से, क्रोध से या द्वेष से या धन के कारण या हेतुवाद के वश या लालच से किसी भी धर्मावलम्बी को अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ना चाहिए।'[17] उन्होंने सत्य और धर्म को परस्पर सम्बद्ध माना है। उनके अनुसार जहाँ सत्य है, वहाँ धर्म है।[18]

मालवीयजी ने धर्म शब्द को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'धर्म के दीपक दो प्रकार के होते हैं—एक तो बड़ों के वचनों का उपदेश और दूसरा—बड़ों के आचरण का उपदेश। आचरण का उपदेश वचनों के उपदेश से भी अधिक प्रभावशाली होता है।'[19] यहाँ धर्म के मूल में उन्होंने बड़ों के आदेश पालन को भी धर्म माना है। बड़ों के वचनों के उपदेश की अपेक्षा आचरण का अनुकरण श्रेष्ठ होता है। यहाँ आचरण से महान् लोगों के कार्यों और जीवनवृत्त का अर्थ लिया गया है। महान् लोगों के चरित्र नवीन आदर्शों की स्थापना में सहायक होते हैं। महान् लोग अपने आचरण द्वारा प्राचीनता में नवीनता का सूत्रपात्र करते हैं। अतः यहाँ मालवीयजी ने आचरण (रोल) पर अधिक बल दिया है। वह स्वयं भी वचनों की अपेक्षा कार्यों पर अधिक बल देते हैं। अतः इन्हीं विचारों के आधार पर हम मालवीयजी को कार्योन्मुख पाते हैं। उनका विचार था कि

व्यक्ति का जीवन भूमिका (role) प्रधान होना चाहिए, न कि उपदेशमूलक। उनके अनुसार—राम इसलिए सर्वव्याप्त और अनुकरणीय हैं कि उनका सम्पूर्ण जीवन और तत्सम्बन्धी उनकी भूमिकाएँ एक आदर्श हैं। इस प्रकार व्यक्ति को अपने आचरणों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि वैयक्तिक स्तर पर आचरण सुसंस्कृत हो जाय तो धार्मिक लक्ष्योन्मुखी मानवीय भूमिकाएँ समाज के स्वरूप को 'सत् रूप' में स्थानान्तरित करने में सफल हो सकती हैं। मालवीयजी के धर्म के मूल में उनकी यही रहस्यमूलक धारणा समाहित थी।

उनके धर्म सम्बन्धी विचार समग्रवादी हैं। उन्होंने कहा था—'घर में हमारा ब्राह्मण धर्म है, परिवार में सनातन धर्म, समाज में हिन्दू धर्म, देश में स्वराज्य (कांग्रेस) धर्म, तथा विश्व में मानव धर्म।'[20] मालवीयजी की उक्त विचारधारा पूर्णरूपेण समन्वयवादी हैं। यहाँ उन्होंने व्यक्ति की घर-परिवार की वैयक्तिक भूमिका के विकास-क्रम में क्रमशः सम्पूर्ण विश्व में विराट् समग्रवादी मानव धर्म की भूमिका पर बल दिया है। उनके विचार अगस्त कोंत के विचार से मिलते-जुलते हैं। कोंत के अनुसार—'हमें किसी धर्म विशेष का नहीं महामानव का पुजारी बनना चाहिए। प्रत्यक्ष ज्ञान-प्राप्ति ही मानव धर्म है। सामाजिक जीवन को समझने के लिए, सामाजिक जीवन को विकसित करने वाले माध्यम और प्राणियों के जीवन को समझे बिना सामाजिक जीवन को समझा नहीं जा सकता।.........'[21] धर्म पूर्ण एकता की दशा व्यक्त करता है, जो व्यक्ति तथा समाज के सदस्यों के रूप में मानव का विशिष्ट लक्षण है। जब मानव प्रकृति के सभी नैतिक तथा भौतिक निर्माणात्मक तत्व स्वभावतः एक सामान्य लक्ष्य की ओर अभिमुख किये जाते हैं। वस्तुतः मानव-जीवन संस्कारों का पुंज मात्र है। यह विचार मालवीयजी तथा कोंत के विचारों में एकता और समन्वयवादी दृष्टिकोण व्यक्त करता है। कोंत के उपर्युक्त उदाहरण में 'धर्म में व्यक्ति तथा समाज के सदस्यों के रूप में मानव का विशिष्ट लक्षण निहित है।' मालवीयजी ने घर में अपना धर्म ब्राह्मण धर्म, परिवार में सनातन धर्म और विश्व में मानव धर्म बताया है, जो कोंत के व्यक्ति तथा समाज के सदस्यों के स्वरूप के कथन की भाँति मानवीय भूमिका की अधिक तार्किक अभिव्यक्ति है। विश्व के समष्टि में मालवीयजी व्यष्टि को समन्वित कर देते हैं। ऐसे स्थल पर मालवीयजी ने 'भाव धर्म' के विराट् में 'लोक' के साथ अपने व्यक्ति को समन्वित किया है। भारतीय दर्शन-शास्त्र की विचारधारा के अद्वैतवाद के मतानुसार-व्यष्टि समष्टि में समाहित हो जाता है।[22] मानवीय चिन्तन की समग्रता महामना मालवीय की विचारधारा का मूल स्रोत है।

मालवीयजी शास्त्रों के जानकार और मानने वाले थे। उनके विचार से शास्त्रों की आज्ञा मानना मानव धर्म है, किन्तु उनका विचार अतीव सुधारवादी

था। वह शास्त्रों के रूढ़िवादी तार्किक नियमों में संशोधन के पक्षपाती थे। उनके जीवन के ऐसे अनेक उदाहरण हैं, जहाँ वह देश-काल के अनुसार विचारों में परिवर्तन करने के पक्षपाती थे। उदाहरणार्थ—सूत्रकार मनु ने लिखा है कि कन्या का विवाह रजोदर्शन के पूर्व करना चाहिए। हिरण्यकेशी[23], गोभिल[24], गृह्य-सूत्रों[25] के अनुसार भी रजस्वला होने के पहले कन्या का विवाह कर देना चाहिए। गौतम धर्म सूत्र के अनुसार तो वस्त्र धारण करने की अवस्था के पूर्व ही कन्या का विवाह कर देना चाहिए। उक्त शास्त्रीय विचारधारा को मालवीयजी ने अस्वीकार करते हुए कहा था—'आठ-दस वर्ष की अवस्था में कन्याओं का विवाह करने से तो रजोदर्शन के बाद विवाह करना ही श्रेष्ठ है। इसके लिए यदि हमें नरक में भी जाना पड़े तो कोई आपत्ति नहीं, पर बाल-विवाह करना स्वीकार नहीं है।'[26]

मालवीयजी ने कृष्ण का उदाहरण देते हुए कहा था कि श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'उत्साहपूर्वक कर्तव्य पालन करना, सामर्थ्य भर अन्याय और अत्याचार से संग्राम करना, न्याय, सत्य, दया एवं धर्म का सर्वथा सर्वभावेन समर्थन करना हमारा धर्म है।'[27]

उपर्युक्त सन्दर्भ में मालवीयजी और भगवान् कृष्ण का धर्म मानव-समाज के नियंत्रण के आवश्यक पक्ष के रूप में सामने आता है। विधि जिन कार्यों और मानवीय आचरणों पर नियंत्रण स्थापित करने में सफल नहीं होती वहाँ धर्म नियंत्रण के मूल रूप में निहित होने के कारण सफल होता है। अतः धर्म के प्रति निष्ठा उत्पन्न करके सामाजिक नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। सामाजिक टायलर[28] तथा स्पेंसर[29] के मतानुसार—'आत्म-सम्बन्धी विचार धर्म का केन्द्र बिन्दु है।' धर्म क्रिया की एक विधि है और साथ ही विश्वासों की एक व्यवस्था भी, धर्म एक समाजशास्त्रीय तत्व के साथ ही एक व्यक्तिगत अनुभव भी है। उक्त विचारधारा में धर्म की परिभाषा के तीन आवश्यक तत्त्व सामने आते हैं—(१) क्रिया विधि, (२) विश्वासों की व्यवस्था और (३) व्यक्तिगत अनुभव। महामना मालवीयजी के अनुसार—जहाँ धर्म है, वहाँ कृष्ण (ईश्वर) हैं, जहाँ कृष्ण हैं, वहाँ विजय है।[30] अतः मालवीयजी के अनुसार—मैलीनास्की द्वारा कथित उपर्युक्त तीनों बातें इसमें आ जाती हैं।

स्वामी विवेकानन्द हिन्दू दर्शन और वेदान्तशास्त्र के कुशल प्रचारक और अध्येता के रूप में सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत करने वाले भारतीय मनीषी थे। विद्वत् समाज में सभी उनके नाम से परिचित हैं। यह प्रसंग उनके धर्म की व्याख्या के सम्बन्ध में विवेचना से सम्बन्धित है। अतः यहाँ उनकी धर्म के प्रति विचारधारा प्रस्तुत करते हुए मालवीयजी की विचारधारा की समीक्षात्मक विवेचना प्रस्तुत की जायगी।

हिन्दू

विवेकानन्द के अनुसार–'हम लोग हिन्दू हैं। मैं हिन्दू शब्द का प्रयोग किसी बुरे अर्थ मे नही कर रहा हूँ और न मैं उन लोगों से सहमत हूँ, जो समझते हैं कि इस शब्द के कोई बुरे अर्थ हैं। प्राचीन काल मे इस शब्द का अर्थ केवल इतना था—'सिन्धु तट के इस ओर बसने वाले लोग।'[31] हिन्दू शब्द का यदि कोई बुरा अर्थ लगाया जाता है तो उसकी परवाह मत करो, आओ हम सब अपने आचरण से संसार को यह दिखा दें कि संसार की कोई भी भाषा इससे महान् शब्द का आविष्कार नही कर पायी है।[32] इस सम्बन्ध मे विवेकानन्द ने निम्नलिखित प्रकार से अपने विचारो को स्पष्ट किया है—

जातीय चरित्र और हिन्दू प्रत्येक देश का अपना जातीय चरित्र होता है। उदाहरणार्थ–फ्रांसीसी, अंग्रेज तथा हिन्दू जाति के राष्ट्रीय चारित्र्य का मेरुदण्ड राजनीतिक अधिकार-स्वातंत्र्य हैं। वहाँ की प्रजा सभी प्रकार के अत्याचारों को शान्तभाव से सहन कर सकती है। उसे करो के भार से पीस डालिये फिर भी चूं नही करेगी। सम्पूर्ण राष्ट्र को सेना मे भरती होने के लिए बाध्य कीजिए तो भी वहाँ की जनता शिकायत नही करेगी,किन्तु जिस समय कोई राजनीतिक अधिकार स्वातंत्र्य के ऊपर हाथ डालेगा, तब सम्पूर्ण राष्ट्र एक हो जायगा और पागलों की भाँति उसका प्रतिकार करेगा। फ्रांसीसी चारित्र्य का मूल सिद्धान्त है—'कोई व्यक्ति हमारे ऊपर बलपूर्वक शासन नही कर सकता।' इसी प्रकार अंग्रेजों के चरित्र मे आदान-प्रदान पर आधारित व्यवसाय वृद्धि की प्रधानता है।""किन्तु उसे अपनी गाँठ मे एक छोटा सिक्का भी देना पडे तो वह उसका हिसाब माँगता है।""""राज्य का भी वे सत्कार करेंगे, किन्तु यदि वह भी पैसा माँगता है तो अंग्रेज कहेगा—'ठीक है, किन्तु पहले यह समझाओ कि पैसा क्यो चाहिए।'

हिन्दू चारित्र्य : हिन्दुओ के अनुसार–राजनीतिक तथा सामाजिक अधिकार-स्वातंत्र्य बहुत अच्छी वस्तु है, परन्तु वास्तविक वस्तु है व्यक्ति को मुक्ति मार्ग पर बढने के लिए पूर्ण आध्यात्मिक स्वतंत्रता। यही हमारा राष्ट्रीय उद्देश्य है—तुम चाहे वैदिक, जैन, बौद्ध, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत किसी भी मत को टटोलो वे सभी इस उद्देश्य पर एक हैं। इसको न छुओ और चाहे जो करो""""हमारा धर्म ही हमारे राष्ट्रीय जीवन का मूलाधार है।""""अतः तुम स्पष्टतया समझते होगे कि राष्ट्र का प्राण कहाँ है—वह 'धर्म' मे है। भारतीय राष्ट्र का प्राण धर्म है, उसकी भाषा धर्म है, उसका भाव धर्म है।[33]

उपर्युक्त प्रकरण मे स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू और राष्ट्रीयता के प्रसग में फ्रांसीसी और अंग्रेज जातियो की पृथक्-पृथक् राष्ट्रीय चेतना का उल्लेख किया है। भारत की समाज-व्यवस्था का मूल 'धर्म' से आरम्भ होता है। मालवीयजी का मत भी स्वामी विवेकानन्द स मिलता-जुलता है। राष्ट्र और धर्म के प्रसग मे

मालवीयजी ने हिन्दू धर्म और सिख, जैन आदि धर्मावलम्बियों में समता और एकता की बात कही है। उनके अनुसार—'धर्म ही हमारी निधि है।''''ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक सभी हिन्दू हैं।[34] हिन्दू संघटन का अर्थ आत्म-रक्षा है।[35] विश्वनाथ का नाम लो और यह व्यवस्था कर दो कि जो चाहे हिन्दू बन सकता है।[36] जिस किसी जन को हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों पर विश्वास हो उसे हिन्दू मान लिया जाय।'[37]

महामना मालवीयजी और स्वामी विवेकानन्द के उपर्युक्त विश्लेषणों द्वारा हिन्दू धर्म की मूल आत्मा का बोध दोनों में एक-सा प्रतीत होता है। विवेकानन्द जहां हिन्दू शब्द को पवित्र बताते हैं और उसके प्रति गहरी आस्था व्यक्त करते हैं, महामना मालवीय स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि हिन्दू संघटन का अर्थ आत्म-रक्षा है। विवेकानन्द की ही भांति मालवीयजी भी हिन्दू और सिख आदि को एक मानते हैं। उनके अनुसार तो 'सिख धर्म हमारे धर्म का एक अंग है। गुरुग्रंथ में भक्तिभाव के जो भजन हैं वे श्रीमद्भागवत के श्लोकों के अक्षरशः अनुवाद हैं।''''''उनके दसों गुरु हमारे धर्म के गुरु हैं।[38]

राष्ट्रीय चरित्र : ऊपर स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रीय चरित्र का उल्लेख किया गया है। मालवीयजी के अनुसार—'जर्मनी, फ्रांस तथा अमेरिका आदि देशों ने अपने स्कूलों में देश भक्ति की शिक्षा देकर राष्ट्रीय शक्ति और दृढ़ता का निर्माण किया है। इस सम्बन्ध में जापान आदर्श है। वहाँ सन् १९६८ में महाक्रान्ति हुई थी''''''जापान की राष्ट्रीय सरकार ने जापान में शीघ्र ही राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया, जिसमें देशभक्ति की शिक्षा अनिवार्य थी। १८९० ई० में शिक्षा के विषय में एक राजाज्ञा निकाली गयी, जिसमें जापान के सम्राट् मिकाडो ने अपनी प्रजा को राजभक्ति, पितृभक्ति, देशभक्ति तथा विद्याप्रेम की शिक्षा दी थी और बताया था कि मानव धर्म तथा सद्व्यवहार का यही सुमार्ग है''''''' परिणामस्वरूप 'देश भक्ति' जापान का धर्म बन गया।'[39] मालवीयजी ने भी जर्मनी के उक्त राष्ट्रीय चरित्र के महत्व पर बल देते हुए भारतीय राष्ट्र के राष्ट्रीय चरित्र को बहु धर्म, बहु भाषा, बहु जाति वाले भारत की एकता के लिए महत्वपूर्ण बताया था।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्वामी विवेकानन्द ने दो-तीन देशों का उल्लेख करते हुए पृथक्-पृथक् देशों की प्रकृति और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप की विवेचना प्रस्तुत करते हुए उनकी पृथक्-पृथक् जातीय चेतना को बताया है। मालवीयजी ने भी राष्ट्रीय चेतना के प्रसंग में उसके महत्व पर बल दिया है। दोनों में वैचारिक समता प्रतीत होती है। विवेकानन्द के अनुसार—राष्ट्र का प्राण धर्म है और मालवीयजी के अनुसार धर्म ही हमारी निधि है। इस प्रकार मालवीयजी तथा विवेकानन्द दोनों के ही राष्ट्रीय चरित्र में परिवर्तन और नियन्त्रण के लिए धर्म एक आवश्यक अभिकर्ता के रूप में सामने आता है।

मालवीयजी अपने धर्म के प्रति विश्वास और अन्य दसरे धर्मो के प्रति अविश्वास की भावना को धर्म नही मानते थे। इस प्रकार की विचारधारा की भावना को वह लौकिक क्षति का कारण मानते थे। उनके अनुसार—इसे धर्म नही माना जा सकता। उनका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य को चाहे वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कुछ भी क्यो न हो अपने देश और धर्म के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। उनके अनुसार—सच्चे धार्मिक मे दूसरे धर्म और धर्मावलम्बियो के प्रति द्वेष और घृणा की भावना नही होती। प्रत्येक मनुष्य का वही देश है, जहाँ वह पैदा हुआ और पला है। मुसलमानों, ईसाइयों आदि सभी धर्मावलम्बियों के प्रति मालवीयजी के विचार बडे ही उदार थे। वह भारतीय मुसलमानो को विदेशी नही मानते थे। उनका विचार था कि विदेश से इतनी बडी सख्या में मुसलमान नही आये थे, उनकी वृद्धि भारत मे हुई और वे भारतीय सन्तान हैं। मुसलमानो का हिन्दुओं से कोई विरोध नही होना चाहिए। राष्ट्रीय सद्भावना के लिए मालवीयजी स्वामी दयानन्द की शुद्धीकरण नीति के पोषक थे। वह सनातन धर्म में भी शुद्धीकरण व्यवस्था कायम करना चाहते थे। धर्म प्रचार के सम्बन्ध मे उनका कहना था कि सभी धर्मावलम्बियो को अधिकार है कि वे पर-धर्म की निन्दा न करते हुए अपने धर्म का प्रचार करें। दूसरे धर्मों को नीचा दिखाकर अपने धर्म का प्रचार करना वह धर्म-विरुद्ध मानते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके धर्म में पृथक्ता या बिलगाव की भावना नही, उनके धर्म मे आकर्षण और समन्वय है। वह किसी का धार्मिक बहिष्कार न करके, शुद्धीकरण और आलिंगन करने के पक्षधर थे। एक बार किसी हिन्दू युवक ने भूल से किसी मुसलमान का जूठा खा लिया था। तत्कालीन हिन्दू कट्टरपथियों ने उस युवक का बहिष्कार करना चाहा। उस युवक ने काशी मे मालवीयजी को पत्र लिखा। उन्होंने तत्काल उस युवक को काशी बुलाया। काशी मे सार्वजनिक रूप स उन्होंने गगाजल छिडककर और आचमन कराकर उसे शुद्ध किया। वह अकेले मे गगाजल छिड़ककर शुद्धीकरण नही करते, अपितु समाज मे सार्वजनिक रूप से उक्त कार्य सम्पादित करते हैं। अतः उनके इस प्रकार के शुद्धीकरण को समाजीकरण का दूसरा रूप माना जा सकता है। मालवीयजी ने कहा था कि इस प्रकार, जिस परिवार के एक युवक व्यक्ति को जातिच्युत कर दिया जाता है, उस परिवार के अन्य सदस्य भी उनसे सम्बन्ध रखने के कारण जाति और समाज से बहिष्कृत कर दिये जाते हैं। परिणामस्वरूप परिवार का परिवार विधर्मी बन जाता है। इस प्रकार के बहिष्कार से घृणा की भावना का प्रसार होता है। वह कहते थे कि हमारे शुद्धीकरण और परिष्कार से मुसलमानों को या अन्य धर्मावलम्बियों को घबराने या द्वेष करने की कोई बात नही है, अपितु इससे हम हिन्दू धर्म की बन्द व्यवस्था को मुक्त करना चाहते है और द्वेष की भावना समाप्त करने के लिए ऐसा करना चाहते हैं। विशेष रूप से हिन्दू धर्म से इस दोष के कारण निष्कासित लोगों

का प्रेमपूर्वक अंगीकरण करना चाहते हैं। बिना दवाब के तर्क और रुचि के आधार पर जिसको जिस धर्म में दीक्षित होने की इच्छा हो, वह उस धर्म को स्वेच्छया स्वीकार करे। हिन्दू धर्म के धार्मिक बहिष्कार के वह विरोधी थे। उनका कहना था कि यही हाल भारत के मुसलमानों का है। कुछ हिन्दू बलात् मुसलमान बनाये गये तथा कुछ कट्टरपंथियों के बहिष्कार के कारण मुसलमान बने और परस्पर द्वेष की भावना भड़क उठी। इसलिए मालवीयजी का कहना था कि हिन्दुओं को चाहिए कि वे मुसलमानों को अपना अंग समझकर उनसे विशेषरूप से प्रेम करें। यही भावना मुसलमानों में भी हिन्दुओं के प्रति होनी चाहिए।

मालवीयजी हिन्दू धर्म के सामाजिक बहिष्कार के घोर विरोधी होने के साथ ही अंगीकरण और प्रायश्चित्त पर दृढ़ विश्वास रखते थे। एक बार जब वे १२-१४ वर्ष के थे, गर्मियों में छत पर टहलते समय छत से एक युवती को नग्न देख लिया। उन्होंने इस घटना को अपने माता-पिता को बताया और कहा कि दृष्टि-दोष तो मुझे लग ही गया। बतावें—'इसका क्या प्रायश्चित्त है?' उनके माता-पिता ने उन्हें निर्दोष बताया। मालवीयजी ने कहा—मुझे मालूम है कि गर्मियों में मेरे पड़ोसी छत पर सोते हैं और उनकी छत मेरी छत से नीची है, ऐसी दशा में छत पर टहलना मेरी भूल है। पाप तो मैंने किया ही है, प्रायश्चित्तस्वरूप भगवान् के नाम-जाप के साथ आज भोजन नहीं करूँगा।[४०]

इसी प्रकार एक बार अत्यधिक कार्य-व्यस्ततावश किसी अधिवेशन में जाते समय मालवीयजी रेल का टिकट लेना भूल गये। टिकट चेंकर ने भी उनसे टिकट नहीं माँगा और गन्तव्य स्थान (स्टेशन) पर भीड़ के स्वागत में प्लेटफार्म पार करते समय भी टिकट कलक्टर ने टिकट नहीं माँगा। रात में हिसाब जोड़ते समय टिकट न लेने की याद आने पर पत्र लिखकर उन्होंने खेद प्रकट करते हुए टिकट के पैसे जमा करवाये।[४१] इस प्रकार अनजान में गलतियाँ होने पर प्रायश्चित्त करने की उनकी बालपन में ही आदत पड़ गयी थी। वही स्वभाव उनके जीवन का आवश्यक अंग बन गया था।

मालवीयजी सनातन धर्म में ही प्रायश्चित्त-स्वरूप शुद्धीकरण करना चाहते थे। लाखों की संख्या में मलकाना राजपूत जिनके पूर्वज किसी कारणवश मुसलमान हो गये थे, इस शर्त पर हिन्दू समाज में प्रवेश करने को तैयार थे कि उन्हें उनकी राजपूत बिरादरी स्वीकार कर ले। मुसलमान और परम्परावादी सनातनी दोनों ही इस प्रकार की शुद्धि के विरोधी थे। मुसलमान तर्क देते थे कि संसार में यदि कोई मुक्त और विश्वव्यापी धर्म है, तो वह एक मात्र इस्लाम है और केवल इस्लाम को ही तबलीग (धर्म परिवर्तन) कराने का अधिकार है। गांधीजी धर्म-परिवर्तन तथा शुद्धीकरण दोनों के विरोधी थे। मालवीयजी का मुसलमानों से कहना था कि 'जब आप अपने धर्म का प्रचार करते हैं, तो आपको यह अधिकार नहीं है कि

आप दूसरों को अपने धर्म का प्रचार करने से रोकें।'[42] मालवीयजी के उक्त तर्क को गांधीजी भी स्वीकार करते थे। मालवीयजी के अनुसार—'जो लोग अज्ञान के कारण अपने धर्म से विमुख हो जाते हैं, उनके विषय में हिन्दू जाति, तथा विशेषकर ब्राह्मण अपराधी हैं·····।' मालवीयजी का यह कहना था कि 'प्रायश्चित्त के बाद दोषी व्यक्ति भी निर्दोष हो जाता है, उसके बाद उसके पुराने दोषों की चर्चा धर्म-विरुद्ध है। अत: हमारा कर्तव्य है कि भूले-भटके भाइयों को सनातन धर्म का मर्म समझाकर, उन्हें प्रायश्चित्त कराकर, उनका शुद्धीकरण करें। उनके साथ सद्व्यवहार करें और उन्हें अपने में मिला लें।'[43] उनका कहना था कि 'यदि कोई चाहता है कि वह पूजा पाठ तथा गंगा स्नान करे और हिन्दू धर्म को पवित्र मानकर उसकी ज्योति से मुक्ति लाभ करे तो हम उसे कैसे कह दें कि तुम्हें हिन्दू होने का अधिकार नहीं है।'[44] उन्होंने कहा था कि 'प्राचीन काल के ऋषियों ने अगणित असभ्यों को सभ्य बनाया था।······· विश्वनाथ का नाम लो और यह व्यवस्था दो कि जो लोग हिन्दू होना चाहें, वे हिन्दू हो सकते हैं।'[45]

मालवीयजी के प्रयास से हिन्दू महासभा ने अपने काशी अधिवेशन में शुद्धि का प्रस्ताव पारित कर दिया था। इसके कुछ ही मास पूर्व उन्हीं की प्रेरणा से ३१ दिसम्बर १९२२ ई० को शाहपुर (मेवाड) के राजाधिराज सर नाहर सिंह के नेतृत्व में आगरे में अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें साढे चार लाख मुस्लिम राजपूतों के शुद्धीकरण का निर्णय लिया गया। मालवीयजी के प्रयास से हजारों की शुद्धि की गयी, परन्तु हिन्दू भाइयों की अन्यमनस्कता के कारण यह कार्य उतना सफल नहीं हो सका, जितना होना चाहिए था। मुसलमानों ने इसका घोर विरोध किया, जिसके लिए हिन्दू परम्परावादियों का दुराग्रह भी उत्तरदायी रहा।[46]

मालवीयजी ने शुद्धीकरण को अधिक कारगर बनाने के लिए बिरादरी के लोगों की सम्मति से कार्य करना आरम्भ किया। गोविन्द सिंह, जिन्होंने स्वेच्छया ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था, सनातन धर्म में आने के लिए बहुत उत्सुक थे। आर्य समाज की दीक्षा द्वारा पुनः धर्म परिवर्तन करने पर उनके सम्बन्धी रजवाड़े उन्हें अपनाने के लिए तैयार नहीं थे। मालवीयजी के प्रयास से काशी में उनका प्रायश्चित्त कराया गया, उन्हें मालवीयजी ने परिष्कृत घोषित करते हुए स्वयं तार द्वारा उनके सभी बिरादरी वालों को इसकी सूचना दी, जिसे सभी लोगों ने स्वीकार कर लिया।[47]

इस प्रकार हम देखते हैं कि धार्मिक क्रिया-कलाप में अत्यधिक परम्परावादी होते हुए भी मालवीयजी के धर्म और समाज के प्रति विचार अत्यधिक उदार और मुक्त थे। उनके विचार हिन्दू समाज में अधिक उदारता पर आधारित थे और वह हिन्दू समाज के परम्परागत दोषों को दूर करते हुए उस व्यवस्था को

शास्त्रीय आधार पर कार्यान्वित करना चाहते थे, जो परम्परागत व्यवस्था में पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तनोन्मुख विचारों की परिचायक है।

मालवीयजी के कार्य करने का ढंग अपनी विशेषता लिए हुए था। वह समाज में सुधारवादी कार्यों को परम्पराओं की अभिवृत्तियों और पूर्वग्रहों से युक्त लोगों की भावना पर आकस्मिक आघात पहुँचाने के बजाय, क्रमशः वैचारिक मोड़ देने का प्रयास करते थे।

मालवीयजी दूसरे धर्मों के आदर करने का केवल उपदेश ही नहीं दिया करते थे, अपितु इस प्रकार के कार्यों में समानता का हार्दिक भाव भी रखते थे। १९३२-३३ ई० में काशी में हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगा हुआ। अनेक निरपराधियों की जानें गयी। हिन्दुओं को सहायता पहुँचाने के लिए कांग्रेसियों की सहायता समिति गठित की गयी। मालवीयजी, श्रीशिवप्रसाद गुप्त आदि उसके सदस्य मनोनीत किये गये थे। हिन्दू मुहल्लों के दंगा पीड़ितों को सहायता पहुँचायी जा रही थी। किसी ने मालवीयजी से कहा—मुस्लिम मुहल्लों में मुसलमान भी भूखों मर रहे हैं. मालवीयजी ने श्री शिवप्रसाद गुप्त से कहा—'मुसलमानों को भी वैसी ही सहायता मिलनी चाहिए, जैसी हिन्दुओं को दी जा रही है।' जब गुप्तजी मुसलमानों को चेक देने लगे, तो लोगों ने विरोध किया कि मुसलमानों को सहायता न दी जाय। गुप्तजी ने कहा—'मालवीयजी महाराज का आदेश है, मैं क्या करूँ।'[४८]

सार्वजनिक क्षेत्र में इतनी उदार प्रवृत्ति रखने वाले मालवीयजी खान-पान में बड़े कट्टर थे। एक बार लखनऊ में कांग्रेस की प्रान्तीय राजनीतिक समिति का अधिवेशन हो रहा था। मालवीयजी सभापति थे। उनकी बगल में दो मुसलमान बैठे थे—मालवीयजी को प्यास लगी। उन्होंने पानी माँगा। पानी आने पर अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही उन्होंने जल ग्रहण किया। राजर्षि टण्डनजी से नहीं रहा गया। उन्होंने मालवीयजी से इसका कारण पूछा। मालवीयजी ने उत्तर दिया—'देश के कल्याण के लिए मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मुसलमानों को अपने में मिलाने की बड़ी आवश्यकता है।'[४९] एक बार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आर्य समाज का जलसा हो रहा था। उसमें एक सज्जन ने इस्लाम और ईसाई धर्म पर जो मन में आया कहा। जब मालवीयजी को यह बात मालूम हुई तो उन्होंने प्रबन्धकों से कहला भेजा कि हिन्दू विश्वविद्यालय में उनके व्याख्यान नहीं होने चाहिए, जिनकी वाणी संयत न हो, जो दूसरे धर्मों और धर्म-प्रवक्ताओं की निन्दा करें।[५०] इसी प्रकार सन् १९३५ में कुछ विद्यार्थियों ने मुस्लिम त्योहारों को छुट्टी की माँग की। मालवीयजी ने कार्यकारिणी समिति में कट्टर हिन्दुओं के विरोध के बावजूद भी उक्त अवकाश स्वीकृत कराया।[५१]

उन्होंने शुद्धि आन्दोलन को प्रोत्साहित तो किया, किन्तु इस प्रसंग में किसी के धर्म, धर्मगुरु अथवा धर्म ग्रंथ की निन्दा नहीं की। उन्होंने कहा था कि मैं

सदैव अपने धर्म पर विश्वास रखने वाला और धर्म का पावन्द हूँ, किन्तु किसी के धर्म का अपमान करना मेरे दिल में नहीं आया।[52] धर्म के प्रचार में किसी को क्लेश पहुँचाने वाले वाक्य नहीं बोलने चाहिए...... । ऐसा उपाय सोचना चाहिए, जिससे प्रीति और मित्रता में वृद्धि हो।[53]

वह चाहते थे कि हिन्दू पक्का हिन्दू और मुसलमान पक्का मुसलमान बने, दोनों ईश्वर-भक्त हों। सभी लोग अपने धर्म के सिद्धान्तों को भली भाँति समझें।[54] सत्तर वर्ष की अवस्था में समुद्री यात्रा में उन्होंने बाइबिल हाथ में लेकर पूर्ण निष्ठा से ईसाइयों की उपासना में निःसकोच रूप से भाग लिया।[55] वे मनुष्यता को जात-पाँत और साम्प्रदायिकता से ऊँचा समझते थे।[56]

वह यह स्वीकार करते थे कि शास्त्रविहित विधियों का यंत्रवत् अनुकरण निःसन्देह हानिकर है।[57] उनके अनुसार—'नित्य कर्मों में कई ऐसी प्रथाओं का समावेश हो गया है जो शास्त्रसम्मत नहीं है।'[58]

देशभक्ति को मालवीयजी सर्वोपरि मानते थे। उनके अनुसार—सच्चा तप है अपने भाइयों के ताप से तप्त होना। सच्चा यज्ञ है, अपने स्वार्थ की आहुति देना। सच्चा दान है, परमार्थ करना। सच्ची ईश्वर-सेवा है, दुःखी जीवों की सहायता करना। परमेश्वर सबके हृदय में व्याप्त है। अतः जितना प्राणियों को हम प्रसन्न करेंगे उतना ही ईश्वर प्रसन्न होगा। यह सच्चा धर्म देशभक्ति द्वारा ही प्राप्य है।[59]

मालवीयजी का कहना था कि सभी धर्मावलम्बियों का मुख्य धर्म है देश-भक्ति। देशभक्ति में सभी धर्मावलम्बी एक हैं। वह चाहते थे कि भारतवासी स्वार्थभक्ति छोड़कर देशभक्ति अपनाएँ, जिसके आगे हम अपने को भूल जायें। देश की उन्नति को ही हम अपनी उन्नति समझें, देश के यश को अपना यश, देश के जीवन को अपना जीवन, और देश की मृत्यु को अपनी मृत्यु समझें।[60]

अन्य धर्मों के प्रति मालवीयजी के मन में बड़ा सम्मान था। एक बार वह कांग्रेस की एक सार्वजनिक सभा में भाषण देने के लिए बस्ती जा रहे थे। मौलाना शाहिद फाखरी ने लिखा है कि 'मैं भी उस यात्रा में मालवीयजी के साथ था। सन्ध्या होते ही मालवीयजी सन्ध्योपासन करने लगे। मेरा नमाज का समय हो गया था, किन्तु मालवीयजी के महान् व्यक्तित्व के सामने मेरा साहस नमाज पढ़ने का नहीं हुआ। मालवीयजी ने इशारे से मुझे बुलाकर कहा—'तुम कैसे मौलाना हो जी! नमाज नहीं पढ़ते? शाम की नमाज कजा करोगे क्या?' मालवीयजी ने गम्भीरवाणी में कहा—'उठो नमाज पढ़ो, समय हो गया है।' मैंने उनके सामने नमाज पढ़ी। पूजा से उठने के बाद उन्होंने प्यार से मेरी पीठ ठोंकी और कहा—'मैं कब कहता हूँ कि मुसलमान अपने मजहब का पालन न करें। इसके विपरीत मैं तो हिन्दू और मुसलमान दोनों से कहता हूँ कि अपने-अपने मजहब और धर्म

पर दृढ रहो तभी सबकी मित्रता सच्ची और पक्की होगी।'[61] मालवीयजी ने अपने प्रयास से मसजिद भी बनवायी थी।[62] इस प्रकार उनके धार्मिक विचारों की यथार्थता स्पष्ट हो जाती है। वह हर धर्मानुयायी से प्यार करते थे और ऐसा विश्वास रखते थे कि ईश्वर एक है, उपासना-पद्धति भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के कारण अलग-अलग विकसित हुई है।[63] अतः उनकी धार्मिक भावना समष्टिवादी थी, जो वर्तमान समाज को धर्म के आधार पर विभक्त करने के विपरीत समन्वयवादी थी।

२८ जून १९३३ ई० में लाहौर के एक सार्वजनिक भाषण में उन्होंने कहा था—'मेरी स्वप्न मे भी यह कल्पना नही है कि हिन्दू बलवान् होकर मुसलमानो को कष्ट दें। मेरी सदा से यह इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान् हो और जगत् के अन्य समाजो के साथ खडे होने के लायक बनें। हिन्दू मुसलमान एकत्र हो और उनके सम्मिलित अखाडे हो। मेरी प्रबल इच्छा है कि समाज मे ऐक्य-स्थापना स्वाराज्य की पहली सीढी है। दोनो समाजो का सम्बन्ध इतना दृढ होना चाहिए कि उसे कोई तोड न सके। हिन्दू और मुसलमान दोनों को यह निश्चय करना चाहिए कि कैसा भी प्रसंग आवे हम आपस मे धर्म अथवा मत के लिए कभी नही झगडेंगे।'[64]

इसी प्रकार उनका उदार दृष्टिकोण हरिजनों के प्रति भी था। हरिजन धर्म-परिवर्तन रोकने के लिए उन्होंने कहा था—'मैं हरिजन बन्धुओं को छोटा नही समझता। प्रमाणस्वरूप मैं उनकी चरण-रज तक लेने को तैयार हूँ। हरिजनो तथा अन्य सवर्णों को समीप लाने के लिए उन्होंने ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त के लिए मन्त्र दीक्षा का वृहत् कार्यक्रम आयोजित करना आरम्भ किया था, जिस पर रुष्ट होकर सवर्णों ने विरोधस्वरूप कलकत्ते के दीक्षा मण्डप में उनके ऊपर कीचड और पत्थर तक फेंके थे, किन्तु वह तनिक भी विचलित नही हुए और विरोधियों से विनम्रतापूर्वक शास्त्रार्थ करने का अनुरोध करते हुए विभिन्न स्थानों पर दीक्षा कार्यक्रम आयोजित करते रहे। कानून द्वारा हरिजनो को सवर्ण हिन्दुओ से पृथक् घोषित करने के अंग्रेजों के कुचक्र को सर्वप्रथम मालवीयजी तथा गाधीजी ने ही जाना था और इन दोनो नेताओं के आन्दोलन और प्रयास द्वारा ही हरिजनों को पृथक् करने का अंग्रेजो का कुचक्र असफल हुआ था।[65]

एक बार मालवीयजी ने कहा था कि 'भारत मे अनेक जातियाँ हैं। यदि कोई जाति चाहे कि दूसरी जाति यहाँ से चली जाय तो यह उसकी भूल है। हिन्दू भी यही रहेंगे और मुसलमान भी यही रहेंगे। हमें एक दूसरे को भाई समझना चाहिए। देश-प्रेम को न समझने के कारण ही दोनों जातियाँ परस्पर एक होकर नही रह पा रही है·········यदि आप जीवित रहना चाहते हैं तो मेल बढ़ाने का उपाय कीजिए।[66]

मुल्तान के हिन्दू-मुस्लिम दगे से दु खी होकर मालवीयजी ने कहा था—'हिन्दू, सिख, पारसी, ईसाई तथा मुसलमान उसी परमात्मा के बन्दे हैं····ताजिये का मान करना हिन्दुओ के लिए भी उचित है। जब मै किसी मसजिद के सामने से गुजरता हूँ तो हिन्दू धर्मानुयायी होने पर भी श्रद्धा से अपना सिर झुकाता हूँ। इसी प्रकार मैं गिरजाघर का भी मान करता हूँ।[67]

इस प्रकार मालवीयजी के विचारों और कार्यो पर ध्यान देने पर हम पाते हैं कि उनके चिन्तन और कार्यो के स्वरूप की कुंजी इस देश का विराट् चिन्तन है, जिसमें यहाँ के शिष्टाचार-प्रधान धर्म और संस्कृति का समुच्चय है। नाना भाषाओ, धर्मो और जनों से भरी हुई जनपद और काननोंवाली यह भारत भूमि उन सबकी प्रतीक, एकान्तनिष्ठा, भक्ति ओर सेवा का मूर्तरूप ही उनका व्यक्तित्व था।[68]

एक दिन महामना मालवीयजी ने अपने निकटवर्ती लोगों से कहा था—'मुझे मृत्यु के समय काशी मत ले जाना, मै अभी मुक्ति नही चाहता। मेरी इच्छा है कि एक बार और जन्म लेकर मैं मानव सेवा करूँ।'[69] उन्होंने अपने को भागवत के नीचे लिखे भाव मे ढाल लिया था—

न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दु:खतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात् मुझे पृथ्वी का समृद्ध राज्य नही चाहिए और मुझे मोक्ष भी नही चाहिए। मेरी तो यही उत्कट कामना है कि दु:खो से तपाये हुए प्राणियों का कष्ट दूर करूँ।'[70]

उन्होंने विश्व मानवतावाद से प्रेरित होकर भारत के सभी धर्मावलम्बियो का आवाहन किया—'देश की उन्नति के कार्यों मे जो पारसी, मुसलमान, यहूदी देशभक्त हो, उनके साथ भी मिलकर काम करना चाहिए।'[71] उनके समय में (१८६१-१९४६) ई० देश, जाति और धर्म पर बहुत बडा सकट था।[72] विदेशी सरकार विभिन्न धर्मावलम्बियों को अनेक उपक्रमो द्वारा आपसी संघर्ष मे लगाकर अपना अर्थ और स्वार्थसाधन करने में लगी हुई थी। ऐसे समय मे मालवीयजी का उक्त आवाहन देश-काल के अनुसार सर्वधर्म के समन्वयवाद का पोषक था। धर्म को वह मानवीय एकता के लिए आवश्यक मानते थे।

अपने 'सनातन धर्म' शीर्षक लेख मे उन्होने प्रथम श्लोक में ही 'धर्म' की वह व्यापक परिभाषा दी है, जो इस देश मे सदा से ही मान्य रही है। इस परिभाषा के दो सूत्र है—(१) धर्म सम्पूर्ण जगत् का 'टेक' है (धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा), (२) धर्म ही प्रजा के जीवन मे सर्वोपरि सत्य है (तस्माद्धर्मं परमं वदन्ति)। उनके अनुसार—'जो तत्व मनुष्य समाज के, राष्ट्र के और विश्व के जीवन को धारण करता है, वही धर्म है। (धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयति

प्रजा.) धारणात्मक नियमों का समादर ही धर्म है।[73] मालवीयजी की धर्म की उक्त धारणा समाज को धारण करने वाली है। मैकाइवर और पेज के अनुसार—'समाज सामाजिक सम्बन्धों के 'विषय' में है, सम्बन्धों के इसी जाल को हम समाज कहते हैं।'[74] मालवीयजी के अनुसार—धर्म ही समाज को धारण करने वाला तत्व है, इसी के आधार पर सामाजिक सम्बन्ध टिके हुए हैं।

निष्कर्ष

महामना मालवीय का सामाजिक चिन्तन धर्म पर आधारित था। उनका समाज दर्शन भी 'धर्म' पर आधारित था। वेदान्त दर्शन के अद्वैत वेदान्त द्वारा प्रतिपादित ईशार्पित निष्काम लोक-सेवा, भगवान् की अराधना, गीता का सात्विक कर्त्ता, मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म के 'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम् शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकम् धर्मलक्षणम्', हिन्दू शास्त्रों में उल्लिखित शील, ज्ञान का व्यापक प्रसार, विभिन्न मतान्तरों के प्रति हिन्दू धर्म की उदार भावना—मालवीयजी के धार्मिक चिन्तन का मूल आधार था।

मेत्सनी की उदार राष्ट्रीयता इग्लैण्ड की लोकतान्त्रिक वैधानिकता, वुड्रो विलसन की अन्तर्राष्ट्रीयता, मानव की सामाजिक साधुता पर उन्नीसवीं सदी के बुद्धिवादी मनोवैज्ञानिकों का दृढ़विश्वास, यूरोपवासी विद्वानों के लोकोपयोगी वैज्ञानिक आविष्कार, समाजवादियों की सामाजिक न्याय की धारणा, उदारवादियों के नागरिकता के सिद्धान्त,आधुनिक शिल्पवैज्ञानिक प्रगति द्वारा औद्योगिक विकास-इन सभी का उनके समाज दर्शन में भरपूर समावेश था। इस प्रकार उनका धर्म-दर्शन और कार्य समाजोत्कर्ष की दिशा में उन्मुख, लोक सेवा करना तथा मानवीय चिन्तन का उत्कृष्ट उपलब्धियों का समग्र अथवा समन्वय था।

मालवीयजी का धार्मिक प्रचार सत्यार्थ-प्रकाश के लिए था। धार्मिक प्रचारों के माध्यम से वह धर्म के रहस्य का उद्बोधन चाहते थे। उनका विचार था कि धार्मिक प्रचारों में बिना किसी दूसरे धर्म पर आक्षेप किये धर्म की मानवमात्र के उत्थान करने वाली बातों का साम्प्रदायिकता की परिधि से ऊपर उठकर प्रचार करना चाहिए। यदि किसी धार्मिक प्रचार द्वारा किसी दूसरे धर्म के लोगों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचती है, तो वह धार्मिक प्रचार पाखण्ड-युक्त, राग-द्वेषपूर्ण होने के कारण धार्मिक प्रचार नहीं माना जा सकता, किन्तु ऐसा प्रचार साम्प्रदायिक तनाव तथा संघर्ष का कारण होने के परिणामस्वरूप मानवता के सीने में खंजर भोंकने के समान होता है, जिसे तामसी और पाशविक प्रचार कहना अधिक उपयुक्त होगा। साम्प्रदायिक दंगों के समय वह हिन्दुओं के विरोध की परवाह किये बिना हिन्दू दानकर्ता से मुसलमान पंडितों को भी आर्थिक सहायता दिलाते हैं। मन्दिर के साथ मस्जिद भी बनवाते हैं। अपने सध्योपासन करते हैं,

तो पास मे यात्रा कर रहे मुसलमान को भी नमाज पढने के लिए प्रोत्साहित करते है। अतः हम पाते है कि उनकी धार्मिक भावना समष्टिवादी थी।

मालवीयजी का धर्म मनुष्यता को जात-पांत से ऊपर मानने वाला था। शास्त्रों की बातो का अन्धानुकरण करने को वह धर्म नही मानते थे। उनके अनुसार—वेद, शास्त्र तथा दर्शन आदि तर्क तथा ज्ञान पर आधारित है। ज्ञान का प्रकाशन तर्कबुद्धि पर आधारित होता है। यही कारण है कि प्राचीन काल मे शास्त्रो का अर्थबोध शास्त्रार्थो द्वारा कराया जाता था। कहा गया है—'वादे वादे जायते तत्त्वबोध'।' तत्व (धर्म) का ज्ञान वाद तथा प्रतिवाद द्वारा होता है, न कि 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' के कूप मण्डूक ज्ञान और अन्धानुकरण द्वारा। इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी धर्म के यथार्थ बोध के लिए देश-काल की आवश्यकता और परिवर्तन के प्रसग मे धर्मार्थ को तर्क की कसौटी पर, (तर्क के आधार पर) सामाजिक सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने के लिए स्वीकार करते है, न कि विश्व मे अपने धर्म और सम्प्रदाय की वृद्धि हेतु, दूसरे धर्म और समाज को नीचा दिखाने की राजनीति के सामाजिक द्वन्द्व और विग्रह के रूप मे। मालवीयजी के अनुसार—संसार मे अनेक राष्ट्र, संस्कृति, समाज, जाति तथा सम्प्रदाय के बीच उपासना पद्धतियाँ भिन्न हो सकती है, परन्तु वस्तुत. धर्म का 'मूल' एक है, जो 'सत्य' पर आधारित है। संसार मे अलग-अलग सस्कृति और सम्प्रदायो के रूप मे पन्थ अनेक है, किन्तु सभी पन्थो का गन्तव्य लक्ष्य (सत्य या ईश्वर) एक है। अतः हम पाते है कि मालवीयजी का 'धर्म' प्रचलित रूढिवादी धार्मिक मान्यता से परे, समन्वयात्मक, प्रगतिशील, सामाजिक उदारवादी धार्मिक मान्यता का द्योतक है। एकता और सौहार्द के लिए वह देश के विविध धर्मावलम्बियो मे राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय चरित्र को सम्पूर्ण राष्ट्र के धर्म के रूप मे विकसित करना चाहते थे।

— ० —

सन्दर्भ

1. धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजा.—धर्म शास्त्र।
2. यतोऽभ्युदयनि श्रेयससिद्धिः स धर्म —वैशेषिक दर्शन।
3. मालवीयजी के लेख और भाषण (भाग १ धार्मिक) पृ० ७ प्रकाशक : अखिल भारतीय मालवीय जन्मशती समारोह समिति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी १९६१ ई०।

4. एष धर्मो महायोगो दानं भूतदया तथा ।
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यमनुक्रोशो धृतिः क्षमा ॥
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतत्सनातनम्—महाभारत, अश्वमेध पर्व, अ० ९१, श्लोक ३२ ।
5. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत) पृ० ८ ।
6. कल्याण, धर्मांक, पृ० ६९८ ।
7. Kingsley Davis : Human Society, p. 509, The Macmillan Co., New York (1969).
8. डॉ० राधाकृष्णन्—'हिन्दू धर्म और समाज', पृ० २०८-२०९, सम्पादक : ईश्वरप्रसाद वर्मा, प्रकाशक : किताबघर, गांधी नगर, दिल्ली-३१ ।
9. वही, पृ० २०९ ।
10. महामना मालवीयजी का भाषण, ४ सितम्बर १९३५ ई० (शिवाजी हाल), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ।
11. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १११ ।
12. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० ३६ ।
13. समोऽहं सर्वभूतेषु ।—गीता ९-२९ ।
14. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० ३६ ।
15. न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते ॥
—महाभारत, अनुशासन पर्व ११३ । ८
16. मालवीयजी के लेख और भाषण (पूर्व उद्धृत), पृ० ४८ ।
17. नाहं कामान्न संरम्भान्न द्वेषान्नार्थकारणात् ।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथंचन ॥—महाभारत उद्योग पर्व ।
18. 'यतः सत्यं यतो धर्मो.........'महाभारत, उद्योग पर्व ।
19. मालवीयजी के लेख और भाषण, (पूर्व उद्धृत), पृ० ५९ ।
20. महामना मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (सम्पादित–पूर्व उद्धृत), पृ० ४३ ।
21. Auguste, Comte : Positive Polity, Vol. I, pp. 32-33. Translated by H. Martineau, Belland Sons., London
22. वेदान्त दर्शन (ईशोपनिषद्) ।
23. हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र १, १९, २ ।
24. गोभिल गृह्यसूत्र ३, ४, ६ ।
25. गौतम धर्मसूत्र १८, २१-२३ ।
26. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ९२ ।
27. वही, पृ० ५६ ।

28. E. B. Tylor : Primitive Culture, Publication London, Chapter 11-18, 1930.
29. Spencer, H., Principles of Sociology, London, 1882-96, Part I and VI. 1930.
30. यतो धर्मस्ततः कृष्ण यत· कृष्णस्ततोजय ।—महाभारत ।—(मालवीयजी के लेख और भाषण (पूर्व उद्धृत) पृ० ५९ ।
31. उत्तिष्ठत, जाग्रत–पृ० ५८, सकलनकर्ता–एकनाथ रानाडे, अनुवादक देवेन्द्र स्वरूप अग्रवाल,प्रकाशक लोक हित प्रकाशन,राजेन्द्र नगर (पूर्व)लखनऊ–४
32. वही, पृ० ५७ ।
33. वही, पृ० ६०-६३ ।
34. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, (पूर्व उद्धृत)अध्याय २, पृ० १०४ ।
35. माघ कृष्ण ३०, स० १९८० हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन में भाषण, उपर्युक्त, पृ० १११ ।
36. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, अध्याय २, पृ० १०९ ।
37. वही, पृ० ११८ ।
38. वही, पृ० ९२ ।
39. दीक्षान्त भाषण, २९जनवरी, १९२० (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उपर्युक्त), पृ० ६६-६७ ।
40. पद्मकान्त मालवीय, मालवीयजी · जीवन झलकियाँ, पृ० ६१ । नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली ।
41. वही, पृ० १३० ।
42. लाहौर में भाषण, २८ जून, १९२३ ।
43. महामना मदनमोहन मालवीय · जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत),पृ० ३१२ ।
44. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, पृ० १०९ (हिन्दू महासभा ७वाँ अधिवेशन, १९२३) ।
45. वही, पृ० १०९ ।
46. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत) , पृ० ३१३ ।
47. मालवीयजी · जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत) पृ० १५ ।
48. वही, पृ० ६३ ।
49. वही, पृ० ३ ।
50 महामना मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ६५ ।
51. डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी, आनन्दवार्ता, अक ४, पृ० २७२, आनन्दमयी चैरिटेबुल सोसाइटी, काशी ।

52. लाहौर–भाषण, २८ जून, १९२३ ।
53. पजाब हिन्दू सम्मेलन, सन् १९२४ ।
54. पंजाब हिन्दू सम्मेलन, सन् १९२४ ।
55. घनश्यामदास बिरलाजी की डायरी से, सन् १९३० ।
56. कानपुर सार्वजनिक भाषण, सन् १९३१ ।
57. 'अभ्युदय' १ मई, सन् १९०८ ।
58. वही ।
59. वही, भाद्र शुक्ल ६, सं० १९६४ ।
60. वही ।
61. पद्मकान्त मालवीय, मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० २७ ।
62. वही, पृ० १०२ ।
63. माघ कृष्ण ३०, स० १८८०, हिन्दू महासभा, विशेष अधिवेशन भाषण, डॉ० कृष्णदत्त द्विवेदी, आनन्दवार्ता,पृ० २७३, अक्टूबर १९७६ ई०, अंक ४, श्रीआनन्दमयी चैरिटेबुल सोसाइटी, वाराणसी ।
64. वही, पृ० २७२ ।
65. वही, पृ० २७२ ।
66. वही, पृ० २७३ ।
67. वही, पृ० २७३ ।
68. महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय के लेख और भाषण, संकलनकर्त्ता वासुदेवशरण (पूर्व उद्धृत) पृ० २ ।
69. वही, पृ० ४ ।
70. वही, पृ० ४ ।
71. वही, पृ० ४ ।
72. वही, पृ० ४ ।
73. वही, पृ० ६ ।
74. Mac Iver and Page, Society, A Test Book of Sociology, Preface, New York, 1937.

— ० :—

अध्याय—७

मालवीयजी के शिक्षा तथा समाज सम्बन्धी विचार एवं कार्य

शिक्षा का अर्थ, परिभाषा तथा उद्देश्य

'शिक्षा' शब्द सामान्यतः अतीव व्यापक अर्थ में व्यवहृत होता है। वस्तुतः शिक्षा शब्द उन सम्पूर्ण प्रभावों की ओर सकेत करता है, जो प्रभाव प्रकृति एवं समाज द्वारा व्यक्ति के ऊपर पड़ते हैं। इस प्रकार यह अनुभूति पर आधृत अन्तः-क्रियात्मक प्रक्रिया है। जान स्टुअर्ट मिल[1] के मतानुसार—'प्रकृति की पूर्णता तक पहुँचाने के प्रयोजन से जो कुछ भी हम करते हैं अथवा समाज के अन्य लोग करते हैं, वह शिक्षा से सम्बद्ध होता है। काट के मतानुसार—'प्रत्येक व्यक्ति में जीवन की समग्रता का यथेष्ट विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य है।' शिक्षा आयोग के प्रतिवेदन के अनुसार—'शिक्षा तो सदैव एक महत्वपूर्ण विषय रहा है, परन्तु फिर भी इसका महत्व मानव इतिहास में कभी इतना नहीं रहा, जितना कि यह आधुनिक समय में है········। विज्ञान तथा प्राविधिकी पर आश्रित संसार में शिक्षा ही ऐसा तत्व है, जो लोगों की समृद्धि, कल्याण तथा सुरक्षा के स्तर का निर्धारण करता है।'[2] प्राचीन भारत में धर्म व्यक्ति की क्रियाओं का प्रमुख स्रोत था तथा यह शैक्षिक आदर्श को भी परिपूर्ण करता था। शिक्षा व्यवस्था का लक्ष्य चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व विकास तथा मातृभूमि की प्राचीन संस्कृति का संरक्षण होता था।[3]

सामाजिक परिवर्तन के सन्दर्भ में शिक्षा की प्रमुख भूमिका होती है। प्रस्तुत प्रसंग में मालवीयजी के शिक्षा-सम्बन्धी आधुनिक विचारों का अध्ययन किया गया है। क्रो[4] के शब्दों में शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं :—
(१) आत्मानुभूति, (२) सामाजिक सम्बन्धों का यथेष्ट सृजन एवं नियमन, (३) आचरण-निर्माण, (४) आर्थिक, प्राविधिक, राजनीतिक तथा आध्यात्मिक कुशलता और (५) जन-जीवन का उत्तरदायित्व। मालवीयजी के मतानुसार—'विद्यार्थियों का चरित्रगठन शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है।'[5] आचरण की पुष्टि और परिपक्वता के लिए मालवीयजी भी धर्म, नागरिकता और नैतिकता की शिक्षा आवश्यक

समझते थे। उनकी 'धर्म' की व्याख्या नैतिकता से ओत-प्रोत और नागरिकता से सम्बन्धित थी। वह देशभक्ति को धर्म का महत्वपूर्ण अंग मानते थे।[8] वह हारवर्ड विश्वविद्यालय के प्रो० विलियम जेम्स के इस मत से सहमत थे कि इस विधि से 'लेबरेटरी वर्क और वर्क शाप प्रेक्षण का अभ्यास यथार्थ और अस्पष्टता के अन्तर का ज्ञान तथा प्रकृति की पेचीदगी की ओर वास्तविक तथ्य के सब शाब्दिक विवरणों की त्रुटियों की पूरी जानकारी उत्पन्न करते हैं जो एक बार बुद्धि में बैठ जाने पर आजीवन बन जाते हैं।'[7] इस प्रकार मालवीयजी पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा प्रौद्योगिक शिक्षा के समर्थक थे। वह चाहते थे कि वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा अपने देश में भी चालू की जाय और प्रयोगशाला तथा वर्कशाप में विद्यार्थियों को अपने हाथों से प्रयोग करने का अभ्यास कराया जाय, उनमें शिक्षा से प्रेरणा की शक्ति उत्पन्न की जाय। उनके ज्ञान को यथातथ्य तथा जीवनोपयोगी बनाया जाय। उनकी धारणा थी कि भारत अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने में तब तक सर्वथा असमर्थ रहेगा जब तक वह वर्तमान वैज्ञानिक अन्वेषण का अध्ययन नियमित और अनिवार्य नहीं बनाता।[8]

मालवीयजी के अनुसार—प्रत्येक जिला अथवा कमिश्नरी में इस प्रकार की माध्यमिक स्तर की औद्योगिक शिक्षण संस्थाएँ स्थापित की जायँ, जिनमें बुनाई, रंगाई, धुलाई, वस्त्र-छपाई, बढ़ईगिरि, मीनाकारी आदि की शिक्षा की व्यवस्था हो। इन संस्थाओं में कार्य-देशोकों (फोरमैन) और उनके सहायकों के प्रशिक्षण का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। वह यह भी चाहते थे कि प्रत्येक प्रान्त में एक उच्चस्तरीय औद्योगिक शिक्षा महाविद्यालय स्थापित किया जाय, जिसमें शिल्प-विज्ञान-सम्बन्धी विषयों की उच्चस्तरीय शिक्षा का प्रबन्ध हो।[9]

मालवीयजी की शिक्षा व्यवस्था का व्यवहृत रूप :
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वह अपने विचारों का व्यवहृत रूप अवश्य रखते थे, जो उनके विचारों की साकार अभिव्यक्ति माना जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने अपने विचारों के अनुरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।[10] यह विश्वविद्यालय उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का मूर्त रूप है।

मालवीयजी यह मानते थे कि चरित्र-निर्माण में शिक्षकों का विद्यार्थियों पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अतः उनके अनुसार—उनके विश्वविद्यालय में 'जो

[10] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण तथा उद्देश्य की व्यापक चर्चा 'जीवन वृत्त और व्यक्तित्व' शीर्षक अध्याय २ में भी की गयी है। यहाँ उसका उल्लेख मालवीयजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों की साकार अभिव्यक्ति के रूप में की गयी है।

अध्यापक होते हैं, उन्हें प्रतिज्ञा करनी पड़ती है—'प्राचीन धर्म शिक्षा मानेंगे, हिन्दू शास्त्रों का पालन करेंगे, शिक्षा का प्रचार करेंगे, समाज का कल्याण करेंगे, सदाचारी रहेंगे, देश-सेवा के साथ-साथ सदाचारी जीवन व्यतीत करेंगे।'[1]

सामाजिक स्थिरता, परिवर्तन और मालवीयजी

न्योगार्टेन के अनुसार—शिक्षा के निम्नलिखित दो प्रकार्यात्मक कार्य प्रमुख हैं—

(क) सामाजिक स्थिरता (सातत्य) और

(ख) सामाजिक परिवर्तन।

मालवीयजी की शिक्षा-व्यवस्था की विचारधारा उपर्युक्त सातत्य और परिवर्तन विषयक विचारधारा के समान थी। वह प्राचीन आयुर्वेद के साथ अर्वाचीन शल्य-विज्ञान की शिक्षा का मेल, आयुर्वेदिक औषधियों का वैज्ञानिक परीक्षण तथा उन पर अनुसन्धान, विभिन्न विषयों पर प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन, प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शन, साहित्य तथा इतिहास के गहन अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान, दर्शन-शास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन, वेद-वेदांग, संस्कृत-साहित्य और वाङ्मय की शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, धातु विज्ञान, खनन विज्ञान, विद्युत् इंजीनियरिंग, यांत्रिक इंजीनियरिंग, कृषि विज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन कराना चाहते थे।[13] उक्त शिक्षा-व्यवस्था उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में करने का प्रयास किया है। इस प्रकार मुख्यरूप से सामाजिक स्थिरता हेतु मालवीयजी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था तथा परिवर्तन और आधुनिकता हेतु आधुनिक वैज्ञानिक प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था के पक्षधर थे। उनके अनुसार—'व्यक्ति' में मानवोचित विकास तथा प्रगति एवं कार्यशीलता के लिए उपर्युक्त शिक्षा आवश्यक है। उक्त प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्रारम्भ की थी, जो इस विश्वविद्यालय की शिक्षा-व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है। अपनी इन्हीं चतुर्मुखी शिक्षा-सम्बन्धी विशेषताओं के कारण काशी हिन्दू विश्वविद्यालय संसार के अन्य विश्वविद्यालयों से भिन्न अपना पृथक् महत्व रखता है।

शिक्षा के व्यापक प्रसार, सातत्य तथा परिवर्तन के सन्दर्भ में अमेरिकी शिक्षाविद् थ्योडोर ब्रेमेल्ड[14] के मतानुसार—'आधुनिक शिक्षा के समक्ष अनेक गहन चुनौतियाँ हैं, विशेषकर मानव सम्बन्धों में विज्ञान, अर्थशास्त्र, कला, धर्म तथा राजनीति के क्षेत्रों में तो इसका महत्व अपरिहार्य है। फिर भी आधुनिक संक्रमणकालीन परिस्थिति में शिक्षा ही संकटों का निराकरण कर रही है एवं वही नवीन सामाजिक ढाँचे का प्रादुर्भाव भी कर रही है।' मालवीयजी प्राचीन सांस्कृतिक शिक्षा के साथ-साथ धर्म-दर्शन, कला, साहित्य आदि के साथ-आधुनिक ज्ञान विज्ञान की समन्वित शिक्षा-व्यवस्था पर बल देते हैं और भारतीय परम्परा-

गत विचारधारा की मूल मान्यताओं को सतत बनाये रखने के लिए स्त्री शिक्षा पर भी विशेष बल देते हैं, साथ ही प्रगतिशीलता को अक्षुण्ण रखने के लिए आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का विशेष महत्व भी स्वीकार करते हैं। इस प्रकार प्राचीन संस्कृति, धर्म-दर्शन, कला, साहित्य आदि की शिक्षा द्वारा परम्परागत हिन्दू जीवन-दर्शन जीवित रहेगा और विश्व-बन्धुत्व की भावना का निरन्तर विकास हो सकेगा। कपाडिया[15] के शब्दों में 'हिन्दू मनोवृत्तियाँ आज भी (परम्पराओं में) संयुक्त परिवार के पक्ष में हैं.......।' जैसी सास्कारिक भावनाएँ बनी रहेंगी, जिनमे भारतीय समाज का सास्कारिक रूप बना रहेगा। दूसरी ओर ज्ञान-विज्ञान, प्राविधिकी की शिक्षा द्वारा समाज का विकास होगा।

मालवीयजी की विचारधारा, व्यावहारिक तथा कार्योन्मुखी थी। वह किसी विषय के वैचारिक संकल्प के अनुसार उसका कार्योन्मुख साकार स्वरूप भी रखते थे। उनकी शिक्षा-सम्बन्धी विचारधारा का निम्नलिखित व्यावहारिक पक्ष उनकी शिक्षा सम्बन्धी विचारधारा का व्यावहारिक स्वरूप उपस्थित करते हैं, जिससे उनकी शिक्षा-सम्बन्धी प्रगतिशील विचारधारा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

शिक्षा के क्षेत्र में मालवीयजी ने पराधीन भारत में जो कार्य किया है वह विश्व के इतिहास में एक अद्भुत घटना है। उनका यह विश्वास था कि राष्ट्रीय चरित्र के भविष्य के लिए आनेवाली पीढ़ी को शिक्षा की उत्तमोत्तम व्यवस्था प्रदान की जानी चाहिए और राष्ट्र के विविध धर्मावलम्बियों में राष्ट्रीयता और देशभक्ति की भावना शिक्षा-व्यवस्था द्वारा विकसित की जानी चाहिए। यही कारण है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु था। मालवीयजी पर राष्ट्रीय आन्दोलनकारी छात्रों को दण्डित करने के लिए जब ब्रिटिश प्रशासन ने दबाव डाला तब मालवीयजी ने इससे साफ इन्कार कर दिया और कहा कि जब आप लोग अपने देश में देशभक्ति को सम्मान की दृष्टि से देखते हैं, तब आप हमारी देशभक्ति को शंका की दृष्टि से क्यों देखते हैं? पराधीनता से मुक्ति के लिए यह आवश्यक है कि इस विशाल देश में शिक्षा का व्यापक रूप से प्रसार किया जाय। यही कारण है कि उन्होंने असहयोग आन्दोलन में अध्ययन से असहयोग करने का विरोध किया था। उन्होंने बार-बार इस बात को दुहराया था कि इसी शिक्षा-व्यवस्था द्वारा हमारी चेतना का विकास हुआ और हम इस योग्य हो सके हैं कि स्वाधीनता के अधिकार की माँग कर रहे हैं। अतः इस शिक्षा-व्यवस्था से बिना समानान्तर राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था किये, छात्रों को अध्ययन छोड़ने के लिए कहना हमारी चेतना के विकास में अवरोध पैदा करना है। इससे अंग्रेजी प्रशासन का कोई अहित नहीं होगा, किन्तु इससे देश का ही अहित होगा।

मालवीयजी विश्वविद्यालय को चरित्र-विकास का साधन मानते थे।[16] धर्म और भारतीय संस्कृति पर उनकी अटूट श्रद्धा थी। काशी भारतवर्ष की प्राचीन

ही पाठ्य सामग्रियों का प्रकाशन होने लगेगा और भाषा का द्रुत गति से विकास सम्भव हो सकेगा।[18]

शिक्षा श्रेणी

मालवीयजी के अनुसार—'प्रारम्भिक अवस्था में हमें केवल विद्यार्थियों को पढ़ाने-लिखाने तथा जोड़ने की शिक्षा देकर ही चुप नहीं रह जाना चाहिए। संसार की सर्वतोमुखी प्रवृत्ति को देखते हुए शिक्षा-व्यवस्था का यह क्रम सर्वथा अनुपयुक्त है। अपने देश में प्रारम्भिक अवस्था में प्रारम्भिक विज्ञान तथा साधारण रोचक शिक्षा की ओर ध्यान देना चाहिए।[19]

'द्वितीय श्रेणी की शिक्षा कितनी अवस्था तक के विद्यार्थियों को दी जाय, इस बात पर भी हमें विचार करना है। मेरे विचार से १४ वर्ष से १७ वर्ष या १८वर्ष तक के विद्यार्थियों को यह शिक्षा दी जानी चाहिए। प्रारम्भिक शिक्षा पाने वाले द्वितीय श्रेणी की शिक्षा में प्रवेश पा सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।'[20]

सह-शिक्षा

मालवीयजी शिक्षा को चरित्र-विकास का साधन मानते थे और चाहते थे कि शिक्षा द्वारा 'व्यक्ति' का सर्वांगीण विकास हो। परम्परावादी लोग बालक-बालिकाओं की पृथक् शिक्षा-व्यवस्था को विशेष महत्व देते हैं, किन्तु मालवीयजी सह-शिक्षा के समर्थक थे। उनके अनुसार—'स्त्रियों में पुरुषोचित और पुरुषों में स्त्रियोचित गुण समवयस्क सह-शिक्षा द्वारा ही आ सकता है।'[21]

मालवीयजी का पुरुषों में स्त्रियोचित और स्त्रियों में पुरुषोचित गुणों के विकास-सम्बन्धी उपर्युक्त विचार प्रगतिशील विचारधारा का द्योतक है। परम्पराओं में परिवर्तन और गतिशीलता के लिए इससे अधिक प्रगतिशील विचार और क्या हो सकता है? अतः हम पाते हैं कि शिक्षा और समाज-सम्बन्धी मालवीयजी के विचार अतीव आधुनिक एवं तर्कयुक्त थे। यहाँ मालवीयजी के विचार काण्ट के 'प्रत्येक व्यक्ति में जीवन की समग्रता का यथेष्ट विकास करना ही शिक्षा का उद्देश्य है,[22] विचार के समान है। मालवीयजी जीवन के समग्र विकास के लिए शिक्षा को सर्वाधिक महत्व देते थे। सह-शिक्षा को भी वह सर्वांगीण विकास का अंग मानते थे। मनुष्य मात्र में स्त्रियोचित और पुरुषोचित गुण-विकास आवश्यक मानकर वह समवयस्क सह-शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते थे।

अर्थकरी शिक्षा की अवधारणा

मालवीयजी ने २६ जनवरी १९२० ई० में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में शिक्षा के सम्बन्ध में कहा था कि 'शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों को इस योग्य भी बना देना चाहिए कि वे किसी-न-किसी उपाय से अपना जीविकोपार्जन कर सकें। हाई स्कूल की शिक्षा अन्य देशों की भाँति सफल तभी मानी जा सकती है, जब वह विद्यार्थियों को अर्थार्जन योग्य बनाने वाली हो।'[23]

'उपर्युक्त माध्यमिक अर्थार्जनपरक शिक्षा होने पर हाई स्कूल की शिक्षा मे शिक्षार्थियो की सख्या मे वृद्धि होगी और इस अवस्था मे उच्च शिक्षा पर व्यय किये गये धन का परिणाम भी अच्छा होगा।'[24]

'शिक्षा के लिए युवकों को दूर नही जाना पडे और छात्र अर्थकरी शिक्षा कम व्यय में अपने समीप के विद्यालय मे ही प्राप्त कर सकें, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।'[25]

माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था मे कला और विज्ञान की शिक्षा पर समान बल

'केवल कला-सम्बन्धी शिक्षा देने से ही किसी देश का हित नही हो सकता, अपितु विज्ञान की पिछली शताब्दियों की उन्नति को देखते हुए तथा विज्ञान की प्रयोगात्मक क्षेत्रों मे जो असाधारण उन्नति हुई है, उसे देखते हुए हममे से कोई विचारवान् व्यक्ति यह कहने का साहस नही करेगा कि प्रारम्भिक स्कूलो मे जो शिक्षा-व्यवस्था की जाय, उसमे विज्ञान की शिक्षा का कार्यक्रम न हो तथा हाई स्कूलों में किसी प्रकार की उद्योग-धधा सम्बन्धी शिक्षा का उचित प्रबन्ध न हो।[26]

नवयुवक बेकारी और शिक्षा की आधुनिकता पर मालवीयजी के विचार

मालवीयजी के अनुसार—'व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा भी सभी प्रकार से पूर्ण तथा प्रयोग मे लाने योग्य होनी चाहिए। मेरी समझ मे यदि हमारे नवयुवकों को व्यावसायिक तथा व्यावहारिक विज्ञान की शिक्षा अनेक रूपों मे दी जाय तो यह समस्या बहुत अशो मे हल हो जायगी, जिससे वेतन वाली सरकारी नौकरियो की 'मृगतृष्णा' अथवा पहले से ही ठसाठस भरे हुए पेशो की ओर झुकाव कम हो सकेगा। इस प्रकार से हम क्रमशः विदेशी वस्तुओं के आयात को भी कम कर सकेंगे और देश से बाहर जाने वाले कच्चे माल की खपत यही कर सकेंगे, जिसमे कच्चे माल का निर्यात कम होगा।'[27] इस प्रकार आवश्यकता की सामग्री देश में ही बनने लगेगी, जिससे स्वदेशी का प्रसार होने के साथ ही बेकार लोगो को काम भी मिल सकेगा।

बेकारी और उसका कारण : विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण मे बेकारी का कारण बताते हुए उन्होने कहा था—'आज बेकारी का प्रमुख कारण यह है कि हमारे विश्वविद्यालय विभिन्न विषयो की शिक्षा नही देते। उनकी शिक्षा अर्थपरक नहीं है। कला अथवा विज्ञान मे उपाधि प्राप्त करने वाले विद्यार्थी केवल एक शिक्षक या राज्य कर्मचारी के पद के योग्य ही बन पाते है, परन्तु स्कूल तथा कालेज और नौकरियों मे प्रतिवर्ष निकले हुए स्नातकों की अल्प सख्या मे ही नियुक्ति हो सकती है। इन सभी का एकमात्र उपाय यही है कि व्यापार, कृषि शिल्पादि कला, अभियान्त्रिकी तथा प्रयोगात्मक रसायनो मे शुद्ध ढग पर ...

शिक्षा का विकास किया जाय। शिक्षा को ऐसा क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता है, जिसकी मांग सदैव बनी रहे।

धर्म और शिक्षा

चरित्र के महत्व के प्रसग मे मालवीयजी ने कहा था कि 'धर्म चरित्र-निर्माण तथा सासारिक सुख का सीधा मार्ग है। इससे मनुष्यो मे उच्चकोटि की निःस्वार्थ सेवा की भावना आती है, जिससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है।'[२८]

शिक्षा के विषय मे राज्य का कर्त्तव्य

धर्म के सम्बन्ध मे विद्यालयो के योगदान के विषय मे मालवीयजी का मत था कि 'विद्यालयो का उद्देश्य इस प्रकार की शिक्षा होना चाहिए कि वह विद्यालयों के कमरो से छात्रो को कारखानो तक पहुँचा सके। उनके मतानुसार 'प्रत्येक सभ्य राज्य का यह अपना कर्त्तव्य है कि वह बालकों को अच्छी जीविका प्राप्त करने के योग्य शिक्षा दे।'[२९] हिन्दू विश्वविद्यालय में कृषि, तकनीकी, वैज्ञानिक आदि की शिक्षा-व्यवस्था में उनका प्रयास था कि तकनीकी सामग्रियों का उत्पादन हो, विश्वविद्यालय के वर्कशाप मे जनता की आवश्यकता की सामग्रियो का उत्पादन और मरम्मत का कार्य हो, जहाँ छात्र-छात्राएँ प्रयोगों द्वारा उत्पादन और मरम्मत कार्य सीखें और करें। चिकित्सा विज्ञान मे दवाओं का उत्पादन भी किया जाय, जो विश्वविद्यालय चिकित्सालय के अतिरिक्त देश को शुद्ध-परिष्कृत दवाओं की आपूर्ति कर सके। कृषि विद्यालय मे भी उनका इसी प्रकार की व्यवस्था का प्रयास था। मालवीयजी के विचारो के अनुसार—'कृषि-शिक्षक तैयार किये जाने चाहिए।' वह चाहते थे कि कृषि महाविद्यालय विश्वविद्यालयो से सम्बद्ध हो तथा कृषि-विशेषज्ञ और दूसरे विज्ञान-विशेषज्ञ सम्मिलित रूप से कार्य करें। कृषिप्रधान भारतीय राष्ट्र की कृषि-शिक्षा के व्यापक महत्व को समझते हुए उन्होने अपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मे कृषि महाविद्यालय की स्थापना कृषिशास्त्र की सैद्धान्तिक और प्रायोगिक अध्यापन व्यवस्था द्वारा की है। मालवीयजी चाहते थे कि यहाँ आधुनिकतम कृषिशास्त्र की पढाई हो और यहाँ कृषि उत्पादन का कार्य भी हो जो विश्वविद्यालय परिवार की खाद्यान्न-पूर्ति के अतिरिक्त बाजार को भी अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादित खाद्यान्न आपूर्ति कर सके। इससे कृषिशास्त्र के विद्यार्थियो मे स्वावलम्बन की भावना का विकास होगा, जो भविष्य मे देश की खाद्य समस्या की पूर्ति मे अधिक सक्षम ढग से सहायक होगें।

मालवीयजी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य

'शिक्षा प्रणाली का प्रधान ध्येय नवयुवको को योग्य नागरिक बनाना तथा जनता की बुद्धि का विकास करना है।'[३०]

'देश में शिल्प, कृषि, वाणिज्य आदि से सम्बन्धित शिक्षालयों का अधिकाधिक विकास किया जाना चाहिए।'[३१]

'यहाँ प्रत्येक विद्यार्थी को बाध्य होकर अनेक विषय लेने पड़ते हैं, जो उन्हें तुच्छ क्लर्कों के पदों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिए अनुपयुक्त बना देता है। इसके लिए राज्य की ओर से अर्थकरी शिक्षा नीति अपनायी जानी चाहिए।'[३२]

मालवीयजी ने १४ दिसम्बर १९२९ ई० को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अपने दीक्षांत भाषण में शिक्षा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था कि 'विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ विज्ञान, कला-कौशल और व्यवसाय-सम्बन्धी ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे देशी व्यवसाय तथा घरेलू धन्धों की उन्नति हो।'[३३]

उसी भाषण में उन्होंने शिक्षा के लिए विद्यार्थियों के प्रवेश के विषय में यह भी कहा था कि—'विश्वविद्यालयों में भरती उनकी शिक्षा तथा परीक्षाओं में अत्यन्त आवश्यक उच्चकोटि की श्रेष्ठता के निर्वाह के लिए, राष्ट्रीय प्रणाली के आधार पर प्रारम्भिक तथा माध्यमिक स्कूलों में सर्वसाधारण के लिए निःशुल्क शिक्षा अनिवार्य कर दी जानी चाहिए। उनमें उत्तम शिल्पादि कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध रखा जाना चाहिए। वर्तमान असन्तोषजनक परिस्थिति को सुधारने के लिए यही एकमात्र उपाय है। इसके अतिरिक्त योग्यताहीन विद्यार्थियों को शिक्षा देना व्यर्थ है।'[३४] विश्वविद्यालयों के इस कार्य में सरकार को सहयोग देना चाहिए ताकि वे नवयुवकों को उपर्युक्त शुद्ध ढंग की शिक्षा दें जिससे वे अपना जीवन-निर्वाह करने में समर्थ हो सकें।[३५]

शिक्षा-प्रणाली का एक महान् दोष

मालवीयजी के अनुसार—'इस वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि बीस वर्ष की शिक्षा के बाद भी भारतीय नवयुवक अपना तथा अपने परिवार का भरण-पोषण नहीं कर पाता। अतः वर्तमान शिक्षाप्रणाली जड़ से ही दोषयुक्त है और इसमें आमूल सुधार की आवश्यकता है, जो किसी व्यक्ति विशेष के वूते की बात नहीं है। इसके लिए सामूहिक तथा राजकीय प्रयत्न होना चाहिए।'[३६]

वर्तमान शिक्षाप्रणाली एक निकृष्ट नक़ल मात्र

भारतीय शिक्षा-प्रणाली के विषय में मालवीयजी ने कहा था कि—'हम लोग अन्धविश्वासी की भाँति एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली का अनुसरण करते चले जा रहे हैं, जिसका निर्माण अन्य जातियों के लिए हुआ था और जिसका उन्हीं लोगों ने बहुत दिन हुए परित्याग कर दिया है, किन्तु हम उसकी अर्थी लिए हुए आज भी उसमें जीवन होने की आशा करते हैं।'[३७]

इस प्रकार उन्होंने आज से बहुत पहले ही वर्तमान शिक्षा प्रणाली की निरर्थकता की ओर इंगित कर दिया था, किन्तु उनका विश्वास था कि शिक्षा-

प्रणाली मे परिवर्तन अथवा परिष्कार किसी व्यक्ति-विशेष की सामर्थ्य से परे है। अत सरकार को योजनाबद्ध रूप मे शिक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन की दिशा में ठोस कार्य करना चाहिए। उनका दृढ विश्वास था कि राष्ट्रीय शिक्षा का विस्तार केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा ही सम्भव है।[३९]

नौकरी तथा शिक्षा का माध्यम

मालवीयजी ने शिक्षा के माध्यम के विषय मे प्रकाश डालते हुए कहा था कि 'भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं है। सबसे बडी कठिनाई यह है कि यहाँ शिक्षा तथा सेवाओ का माध्यम एक दुरूह विदेशी भाषा है। ससार में कही भी शिक्षा तथा नौकरी का माध्यम विदेशी भाषा नही है।'[४०] अंग्रेजी भाषा की लिपि के सम्बन्ध में मालवीयजी ने कहा था—'ग्लैडस्टन ने कहा है, यह एक ऐसी भाषा है, जिसकी वर्णमाला किसी भी विदेशी को पागल बना देगी। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के फलस्वरूप मातृभाषा पर कम ध्यान दिया जाता है और ७ वर्ष की अवस्था से ही बालक अपने अध्ययन का बहुमूल्य समय विदेशी भाषा रटने में लगा देता है, जिससे वह अपनी भाषा से भी अनभिज्ञ रह जाता है और विदेशी भाषा जो अप्राकृतिक है, उसमे उसका रटा हुआ ज्ञान भी अधूरा ही रह जाता है।'

राष्ट्रीय शिक्षा एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

२५ नवम्बर १९३० ई० में मालवीयजी ने विश्वविद्यालय की कार्य समिति के माध्यम से सरकार को लिखवाया कि 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय सस्था है, यहाँ धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा द्वारा नवयुवको का चरित्र-निर्माण करना इसका मुख्य उद्देश्य है। देशभक्ति एक शक्तिशाली उत्कर्ष है। इसके विकास मे विश्वविद्यालय का सहयोग आवश्यक है।····राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अध्यापको तथा विद्यार्थियो से राष्ट्रीय लहर से प्रभावित न होने की आशा नही की जा सकती।' मालवीयजी ने जोरदार शब्दो मे कहा कि—'हमारी सरकार से यह माँग है कि प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय और कला, कृषि, शिल्प तथा व्यापार सम्बन्धी एक नवीन शिक्षाप्रणाली का प्रचार किया जाय।'[४१] राष्ट्रीय शिक्षा पर बल देते हुए मालवीयजी ने कहा था—'किसी देश के शासन में राष्ट्रीय शिक्षा का प्रश्न देश की सबसे बडी समस्या है।' देश मे ऐसी शिक्षा-प्रणाली विकसित की जानी चाहिए, जिसमे कला, धर्म-दर्शन तथा विज्ञान और प्राविधिकी की शिक्षा का समान रूप से विकास हो सके। उक्त शिक्षा-व्यवस्था में उन्होंने राष्ट्रीयता के विकास की शिक्षा पर बल देते हुए कहा था कि सभी विद्यार्थियों के लिए राष्ट्रीयता की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए, जिससे अन्य देशों की भाँति भारतीय राष्ट्रीय चरित्र का विकास हो और देश मे एकता स्थापित हो। इस प्रकार धर्म, दर्शन, कला-साहित्य के माध्यम से उन्होंने काशी हिन्दू विश्व-

विद्यालय में राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था की थी, जिसे वह स्पष्ट रूप से विकसित करना चाहते थे। मालवीयजी ने कहा था—'जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका और अन्य सभ्य देशों ने अपने स्कूलों में देशभक्ति की शिक्षा देकर, अपनी राष्ट्रीय शक्ति तथा दृढ़ता का निर्माण किया है।'''''''''इस सम्बन्ध में जापान एक आदर्श है। वहाँ महान् क्रान्ति सन् १८६८ में हुई थी,''''''''जापान की राष्ट्रीय सरकार ने जापान में एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया, जिसमें देशभक्ति की शिक्षा अनिवार्य थी।''''''' १८९० ई० में शिक्षा के विषय में एक राजकीय राजाज्ञा निकाली गयी, जिसमें जापान के सम्राट् मिकाडो ने अपनी प्रजा को राजभक्ति, पितृभक्ति, देशभक्ति तथा विद्याप्रेम की शिक्षा दी थी और बतलाया था कि मानव धर्म तथा सद्व्यवहार का यही सुमार्ग है।''''''' इस शिक्षा का फल यह हुआ कि देशभक्ति जापान का धर्म हो गया। इस प्रकार की शिक्षा इस विविध धर्म, जाति तथा वर्ग वाले भारत के लिए अतीव आवश्यक है।'[४३] अंग्रेजी राज्य प्रत्यक्ष रूप से उनकी राष्ट्रीय शिक्षा की उक्त विचारधारा का विरोधी था। अतः परोक्ष रूप से धर्म, दर्शन, कला-साहित्य के माध्यम से वह उक्त शिक्षा का प्रसार कर रहे थे। परन्तु वर्तमान स्वाधीन भारत में मालवीयजी की उपर्युक्त अवधारणा के अनुसार वर्तमान काल में राष्ट्रीय शिक्षा की सबसे बड़ी आवश्यकता है। उन्होंने पराधीनता के समय में ही भारतीय राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता का अनुभव किया था। इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था से लोगों के धर्म तथा जातीय तनाव में कमी आयेगी।

स्त्री-शिक्षा और मालवीयजी

मालवीयजी के अनुसार—'मनुष्यों की जन्मदात्री माँ होती है। अतः बालक की प्रारम्भिक शिक्षा माँ से आरम्भ होती है। अस्तु, माँ के समान कोई दूसरा शिक्षक नहीं है। इसीलिए देश को जिस दिशा में ले जाना हो, उस प्रकार की शिक्षा की व्यापक व्यवस्था स्त्रियों के लिए की जानी चाहिए। स्त्री-शिक्षा द्वारा ही देश के भावी कर्णधारों का सम्यक् निर्माण सम्भव है।'

मदनमोहन मालवीय ने स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में परम्परागत रूढ़ियों द्वारा प्रचलित परम्पराओं के विपरीत उसकी विशेष आवश्यकता बताते हुए कहा था कि—'पुरुषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा का अधिक महत्त्व है, क्योंकि वे ही भारत की भावी सन्तति की माता हैं। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्त्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला-कौशल के नेताओं आदि की प्रथम शिक्षिका हैं। उनकी शिक्षा का प्रभाव भारत के भावी नागरिकों की शिक्षा पर विशेषरूप से पड़ेगा। महाभारत में कहा गया है—'माता के समान कोई शिक्षक नहीं है।'[४४]

माता की शिक्षा के मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक प्रभावों का महत्त्व निर्विवाद रूप से सिद्ध हो चुका है। मालवीयजी यह चाहते थे कि राष्ट्र और युग की आवश्यकता के अनुसार स्त्रियों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाय, जिससे राष्ट्र

की आवश्यकता के अनुसार भावी नागरिकों का सहज रूप से निर्माण हो सके। स्त्री-शिक्षा के महत्व के प्रति लोगों की अन्यमनस्कता के सम्बन्ध में मालवीयजी ने कहा था कि—'हम लोग अपनी बालिकाओं को बिना यह सोचे हुए कि उनको शिक्षा से हमें किस प्रकार की शक्ति की आवश्यकता है, वही विषय पढ़ने के लिए बाध्य करते हैं, जो नवयुवकों के लिए निर्धारित किये गये हैं'[४५] जबकि आवश्यकता इस बात की है कि राष्ट्र की भावी पीढ़ी की आवश्यकता के अनुसार, उसकी आपूर्ति के लिए योजनाबद्ध स्त्री-शिक्षा का विकास किया जाय।

स्त्री-शिक्षा की उद्देश्य-परकता के सम्बन्ध में मालवीयजी ने कहा था कि 'हमें सर्वप्रथम उनकी (स्त्रियों की) शिक्षा का उद्देश्य सर्वसम्मति से तय करना चाहिए। हमें यह निर्णय करना चाहिए कि किस प्रकार हम अपने प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति के उत्तम ज्ञान के साथ-साथ वर्तमान साहित्य तथा विज्ञान की शिक्षा को उन तक पहुँचा सकते हैं।'[४६] यहाँ हम देखते हैं कि मालवीयजी के शिक्षा की प्राचीन और आधुनिक शिक्षा के समन्वित महत्व के विचार के अनुसार स्त्री-शिक्षा में भी उनका सातत्य और परिवर्तनवादी आधुनिक विचारधारा दृष्टिगोचर होती है। वह अपने मानस की इसी शिक्षापद्धति का प्रसार करना चाहते थे।

मालवीयजी के अनुसार स्त्री-शिक्षा का स्वरूप

प्राचीनता और आधुनिकता से समन्वित स्त्री-शिक्षा के स्वरूप को अपनी गतिशील और परिवर्तनवादी विचारधारा के अनुसार स्पष्ट करते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'हमें स्त्रियों की शिक्षा में जीव-विज्ञान, चित्र-कला, संगीत-विज्ञान आदि की शिक्षा भी, साहित्य तथा संस्कृति के उत्तम ज्ञान के साथ देनी चाहिए। ....देश की स्त्रियों का किस प्रकार शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान किया जा सकता है, ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।'[४७] इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी की शिक्षा-नीति में स्त्रियों के विषय में शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान पर आधुनिक प्राकृतिक विज्ञानों की शिक्षा के साथ विशेष बल दिया गया है। यद्यपि मालवीयजी युवकों की शिक्षा में भी उपर्युक्त प्राचीन तथा आधुनिक शिक्षा-प्रणाली के समन्वित रूप पर बल देते हैं, तथापि यह राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार भारतीय संस्कृति और सभ्यता को जीवित रखने के लिए स्त्री-शिक्षा के सन्दर्भ में विशेष रूप से सतर्क दिखाई देते हैं और उन्होंने उनकी शिक्षा में भारतीय प्राचीन साहित्य तथा संस्कृति की शिक्षा की अनिवार्यता की सार्थकता आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसंग में अधिक आवश्यक बतायी है। उन्होंने देश के आदर्श की सुशृंखल अक्षुण्णता को राष्ट्र की भावी आवश्यकता के अनुसार स्थायी रखना अधिक आवश्यक माना है।

मालवीयजी ने भारत की आदर्शवादी परम्पराओं में निर्भीक स्त्रियों की चर्चा करते हुए कहा था—'क्या आप चाहते हैं कि हमारे देश में सावित्री, अरुन्धती,

मैत्रेयी, लीलावती और सुलभा आदि प्राचीन समय की स्त्रियों के समान विदुषी अथवा सुराज्य का प्रबन्ध करने वाली अहल्याबाई तथा झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई के समान निर्भीक सैनिक पुनः पैदा हों ? क्या आप ऐसी स्त्रियों को जन्म देना चाहते हैं, जिनमें प्राचीन तथा नवीन सभ्यता के सभी गुणों का सुन्दर संयोग हो।.........भारत के लिए स्वराज्य-प्राप्ति में शिक्षा का अभाव एक बहुत बड़ा रोड़ा है।'[48]

उपर्युक्त स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित अपने विचारों में उन्होंने शिक्षा द्वारा ऐसी स्त्रियों के निर्माण पर बल दिया है, जो उन्हीं के शब्दों में 'प्राचीन तथा नवीन सभ्यता के सभी गुणों का सुन्दर समन्वय हो।'[49] इस प्रकार मालवीयजी की शिक्षा-व्यवस्था प्रगतिशील और आधुनिक कही जा सकती है। साथ ही स्त्री-शिक्षा की प्राचीनता और आधुनिकता की समन्वयवादिता के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि मालवीयजी ने स्त्री-शिक्षा के उपर्युक्त स्वरूप चित्रण में भावी भारतीय समाज-रचना की भी परिकल्पना की थी, जिसका स्वरूप उनके उपर्युक्त स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी विचारों के अनुसार भारतीय राष्ट्रवादी समाज-रचना के साथ आधुनिकता का सामंजस्य और विकासशील गतिशीलता से युक्त हो। इसके आधार पर हम पाते हैं कि मालवीयजी एक दूरदर्शी शिक्षा-शास्त्री होने के साथ ही भारतीय राष्ट्रीयता की विचारधारा शिक्षा द्वारा उत्पन्न कराना चाहते थे।

निष्कर्ष

मालवीयजी के शिक्षा के प्रति विचारों के अध्ययन में हम देखते हैं कि शिक्षा की अपनी आधुनिक नीति को कार्यान्वित करने के लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी और साहित्य-दर्शन के साथ ही वैज्ञानिक, प्राविधिकी आदि आधुनिक विषयों के अध्यापन की विशेष व्यवस्था की थी, जो उनकी शिक्षा में परिवर्तनवादी आधुनिक विचारधारा की परिचायिका है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी शिक्षा-सम्बन्धी विचारधारा का मूर्तिमान् स्वरूप है। मालवीयजी के कथनानुसार—'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय आधुनिक ढंग का गुरुकुल है।'[50]

शिक्षा के माध्यम से वह राष्ट्रीय चेतना का एकीकरण और नव निर्माण करना चाहते थे। उनकी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी उपर्युक्त विचारधारा के अवलोकन से यह बात स्पष्ट होती है कि वह स्त्री-शिक्षा के माध्यम से आने वाली भावी पीढ़ी की सन्ततियों का इस प्रकार निर्माण चाहते थे, जो प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान से युक्त हो। वह शिक्षा के माध्यम से भारत में ऐसे 'व्यक्ति' के निर्माण के पक्षपाती थे, जो चरित्रवान् होने के साथ ही साथ आर्थिक,

प्राविधिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक ज्ञान से परिपूर्ण हो। वह इस योग्य हो कि अपनी जीविका प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता हो। उसे जीविका प्राप्त करने के लिए दर-दर की ठोकरें न खानी पड़ें। मालवीयजी के अनुसार–यदि शिक्षा द्वारा इस प्रकार के 'व्यक्ति' का निर्माण नहीं होता तो वह शिक्षा निरर्थक है। उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में आधुनिक वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा-व्यवस्था के माध्यम से ऐसा प्रयास करना चाहा था, जिससे उनकी उक्त व्यवस्था लागू हो सके। इंजीनियरिंग उपकरण, कृषि फार्म, डेयरी फार्म तथा आधुनिक एवं आयुर्वेदिक औषधियों के उत्पादन के साथ ही साबुन आदि आवश्यक वस्तुओं का अधिकाधिक उत्पादन करके, छात्रों तथा विश्वविद्यालयों के माध्यम से वह देश और समाज की आवश्यकता की सामग्रियों की आपूर्ति भी करना चाहते थे। उनके अनुसार—इस प्रकार की व्यवस्था से अध्ययन करनेवाले छात्रों में उत्पादन और आपूर्ति की व्यवस्था द्वारा आत्मबल का विकास होगा और युवक यहाँ से अपने पैरों पर खड़ा होना सीख सकेगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी की शिक्षा-सम्बन्धी विचारधारा समाज की आवश्यकता की आपूर्ति के व्यवहार पक्ष पर आधारित है। वह शिक्षा द्वारा ऐसे चरित्रवान् 'व्यक्ति' का निर्माण करना चाहते थे, जो अपने पैरों पर खड़ा होने की क्षमता रखता हो और आजीविका की भीख माँगते हुए दर-दर की ठोकरें न खाता हो। इस सम्बन्ध में वह चाहते थे कि जिस प्रकार प्रकृति नैसर्गिक शिक्षा द्वारा भोजन करना, चलना तथा समाजीकरण द्वारा भाषा बोलना, सांस्कृतिक व्यवहार आदि करना स्वतः सिखाती है, उसी प्रकार हमें शिक्षा द्वारा यह सिखा देना चाहिए कि इस जटिल समाज में व्यक्ति अपनी आजीविका अर्जित कर सके। इसके अभाव में मालवीयजी शिक्षा और शिक्षा पर किया गया व्यय निरर्थक मानते थे। यहाँ हम देखते हैं कि मालवीयजी शिक्षा-व्यवस्था के व्यावहारिक तथा आजीविकार्जनपरक आधुनिकतम शिक्षा की व्यवस्था के पक्ष में थे। शिक्षा में आमूल परिवर्तन-सम्बन्धी उनके विचार युग की माँग के अनुसार प्रगतिशील एवं आधुनिक हैं।

—: ० :—

सन्दर्भ

1. John Stuart Mill : quoted in Education and Sociology by Durkheim, p. 60, The Free Press Glencoe, Illinois (1959).
2. Report of the Education Commission (1964-66), p. 2.
3. S N Mukherjee, Education in India To-day and Tomorrow (1964), p. 2

4. L F. Crow and A. Crow : Introduction to Education. Printed : U S A , New York (1965).
5. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत), पृ० ६१६ ।
6. वही,पृ० ६१६ ।
7. प्रान्तीय कौसिल मे भाषण, सन् १९०७ ।
8. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), खण्ड ३, पृ० ११४ ।
9. प्रान्तीय कौसिल मे भाषण, सन् १९०७ ।
10. वही, सन् १९०७ ।
11. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूव उद्धृत), पृ० १० ।
12. B.L. Neugarten and H. Havighurst : Society and Education, Chapter II, pp. 288-465, Publication in U S.A. Ally and Bacon, Inc. Boston 1964.
13. महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व,(पूर्व उद्धृत),पृ० ६२३ ।
14. Theodore Brameld : Education As Power p. 1086, Faweet Publication, Inc. 67, West 44th Street, New York.
15. K M. Kapaddıa, Marriage and Family in India, On Joint Family, p. 24>, Oxford University Press, London (1958).
16. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), (सम्पादित), पृ० ४१ ।
17 वही, पृ० १५४-१५७ ।
18. वही, पृ० ४२ ।
19. वही, पृ० ४२-४३ ।
20. वही, पृ० ४३ ।
21. वही, पृ० ७९ ।
22. John Stuart Mill : quoted in Education and Sociology, by Durkheim, p. 60. The Free Press Glencoe, Illinois (1959).
23. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ४३ ।
24. वही, पृ० ४३ ।
25. वही, पृ० ४३ ।
26. वही, पृ० ४३ ।
27. वही, पृ० ५९ (दीक्षात भाषण १४ सितम्बर १९२९ ई०) ।
28. वही, पृ० ५६ ।
29. वही, पृ० ५७ ।
30. वही, पृ० ५७ ।
31. वही, पृ० ५७ ।
32. वही, पृ० ५८ ।

33. वही, पृ० ४७ ।
34. वही, पृ० ६८ ।
35. वही, पृ० ५९ ।
36. वही, पृ० ६३ ।
37. वही, पृ० ६३ ।
38. वही, पृ० ६३ ।
39 वही, पृ० ६० ।
40. वही, पृ० ६० ।
41. वही, पृ० ६० ।
42. वही, पृ० ६३ ।
43 वही, पृ० ६५ ।
44. वही, पृ० ६४ ।
45. वही, पृ० ६४ ।
46. वही, पृ० ६४ ।
47. वही, पृ० ६४ ।
48. वही, पृ० ६४ ।
49. वही, पृ० ६४ ।
50. वही, पृ० १० ।

— o —

अध्याय—८

मालवीयजी का नेतृत्व : राजनीतिक विचार एवं कार्य

मालवीयजी ने 'भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस' में उसके आरम्भिक काल में प्रवेश किया और लम्बी अवधि तक (आजीवन) उसका मार्ग दर्शन तथा नेतृत्व किया। उनके कांग्रेस मे प्रवेश काल मे कांग्रेस का लक्ष्य स्वराज्य-प्राप्ति के लक्ष्य से परे भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व और उसका पक्ष सरकार के सम्मुख प्रस्तुत करना था। उस काल में स्वराज्य तथा इसकी विस्तृत कार्य प्रणाली का वह स्वरूप नही था, जो बाद मे क्रमशः इसके उद्देश्य और कार्य के रूप में निर्धारित होता गया। कांग्रेस के इतिहास मे उसके कार्य का व्यापक स्वरूप बाद में प्रकाश में आता गया, जिसकी कल्पना इसके संस्थापक लार्ड ह्यूम प्रभृति अंग्रेजों के मन में नही रही होगी कि यही कांग्रेस आगे चलकर देश के स्वाधीनता संग्राम का मंच बन जायगी और अंग्रेजी राज्य के लिए घातक सिद्ध होगी। कांग्रेस का यह व्यापक स्वरूप क्रमशः आया था। महामना मालवीय भी कोई कार्य या परिवर्तन क्रमशः एक के बाद दूसरा स्टेप लेकर करने के पक्षपाती थे। उनका मत था कि जिस प्रकार अधिक गरम पदार्थ छूने के पूर्व पहले थोड़ा गरम, फिर धीरे-धीरे उससे अधिक गरम पदार्थ छूकर, क्रमशः अधिक गरम पदार्थ छूआ जा सकता है, उसी प्रकार कोई कार्य करने के लिए क्रमशः लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए। जैसे हरिजन-मन्दिर-प्रवेश की समस्या को ही ले लीजिए। पहले सवर्ण लोग हरिजनों को मन्दिर के द्वार तक भी नहीं फटकने देते थे—उस समय मालवीयजी ने उन्हें मन्दिर के गर्भ भाग के पास तक आकर दर्शन करने के पक्ष मे जनमत जागृत करके हरिजनो को उक्त अधिकार दिलाया और बाद मे उक्त अधिकार मिल जाने पर उन्होंने कहा कि सवर्ण भाइयो की ही भांति हरिजनों को भी देव-दर्शन का अधिकार है।[1] मालवीयजी का यह मत था कि जहाँ सवर्णों को हरिजनो के मन्दिर में प्रवेश के सम्बन्ध मे आपत्ति हो वहाँ हरिजन हठपूर्वक जाने का विरोध न लें। भगवान् शान्ति के लिए है, विरोध के लिए नही। मैं तो चाहता हूँ कि उनके (हरिजनों के) चार करोड़ घरों में मूर्तियाँ रखी हों।.........[2] वह यह नही चाहते थे कि हरिजनो को साधिकार बलपूर्वक मन्दिर प्रवेश कराया जाय और

वर्ण संघर्ष हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वरूप और कार्यप्रणाली के निर्धारण में भी उनकी यही गति रही है। आरम्भ में स्वराज्य-प्राप्ति उसका उद्देश्य नहीं था, किन्तु नेता की यह विशेषता होती है कि वह लक्ष्य को सम्मुख रखता है और क्रमश उसको प्राप्त करने का प्रयास करता है।

कांग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष १८८६ ई० में मालवीयजी अपने गुरु आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने कलकत्ता गये, वहाँ कांग्रेस के जन्मकाल में ही उन्होंने जो वक्तव्य दिया, उसकी ओर देश के कर्णधारों का ध्यान आकृष्ट हुआ और इस नवयुवक को कांग्रेस में प्रमुख स्थान मिल गया।

इस अवसर पर मालवीयजी ने कहा था कि 'ब्रिटिश प्रजा को प्रतिनिधित्व का जो मौलिक अधिकार है, वह अधिकार हमें भी मिलना चाहिए।' इस प्रकार मालवीयजी ने उस काल में जब कांग्रेस का उद्देश्य बहुत ही सीमित था, उसके मंच से देश के प्रतिनिधित्व की माग की, जो आगे चलकर आर्थिक और अन्त में पूर्ण स्वराज्य अर्जित करने में सफल हुई।

मालवीयजी का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक है कि सबका समाजशास्त्रीय अध्ययन करना एक ही शोध प्रबन्ध के विषय-क्षेत्र के परे की बात है।

नेतृत्व-गुण और मालवीयजी

विलियम ई० हेनरी द्वारा कथित 'उपलब्धि की इच्छा,सामाजिकता तथा कार्य स्थिरता, अधिकार स्वीकृति, निर्णायकता, निश्चयात्मकता, असफलता का भय एवं बचनों के बन्धनों से मुक्ति का गुण तथा वाल्ड होटी की दृष्टि में सफल कार्यकर्ता वह है, जो औसत से अधिक निक्षित हो, सामाजिक सगठनों का नेता हो, उच्च नैतिक स्तरों के लिए धर्म में रुचि रखता हो और अच्छा स्वास्थ्य रखता हो—'से सम्बद्ध आकर्षक व्यक्तित्व, चारित्रिक दृढ़ता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, भावुकता, उद्यमशीलता आदि नेता के नेतृत्व के लिए निर्धारित सभी गुण मदनमोहन मालवीय में वर्तमान थे। उपर्युक्त गुणों में कोई भी ऐसा गुण नहीं था, जो मालवीयजी में न रहा हो। विद्वानों ने मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान सभी क्षेत्रों में सामान्यरूप से उपर्युक्त लक्षणों को नेतृत्व के लिए आवश्यक माना है। मालवीयजी के नेतृत्व के परिवर्तनवादी विचार को व्यक्त करनेवाली विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए आगे उनके उपर्युक्त गुणों को व्यक्त करने वाले कार्यों की विवेचना प्रस्तुत की जायगी, जिससे उनके पुनर्जागरण एवं परिवर्तन के सन्दर्भ में राजनीतिक एवं नेतृत्व की विशेषताओं का विश्लेषण सम्भव हो सकेगा। उनके २८ दिसम्बर १८८६ ई० को दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता में दिये गये प्रथम भाषण के सम्बन्ध में लार्ड ह्यूम ने कहा था—'जिस वक्तृता के लिए कांग्रेस मण्डप में कई बार तालियाँ बजी और जिस वक्तृत्व को जनता ने बड़े उत्साह से सुना, वह उच्च

कुलीन ब्राह्मण पण्डित मदनमोहन मालवीय की वक्तृता थी। जिनके गौर वर्ण और मनोहर आकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित कर लिया और जिसने अचानक सभापति के बराबर की कुर्सी पर कूदकर ऐसा सुन्दर जोरदार और धारा प्रवाह व्याख्यान दिया कि सब लोग दंग रह गये।'[४]

उक्त प्रशंसित वक्तव्य से आरम्भ होता है, महामना मालवीयजी का राजनीतिक जीवन। सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय में उनके निम्नलिखित कार्यक्षेत्रों का अध्ययन निम्नलिखित खण्डों में प्रस्तुत किया जायगा :—

(क) संसदीय राजनीति एवं नेतृत्व,
(ख) राष्ट्रीय राजनीति एवं नेतृत्व, और
(ग) धार्मिक-सामाजिक राजनीति एवं उदार नेतृत्व।

(क) संसदीय राजनीति एवं नेतृत्व

प्रान्तीय कौंसिल

मालवीयजी १९०३ ई० से १९१२ ई० तक प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य थे। उस समय कौंसिल के कार्य बहुत सीमित थे। प्रान्तीय सरकारें कौंसिल में बहुत कम विधेयक प्रस्तुत करती थी। प्रत्येक वित्तीय बजट सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, उसी समय भारतीय सदस्यों को बोलने तथा बजट की कमियों पर प्रकाश डालने का अवसर मिलता था। उस समय की कौंसिल की कार्यवाही देखने से पता चलता है कि उक्त अवसर पर मालवीयजी ने ही सबसे अधिक समय का उपयोग किया है और बजट की कटु समीक्षा की है। उन्होंने अन्य प्रान्तों की तुलना में युक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) को राजस्व की कम धनराशि केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये जाने पर इसका घोर विरोध किया और विकास के लिए प्रान्त को अधिक धनराशि देने की मांग की।[५] इसी प्रकार जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य पर जो व्यय किया जाता था वह अत्यधिक पक्षपातपूर्ण था। सरकार के इस रवैये के कारण देश के इस प्रान्त की दयनीयता की चर्चा करते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'प्रति हजार जनसंख्या पर बम्बई सरकार २५३ रुपये शिक्षा पर व्यय करती है, किन्तु युक्त प्रान्त की सरकार केवल ९१ रुपये व्यय करती है। धनाभाव के कारण उसकी शैक्षिक योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो पा रही हैं। परिणामस्वरूप बम्बई और बंगाल में २२-२३ प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं और युक्त प्रान्त में १० प्रतिशत।'''' ''''इसी प्रकार स्वास्थ्य विषयक आंकड़े देकर मालवीयजी ने राजस्व के वितरण को न्यायपूर्ण बनाने पर बल दिया।[६]

वर्ग संघर्ष हो। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वरूप और कार्यप्रणाली के निर्धारण मे भी उनकी यही मति रही है। आरम्भ में स्वराज्य-प्राप्ति उसका उद्देश्य नही था, किन्तु नेता की यह विशेषता होती है कि वह लक्ष्य को सम्मुख रखता है और क्रमश उसको प्राप्त करने का प्रयास करता है।

कांग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष १८८६ ई० मे मालवीयजी अपने गुरु आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेने कलकत्ता गये, वहाँ कांग्रेस के जन्मकाल में ही उन्होने जो वक्तव्य दिया, उसकी ओर देश के कर्णधारो का ध्यान आकृष्ट हुआ और इस नवयुवक को कांग्रेस में प्रमुख स्थान मिल गया।

इस अवसर पर मालवीयजी ने कहा था कि 'ब्रिटिश प्रजा को प्रतिनिधित्व का जो मौलिक अधिकार है, वह अधिकार हमें भी मिलना चाहिए।' इस प्रकार मालवीयजी ने उस काल मे जब कांग्रेस का उद्देश्य बहुत ही सीमित था, उसके मच से देश के प्रतिनिधित्व की माग की, जो आगे चलकर आशिक और अन्त मे पूर्ण स्वराज्य अर्जित करने में सफल हुई।

मालवीयजी का कार्यक्षेत्र इतना व्यापक है कि सबका समाजशास्त्रीय अध्ययन करना एक ही शोध प्रबन्ध के विषय-क्षेत्र के परे की बात है।

नेतृत्व-गुण और मालवीयजी

विलियम ई० हेनरी द्वारा कथित 'उपलब्धि की इच्छा,सामाजिकता तथा कार्य स्थिरता, अधिकार स्वीकृति, निर्णायकता, निश्चयात्मकता, असफलता का भय एवं बचनो के बन्धनों से मुक्ति का गुण तथा वाल्ड डोटी की दृष्टि मे सफल कार्यकर्ता वह है, जो औसत से अधिक शिक्षित हो, सामाजिक सगठनों का नेता हो, उच्च नैतिक स्तरो के लिए धर्म मे रुचि रखता हो और अच्छा स्वास्थ्य रखता हो—'से सम्बद्ध आकर्षक व्यक्तित्व, चारित्रिक दृढता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, भावुकता, उद्यमशीलता आदि नेता के नेतृत्व के लिए निर्धारित सभी गुण मदनमोहन मालवीय मे वर्तमान थे। उपर्युक्त गुणो मे कोई भी ऐसा गुण नही था, जो मालवीयजी में न रहा हो। विद्वानो ने मनोविज्ञान तथा समाज विज्ञान सभी क्षेत्रो में सामान्यरूप से उपर्युक्त लक्षणो को नेतृत्व के लिए आवश्यक माना है। मालवीयजी के नेतृत्व के परिवर्तनवादी विचार को व्यक्त करनेवाली विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए आगे उनके उपर्युक्त गुणो को व्यक्त करने वाले कार्यों की विवेचना प्रस्तुत की जायगी, जिससे उनके पुनर्जागरण एव परिवर्तन के सन्दर्भ मे राजनीतिक एवं नेतृत्व की विशेषताओं का विश्लेपण सम्भव हो सकेगा। उनके २८ दिसम्बर १८८६ ई० को दादाभाई नौरोजी की अध्यक्षता मे दिये गये प्रथम भाषण के सम्बन्ध मे लार्ड ह्यू म ने कहा था—'जिस वक्तृता के लिए कांग्रेस मण्डप में कई बार तालियाँ बजी और जिस वक्तृत्व को जनता ने बड़े उत्साह से सुना, वह उच्च

कुलीन ब्राह्मण पण्डित मदनमोहन मालवीय की वक्तृता थी। जिनके गौर वर्ण और मनोहर आकृति ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आर्कपित कर लिया और जिसने अचानक सभापति के बराबर की कुर्सी पर कूदकर ऐसा सुन्दर जोरदार और धारा प्रवाह व्याख्यान दिया कि सब लोग दग रह गये।'[4]

उक्त प्रशसित वक्तव्य से आरम्भ होता है, महामना मालवीयजी का राजनीतिक जीवन। सुविधा की दृष्टि से इस अध्याय मे उनके निम्नलिखित कार्यक्षेत्रो का अध्ययन निम्नलिखित खण्डो मे प्रस्तुत किया जायगा :—

(क) संसदीय राजनीति एव नेतृत्व,
(ख) राष्ट्रीय राजनीति एव नेतृत्व, और
(ग) धार्मिक-सामाजिक राजनीति एवं उदार नेतृत्व।

(क) संसदीय राजनीति एवं नेतृत्व

प्रान्तीय कौंसिल

मालवीयजी १९०३ ई० से १९१२ ई० तक प्रान्तीय कौंसिल के सदस्य थे। उस समय कौंसिल के कार्य बहुत सीमित थे। प्रान्तीय सरकारें कौंसिल मे बहुत कम विधेयक प्रस्तुत करती थी। प्रत्येक वित्तीय बजट सरकार द्वारा प्रस्तुत किया जाता था, उसी समय भारतीय सदस्यो को बोलने तथा बजट की कमियों पर प्रकाश डालने का अवसर मिलता था। उस समय की कौंसिल की कार्यवाही देखने से पता चलता है कि उक्त अवसर पर मालवीयजी ने ही सबसे अधिक समय का उपयोग किया है और बजट की कटु समीक्षा की है। उन्होने अन्य प्रान्तो की तुलना मे युक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) को राजस्व की कम धनराशि केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये जाने पर इसका घोर विरोध किया और विकास के लिए प्रान्त को अधिक धनराशि देने की मांग की।[5] इसी प्रकार जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य पर जो व्यय किया जाता था वह अत्यधिक पक्षपातपूर्ण था। सरकार के इस रवैये के कारण देश के इस प्रान्त की दयनीयता की चर्चा करते हुए मालवीयजी ने कहा था कि 'प्रति हजार जनसख्या पर बम्बई सरकार २५३ रुपये शिक्षा पर व्यय करती हैं, किन्तु युक्त प्रान्त की सरकार केवल ९१ रुपये व्यय करती है। धनाभाव के कारण उसकी शैक्षिक योजनाएँ कार्यान्वित नहीं हो पा रही हैं। परिणामस्वरूप बम्बई और बंगाल मे २२-२३ प्रतिशत बच्चे शिक्षा प्राप्त करते हैं और युक्त प्रान्त मे १० प्रतिशत।'''''''इसी प्रकार स्वास्थ्य विषयक आँकडे देकर मालवीयजी ने राजस्व के वितरण को न्यायपूर्ण बनाने पर बल दिया।[6]

इसी प्रकार उन्होंने लगान में कमी करने के लिए भी सरकार पर जोर दिया और लगान में कमी की माँग की। इतना ही नहीं, उन्होंने राजस्व के वितरण की कमियों की ओर भी सरकार तथा जनता का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने शिक्षा और स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रान्तों के आधार पर बँटवारे के माध्यम से होने वाली सामाजिक विसंगतियों को दूर करने का भी प्रयास किया। कृषकों के ऊपर कर-भार की वृद्धि को दूर करने के लिए उन्होंने व्यापक प्रयास किया। उनका उक्त दृष्टिकोण समाजविज्ञान की दृष्टि से समाज के वर्गभेद को दूर करनेवाला सुधारवादी कदम कहा जा सकता है। विकास के लिए आवश्यक सिंचाई, कृषि तथा औद्योगिक शिक्षा के प्रसार पर भी उन्होंने व्यापक बल दिया और व्यवस्था की माँग की। मालवीयजी ने रूस के वित्तमन्त्री काउण्ट डिविट के इन विचारों से सहमति व्यक्त की कि 'उपभोग के क्षेत्र में राज्य जनता के लिए सस्ते और उपयुक्त माल उपलब्ध करे तथा उत्पादन-क्षेत्र में वह देश की उत्पादक शक्ति का विकास करे।.......घरेलू उद्योगों के संरक्षण की भी उन्होंने माँग की।........[8] उक्त आधार पर उन्होंने १८९९ ई० में विदेशी चीनी पर आयात शुल्क लगाकर देशी चीनी उत्पादन को बढ़ावा देने की माँग की।[9]

सन् १९०७ में वित्तीय व्यवस्था की समीक्षा करते हुए उन्होंने कुमाऊँ में प्रचलित बेगार प्रथा की कटु आलोचना की और इसे ब्रिटिश शासन के लिए कलंक बताया। इसी सन्दर्भ में उन्होंने भारतीय सेवाओं में देश के नवयुवकों की नियुक्ति की माँग की।[10]

मालवीयजी के वित्त-सम्बन्धी उपर्युक्त विचार आधुनिक समाज के प्रगतिशील और प्राचीन से नवीन परिवर्तनवादी विचारधारा से किसी भी प्रकार कम महत्त्व-पूर्ण नहीं हैं। पराधीनता के उस युग में जब भारतीय समाज की चेतना अस्तित्व-हीन थी, यह बात माननी ही पड़ेगी कि ऐसे समय में देश की जनता में उपर्युक्त क्षेत्रों के कार्यों द्वारा मालवीयजी ने आधुनिकतम विचारधारा के आर्थिक और सामाजिक चिन्तन और समाज-व्यवस्था का स्वरूप रखते हुए उसके दोषों की ओर सरकार तथा जनता का ध्यान आकृष्ट किया और युक्त प्रान्त के विकास का पथ प्रशस्त किया। ये बातें उनकी परिवर्तनवादी तथा सुधारवादी विचारधारा का स्वरूप निर्धारित करते हुए उसकी सामाजिकता की भी पुष्टि करती हैं।

भारतीय विधान कौंसिल

सन् १९१० में मालवीयजी प्रान्तीय कौंसिल के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा केन्द्रीय कौंसिल के सदस्य निर्वाचित हुए और निरन्तर १९२० ई० तक और उसके बाद भी निर्वाचित होते रहे। उस समय निर्वाचित सदस्यों की संख्या सरकार द्वारा मनोनीत सदस्यों की संख्या से कम थी। निर्वाचित सदस्यों में बहुत-से लोग पृथक् निर्वाचन पद्धति द्वारा किसी विशिष्ट आर्थिक हित या सम्प्रदाय का

प्रतिनिधित्व करते थे, उनमें अधिकांश सरकार के समर्थक ही होते थे। इनमें से कुछ मुसलमान सदस्य साधारण चुनाव क्षेत्रों में निर्वाचित सदस्यों से मिलकर काम करना तथा सरकार की नीति के अतिरिक्त जनता के हितों को पुष्ट करना अपना कर्तव्य समझते थे, किन्तु किसी प्रश्न पर भी प्रगतिशील शक्तियाँ सरकार के विरुद्ध एक-चौथाई से अधिक मत एकत्र नहीं कर पाती थीं। प्रायः सरकारी पक्ष अपनी औपनिवेशिक नीति के कारण निर्वाचित सदस्यों की तर्क-युक्त बातों का प्रत्युत्तर देने के बजाय अपने विशेष मत के माध्यम से निर्वाचित सदस्यों की युक्ति और तर्कों को रद्द कर दिया करता था। इस प्रक्रिया को देखकर १९१० ई० में गोपाल कृष्ण गोखले महोदय ने क्षुब्ध होकर वाइसराय को सम्बोधित करते हुए असेम्बली में कहा था—*'हम अच्छी तौर से जानते हैं कि जब एक बार सरकार ने किसी विषय पर विचार निश्चित कर लिया है, तब कौंसिल में गैर-सरकारी सदस्य चाहे कुछ भी कहें, वे उस निर्णय को बदलवाने में व्यावहारिक दृष्टि से असमर्थ होते हैं।'*[११] इस प्रकार उस युग में भारतीय संसद् का स्वरूप ही भिन्न था, उसमें कार्य करना तथा भारतीयों के स्वहित को अकेले प्रस्तुत करना सामान्य बात नहीं थी। निःसहाय भारतीयों के कल्याण और समृद्धि के लिए उनकी ओर से प्रशासन के सम्मुख अपने हितों को प्रस्तुत करना एक समस्या थी। ऐसे समय में मालवीयजी तथा उनके समकालीन भारतीय सांसदों ने जो कुछ भी तर्क-वितर्क प्रस्तुत किया और लोक हित की धाराओं को पारित कराया वह उनकी बौद्धिक कुशलता की ही परिचायक है। इस सम्बन्ध में महामना मालवीय का योगदान प्रमुख था। उन्होंने जन-कल्याण, शिक्षा, सामाजिक गतिविधियों और भारतीय राजनीतिक उद्देश्यों से सम्बन्धित अनेक विधेयकों को पारित कराया तथा जन-जागृति पैदाकर नौकरशाही द्वारा भारतीय समाज-व्यवस्था का गला घोटने वाले अनेक विधेयकों को रद्द कराया। जनहित की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए मालवीयजी ने सरकार की सैनिक, आर्थिक और वित्तीय नीतियों तथा गतिविधियों की रचनात्मक समीक्षा करते हुए अनेक प्रगतिशील नीतियों का निर्धारण भी कराया, जैसे—उन्होंने यह माँग की कि सैनिक और प्रशासनिक व्यय घटाकर जनहितकारी निर्माण कार्यों पर अधिक धन व्यय किया जाय, आर्थिक नीतियों को अधिक जनहितकारी बनाया जाय तथा वित्तीय नीतियों और व्यवस्था में ऐसा परिवर्तन किया जाय, जिससे निर्धन वर्ग पर करों का भार कम-से-कम पड़े। विधि-विधान देश के आर्थिक और सांस्कृतिक निर्माण में सहायक होने चाहिए। इस सम्बन्ध में उन्होंने जनवरी १९११ ई० में गोखले महोदय के इस प्रस्ताव का समर्थन किया कि सरकारी व्यय की जाँच के लिए सरकारी और गैरसरकारी सदस्यों की एक जाँच समिति नियुक्त की जाय। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि पिछले २५-३० वर्षों के अन्दर सरकारी व्यय दुना हो गया है उसे कम करना आवश्यक है।[१२]

सन् १९१४ ई० में उन्होंने माँग की कि सरकार सैनिक, प्रशासनिक तथा अनुत्पादक व्यय को कम करके शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य तथा देश के साधनों एवं उद्योगों के अभिवर्धन में अधिक धन व्यय करे।

कर नीति, राष्ट्रीयकरण और महामना मालवीय

मालवीयजी कर नीति का ऐसा पुनर्गठन चाहते थे, जिससे निर्धन वर्ग पर इसका बोझ न्यूनतम पड़े तथा समृद्धिशाली व्यक्तियों पर उसका भार अधिक पड़े।[13] वह क्रमिक आयकर (gratuated income tax) को उत्कृष्ट रूप से न्यायसंगत समझते थे।[14] उनके अनुसार–यह स्वयंसिद्ध है कि जो व्यक्ति शासन से सबसे अधिक लाभ उठाता है, उसे उसके सम्भरण के लिए अपनी आय के अनुपात में सर्वाधिक अंशदान करना चाहिए।[15] यहाँ हम यह देखते हैं कि मालवीयजी का विचार मनु के विचारों से मिलता है। मनु ने यह व्यवस्था दी है कि लाभांश के अनुसार ही करों का निर्धारण किया जाना चाहिए।[16] किन्तु दूसरे स्थल पर भारतीय जाति-व्यवस्था स्तरीकरण के प्रसंग में मनु ने अपनी वर्ण-व्यवस्था में ब्राह्मण से कर न लेने का विधान किया है।[17] मालवीयजी ने यहाँ अपने परिवर्तनवादी विचार में उक्त शास्त्राज्ञा का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है और कर निर्धारण के प्रसंग में उन्होंने परिवर्तनवादी विचार को अंगीकार करते हुए समाज को धनिक और निर्धन वर्ग में देखा है तथा निर्धन वर्ग को करों के बोझ से मुक्त कराने का अथवा करों का बोझ न्यून कराने का प्रयास किया है।

मालवीयजी ने माँग की कि देश के उद्योगों की रक्षा और विकास सरकार की शुल्क नीति का लक्ष्य हो। आयात शुल्क और निर्यात शुल्क की समीक्षा करते हुए उन्होंने विदेशी माल पर संरक्षण शुल्क लगाने की माँग की। उन्होंने कहा—'किसी देश के लिए सब समय और सब परिस्थितियों में न संरक्षण और न ही स्वच्छन्द व्यापार लाभदायक होता है। बदली हुई परिस्थितियों में प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र को आयात नीति में हेर-फेर करना पड़ता है। वर्तमान परिस्थिति में देशज उद्योगों के हित में संरक्षण आयात शुल्क लगाना अनिवार्य है।[18] उन्होंने स्पष्टरूप से उपभोक्ताओं को उद्योगों की रक्षा के लिए आयात शुल्क में वृद्धि द्वारा सस्ती सामग्रियाँ उपलब्ध न होने के भार को विकासशील देशों की भाँति (जनता को) वहन करने की बात कही है। इसी प्रसंग में उन्होंने चीनी उद्योगों के संरक्षण के लिए आयातित चीनी पर आयात शुल्क बढ़ाने की माँग की, जिससे देशी चीनी उद्योगों का विकास सम्भव हो सके। इसी प्रकार उन्होंने सूती कपड़ों पर से उत्पादन शुल्क उठा लेने की माँग की थी।[19] भारत के आर्थिक विकास के लिए मालवीयजी ने सकारात्मक और औद्योगिक नीति का अनुसरण आवश्यक बताया। उनकी माँग थी कि सरकार देश के उद्योगीकरण पर पर्याप्त ध्यान दें।[20] उनके विचार से देश को उद्योग-धन्धों में स्वतन्त्र होने के लिए प्रयत्न

करना चाहिए तथा उस समय तक सन्तुष्ट नही होना चाहिए, जब तक वे सब वस्तुएँ तैयार न कर सकें, जिनकी हमे आवश्यकता है तथा जिन्हें तैयार करने के लिए आवश्यक भौतिक साधन देश मे वर्तमान है। वह चाहते थे कि सरकार एक स्टेट बैंक खोले तथा रेलो का प्रबन्ध भी वह अपने हाथ मे ले ले। बैंक के माध्यम से देशी उद्योगों को चलाने मे सरकारी कोष का उपयोग हो।[२१] उन्होने रेलों के राष्ट्रीयकरण पर बल देते हुए उसके राष्ट्रीय हित के उपयोग और लाभ पर व्यापक रूप से ध्यान आकर्षित किया।[२२] इस प्रकार रेलों पर कम्पनी का पूँजीवादी अधिकार समाप्त करने की दिशा मे उन्होने सबसे पहले देशवासियों का ध्यान आकृष्ट किया जो उनकी प्रगतिशील तथा आधुनिक समाज-व्यवस्था की विचारधारा की ही परिचायक है।

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। देश की ८५ प्रतिशत जनसख्या कृषि पर आधारित है। मालवीयजी ने निर्धन किसान वर्ग की आर्थिक दयनीय स्थिति की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए ३० से २५ प्रतिशत मालगुजारी घटाने की माँग की और सिंचाई व्यवस्था में विस्तार करने की दिशा में सरकार को अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने किसानों के हितों की रक्षा के लिए ऋण की व्यवस्था तथा न्यूनतम ब्याज दर निर्धारण एव नियंत्रण पर भी बल दिया।[२३]

जमीन्दारी व्यवस्था का विरोध तथा स्थायी बन्दोबस्त की अर्थतंत्रीय नीति

मालवीयजी को अर्थतंत्रीय नीति प्रगतिशील समाजवादी विचारधारा पर आधारित थी। उस युग मे जबकि बहुसख्यक प्रबुद्ध वर्ग जमीन्दारी व्यवस्था के यथास्थितिवाद का समर्थक था, मालवीयजी ने मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त की माँग की। साथ ही उन्होंने यह भी माँग की कि कृषकों पर लगान पचीस-तीस प्रतिशत कम कर दिया जाय तथा इसी घटी दर की मालगुजारी का स्थायी बन्दोबस्त किया जाय।[२४]

उन्होंने कृषि आयोग के समक्ष गवाही देते हुए कहा कि मैने गत निर्वाचन के समय जमीन्दारों से स्पष्ट शब्दो मे कहा था कि यदि आप मेरे साथ काम करना चाहते हैं, तो आपको अपने काश्तकारो के साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करना होगा।[२५]

मालवीयजी ने आयोग से यह भी कहा था कि मैं चाहता हूँ कि कृषकों को अधिक समृद्ध तथा उच्च जीवन-यापन की सुविधा प्राप्त हो.........उन्हें सरकार के प्रशासनिक अधिकारियों तथा पुलिस अधिकारियों एव जमीन्दारों और उनके कारिन्दो की ओर मुँह उठाकर बात करने की शिक्षा दी जाय, उन्हें बताया जाय कि उन्हे नागरिकता के वे ही अधिकार प्राप्त है, जो उनसे अधिक सम्पन्न संगी साथियों को प्राप्त है।[२६]

जमीन्दार प्रतिनिधित्व विरोध

दिसम्बर १९०९ ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्षता करते हुए मालवीयजी ने कहा था—'मध्यमवर्गीय शिक्षित वर्ग के साथ, जिसने राजनीतिक सुधारो के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया है, न्याय नही किया गया है। उनकी उपेक्षा करते हुए जमीन्दारो को अधिक प्रतिनिधित्व देना सर्वथा अनुचित है। उन्होने कहा—धन या आय का अधिकार निश्चित रूप से यह नही बताता कि मनुष्य योग्य है और आचरण की परीक्षा तो इससे बिलकुल ही नही हो सकती। यह स्वयं किसी मनुष्य मे उसके साथियों का विश्वास पैदा नही करता।[27] इस व्यवस्था के कारण तो दादाभाई नौरोजी, गोखले जैसे नि स्वार्थ देशभक्त प्रान्तीय कौसिल के सदस्य नही हो सकते।[28] उन्होने मनु का उल्लेख करते हुए कहा था—'इसके अनुसार–विद्या सबसे ऊँची योग्यता है और धन का स्वामित्व सबसे नीचा है। रेगूलेशस ने इस क्रम को बदल ही नही डाला है, वरन् विद्या को योग्यता–श्रेणी से निकाल दिया है।[29] इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी का विचार पूर्णरूपेण समाजवादी था।

वसिष्ठ, मनु, नारद और व्यास की पुराकालिक समाज-व्यवस्था का उल्लेख करते हुए उन्होने बताया कि समाज-व्यवस्थापकों तथा भारतीय मनीषियों के मत मे १५ प्रतिशत वार्षिक ब्याज की उचित दर है। विशेष परिस्थितियो मे ही उसमे वृद्धि कर २४ प्रतिशत प्रतिवर्ष लिया जा सकता है। इस प्रसग मे उन्होंने किसानो के लिए ब्याज की बढी हुई दर को उनकी कमर तोडनेवाली बताया और सरकार से बैंकों के माध्यम से सस्ते ब्याज पर ऋण देने की व्यवस्था कृषकों की स्थिति सुधारने के लिए आवश्यक बतायी।[30]

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और उनका प्रगतिशील स्वरूप

अनिवार्य शिक्षा पर मालवीयजी ने १८ मार्च १९१० ई० मे प्रस्तुत गोखले के प्रस्ताव का जोरदार समर्थन किया। उनके अनुसार ६ वर्ष से १० वर्ष तक के बालक और बालिकाओ को अनिवार्यरूप से शिक्षा दी ही जानी चाहिए, किन्तु इस सम्बन्ध मे इस शिक्षा को नि-शुल्क बनाने पर भी उन्होने बल दिया था और जनता को इसके फलस्वरूप पडने वाला कर-भार वहन करने के लिए तैयार रहने के निमित्त प्रेरित किया था।

अनिवार्य कन्या शिक्षा

मालवीयजी बालिकाओ की अनिवार्य शिक्षा के प्रति भी जागरूक थे। उनके मतानुसार पर्दा प्रथा के कारण बहुत-से नगरो मे अनिवार्य स्त्री-शिक्षा कठिन है, परन्तु जहाँ पर्दाप्रथा नही है, वहाँ शिक्षा को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए। परम्परावादी तथा सरकारी निहित-स्वार्थियों के कारण उक्त विधेयक पारित नही हो सका था, परन्तु मालवीयजी ने इसके लिए व्यापक प्रयास किया था। यहाँ वे

सामाजिक परम्परावादियों को अनिवार्य शिक्षा के बोझ से बोझिल नही करना चाहते थे। वे नही चाहते थे कि इससे पर्दाप्रथा के समर्थक अभिभावकों की भावना को ठेस लगे। इस प्रकार उनकी किसी पर बलपूर्वक कोई नयी बात लादकर उसकी परम्परागत भावना को आन्दोलित न करने की भावना और मत की पुष्टि तो होती है, किन्तु परिवर्तन को प्रगतिशील लोगो पर लागू करने के बाद उसके लाभ और प्रचार से इसके विरोधियों का ध्यान आकृष्ट अवश्य होगा और देश मे शिक्षा का व्यापक प्रसार होगा, ऐसा उनका विश्वास था। अतः इसके लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील थे। इस प्रकार हम पाते हैं कि किसी कार्य के लिए बल प्रयोग की अपेक्षा वह प्रचार-प्रसार द्वारा कार्य का महत्व समझाकर जनमानस को प्रभावित करने के पक्षपाती थे।

प्रतिज्ञावद्ध कुलीप्रथा–श्रमिकों का शोषण

सन् १९१० मे गोखले और मालवीयजी ने नेटाल के लिए प्रतिज्ञा-बद्ध कुलियों की भरती बन्द करने का जोरदार प्रस्ताव रखा, जो सरकार द्वारा आंशिक रूप से स्वीकार कर लिया गया। मालवीयजी के मतानुसार—इकरारनामे की शर्तें तथा उसके अनुसार दण्ड-व्यवस्था प्रतिज्ञावद्ध श्रमिक की स्वतंत्रता का अपहरण है, जो उसे (कुलीयों को) प्रतिबन्धित दास की भाँति जीवन बिताने को बाध्य करती है।"""उसे नाना प्रकार के अत्याचारो को सहन करना पड़ता है।[31]

उन्होने इस प्रथा के विरोध मे कहा था—'प्रतिज्ञा-पत्र' भ्रामक होते हैं। उनकी भाषा समझने की क्षमता कुलियों मे नहीं है और न ही कुलियो मे उन अमानुष शर्तों को पालन करने की क्षमता ही है।"""कुलीप्रथा मनुष्य मात्र के लिए अभिशाप है। अतः उसे सुधारने की अपेक्षा समूल नष्ट करना है।'.....[32]

सरकारी आश्वासन

सरकार ने मालवीयजी के घोर विरोध के कारण यह मानना स्वीकार किया कि औपनिवेशिक श्रमिको की वैकल्पिक व्यवस्था हो जाने पर वह इसे समाप्त कर देगी। परन्तु एक वर्ष तक सरकार केवल आश्वासन देती रही, कुछ किया नही।

अन्त मे २३ सितम्बर १९१६ ई० मे मालवीयजी ने सरकार को नोटिस दी कि कौंसिल मे प्रतिज्ञावद्ध कुलीप्रथा को समाप्त करने के लिए वह विधेयक प्रस्तुत करना चाहते है। सरकारी अधिकारियो को युद्धकाल मे मालवीयजी का उक्त नोटिस देना बुरा लगा। वे उस समय कौंसिल मे ऐसे विषय की चर्चा नही होने देना चाहते थे। किन्तु मालवीयजी अपनी बात पर दृढ़ रहे और उन्होने दिल्ली की एक विशाल जनसभा मे इस प्रथा को तत्काल समाप्त करने की माँग की। उनके समर्थन मे गाधीजी ने सरकार को चेतावनी दी कि मई, १९१७ ई० तक यह प्रथा समाप्त न की गयी तो इसके विरुद्ध सत्याग्रह किया जायगा।[33] सरकार ने घबरा-

कर १ अप्रैल, १९१७ को अस्थायी रूप से तथा १ जनवरी, १९२० ई० को स्थायी रूप से इस प्रथा को समाप्त कर दिया।[३४]

मालवीयजी के प्रयासो द्वारा इस प्रकार की भारतीय श्रमिकों की निर्धनता और विवशता के आधार पर लागू की गयी एक प्रथा का संवैधानिक समापन उनकी चेतना और प्रगतिशील विचारो की पुष्टि करता है। इसी प्रकार आर्विन बोस्काक का मत है कि सामाजिक परिवर्तन से हमारा तात्पर्य उस बोधगम्य प्रक्रिया से है, जिसमें किसी निश्चित समाज-व्यवस्था की संरचना एवं प्रकार्य में महत्वपूर्ण परिवर्तन या हेर-फेर होता है। मालवीयजी की विचारधारा महत्वपूर्ण सामाजिक-व्यवस्था मे परिवर्तन की एवं सुधारवादी थी, क्योंकि वे समाज-व्यवस्था के प्रकार्यों में अन्यान्य प्रकार से हेर-फेर के लिए सदैव प्रयत्नशील दिखायी देते है।

प्रेस विधेयक का विरोध

सन् १९१० में गवर्नर जनरल और उनकी कार्य परिषद् ने प्रेस विधेयक (ऐक्ट) पारित कराने का निश्चय किया, जिसमें प्रेसो की स्वतंत्रता पूर्णरूपेण समाप्त करने की व्यवस्था थी। ८ फरवरी, १९१० ई० में मालवीयजी ने प्रेस विधेयक का डट कर विरोध किया। स्थिति की गम्भीरता को देखते हुए गोखले ने उन्हें सलाह दी कि वे विरोध न करें, अन्यथा उन्हे सरकार के कोप का भाजन बनना पड़ेगा, परन्तु मालवीयजी अपनी बात पर दृढ़ रहे। परिणामस्वरूप वह विधेयक १६ मतों के विपरीत ४२ मतों से रद्द हो गया।[३५] इस प्रकार जन-चेतना के नेता मालवीयजी की विजय हुई। गोखले आदि राष्ट्रीय नेता इस प्रसग में मालवीयजी के विपक्ष मे थे। इस पर देशी पत्र-पत्रिकाओं मे मालवीयजी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी और गोखले को कायर तथा सरकार-परस्त कहा गया। मालवीयजी ने जब यह समाचार पढा तो उन्होने कहा कि वैचारिक मत-वैषम्य के कारण देश-भक्त गोखले राष्ट्रद्रोही नही कहे जा सकते। उनके लिए ऐसे वाक्यो का प्रयोग सर्वथा निन्दनीय है। इस प्रकार मालवीयजी अपने विरोध तथा वैचारिक मतान्तर को विरोध का कारण नही मानते थे। उनके मतानुसार—सही जनतंत्र में वैचारिक मत-मतान्तर होना अपरिहार्य है। इस प्रकार मालवीयजी को हम पक्ष-प्रतिपक्ष के प्रतिपादक नेता के रूप मे पाते है।

भारत रक्षा तथा रौलेट बिल का विरोध

सन् १९१४ के विश्वयुद्ध के मध्य सरकार ने कौंसिल में 'भारत रक्षा' विधेयक प्रस्तुत किया। मालवीयजी ने मानवीय-स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए विधेयक की कुछ धाराओ का विरोध किया। उन्होने यह तो स्वीकार किया कि युद्ध की विषम परिस्थिति में देश-रक्षा के लिए किसी सीमा तक विशिष्ट अधिकारों का प्रयोग अनिवार्य है, किन्तु इनके अनुसार—कानून द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा भी

आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे उन्होंने वडे ही क्रान्तिकारी और जनोपयोगी सशोधन प्रस्तुत किये, जिनसे व्यक्ति स्वातंत्र्य के महत्व पर प्रकाश पडता है।[३६]

सन् १९१९ मे मालवीयजी ने फौजदारी कानून संगोधन विधेयक (रौलेट बिल) का घोर विरोध किया, किन्तु सरकार द्वारा अपने सदस्यों की संख्या के बल पर विधेयक पारित करा लेने पर उन्होने अन्य तीन सदस्यों के साथ त्याग-पत्र दे दिया। बाद मे वह अपने मतदाताओ का पुन: विश्वास प्राप्त कर कौंसिल मे वापस आये और बड़े ही तर्क-संगत ढग से पजाब के गवर्नर सर माइकेल ओडायर तथा जेनरल डायर के अत्याचारों के लिए भारत सरकार तथा पंजाब सरकार की निन्दा की। इस अवसर पर उन्होने वाइसराय लार्ड चेम्स फोर्ड के त्यागपत्र की माँग की तथा पंजाब हत्याकाड के उत्तरदायी अभियुक्त ओडायर तथा डायर को क्षमा करनेवाले इस विधेयक का घोर विरोध किया।[३७]

सेना तथा सेवा में रंगभेद और प्रजाति भेद का विरोध

सन् १९१६ मे इण्डियन डिफेन्स फोर्स बिल और बजट पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मालवीयजी ने माँग की कि सेना के सभी पदो पर भारतीयो और यूरोपियनो की प्रतिष्ठा (पोजिशन) समान हो। भारतीयो को अपनी योग्यता के आधार पर सेना मे उच्च पद प्राप्त करने का अधिकार हो और प्रजातीय विभेद भाव समाप्त किये जायें।[३८]

इसी प्रकार मालवीयजी ने लोक सेवाओ मे भारतीयों के प्रवेश के लिए कम-से-कम ५० प्रतिशत स्थानो की माँग की। उन्होने उक्त परीक्षाओं का ब्रिटेन मे आयोजित करने का विरोध किया और देश मे ही इसके आयोजन की माँग की। साथ ही उनकी यह भी माँग थी कि लन्दन मे आयोजित परीक्षाओ मे भी भारतीयों को प्रवेश दिया जाय। इसी तरह की माँग उन्होने पुलिस आदि सेवाओं के लिए भी की थी। युद्ध का वृहत् बोझ (डेढ़ अरब रुपये) भारत द्वारा देने की अंग्रेजो की माँग को भी भारत की निर्धन जनता के लिए कमर तोड की संज्ञा देते हुए (उन्होंने) पराधीन भारत की स्थिति स्पष्ट की और उक्त कर न लगाने की माँग की।



उपर्युक्त राष्ट्रीय तथा सुधारवादी कार्यों के अतिरिक्त मालवीयजी ने कौसिल में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये, जो ब्रिटिशकालीन भारत के इतिहास मे उनके परिवर्तन और सुधारवादी दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

मालवीयजी द्वारा किये गये कौसिल के सभी कार्य परिवर्तन की दिशा मे सन्मुख रहे हैं। कहो-कही उनके वैयक्तिक विचारो से मतान्तर भी होना स्वाभाविक है, यथा—बाल-विवाह के सम्बन्ध मे हरदास शारदा द्वारा विवाह की न्यूनतम आयु निर्धारण के समय व्यक्तिगत रूप से उसके समर्थक होते हुए भी वह हिन्दू समाज के उत्थान के लिए समाज सुधार के प्रश्न पर हिन्दुओं की परम्पराओं तथा विचारों

एवं भावनाओ को ठेस नही पहुँचाना चाहते थे। अतः इस विधेयक को वह जनमत के लिए प्रसारित कराना चाहते थे।[३९]

कम आयु की विधवाओं के विवाह के विषय में भी उनका मत था कि विधवाएँ सभी समाजो में पायी जाती है। ऐसी विधवाएँ मुसलमान तथा ईसाइयों में भी पायी जाती हैं। अत बाल विवाह के सम्बन्ध में कानून सभी सम्प्रदायो के लिए समान रूप से होना चाहिए। मालवीयजी १६ वर्ष की कन्या और २५ वर्ष के युवक का विवाह वय उपयुक्त मानते थे।[४०] हम यहाँ देखते हैं कि मालवीयजी एक ओर तो बाल विवाह के विरोधी थे, तो दूसरी ओर संसद में उन्होंने बाल-विवाह निषेध अधिनियम में १६ वर्ष बालिकाओं के लिए और २५ वर्ष के युवकों को विवाह के उपयुक्त बताया था; पर इस विषय को वह जनमत के लिए जनता में प्रसारित कराना चाहते थे और बलपूर्वक हिन्दू जनता पर इसको कानून द्वारा थोपना पसन्द नही करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि ससद मे जहाँ मालवीय-जी ने प्रेस ऐक्ट का विरोध करके, प्रेस स्वातंत्र्य की रक्षा आदि से सम्बद्ध विपुल कार्य किया है, वही उन्होने शास्त्रों की गौरी या बाल विवाह जैसे विवाहो का पूर्ण खण्डन किया है। उपर्युक्त कतिपय ससद के महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त उन्होने और भी अनेक महत्वपूर्ण सुधारवादी परिवर्तन एव सशोधन कराये थे, जिन्हें विस्तार भय से नही दिया जा रहा है।

मालवीयजी ने ससद् के माध्यम से जो भी कार्य किया था उन सभी कार्यों में उनका समाज के उत्थान के लिए निरन्तर प्रयास था। ससद मे उन्होने भारतीय सस्कृति एव सभ्यता को निरन्तर जीवित रखने का प्रयास अवश्य किया था, किन्तु उनके सभी प्रयासों में भारत की राष्ट्रीय संरचना का एकीकृत स्वरूप ही प्रकट हुआ है। ऐसे समय में उन्होने भारतीय समाज को एकाकार मानते हुए समाज मे प्रचलित जनहित-विरोधी मान्यताओं अथवा राजाज्ञाओ का सदैव विरोध किया था। समाज के जातीय, साम्प्रदायिक तथा उच्च और निम्न वर्ण के आधार पर स्तरीकरण को उन्होने कही भी महत्व नही दिया। इस प्रकार उनके उपर्युक्त संसदीय कार्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वह आधुनिक जनतन्त्रीय प्रणाली के पोषक तथा साम्राज्यवादी शासन के विरोधी थे। सन्त्रस्त तथा दु खी भारतीय जनता की समस्याएँ उस समय की राजशाही व्यवस्था के समक्ष रखने के लिए ही उन्होंने ससद की सदस्यता स्वीकार की थी, क्योकि जनता तथा समाज आदि पर सर्वाधिक प्रभाव राज्य का पडता है।

पराधीन भारत मे ऐसा कोई नही था, जो भारतीयता को, उसकी विशेषताओं को, ससार के रगमच पर रख सके। देश के लिए यह कार्य बडा ही आवश्यक था। जब भी ब्रिटिश सरकार किसी सत्य को छिपाने का प्रयास करती थी, मालवीयजी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा के आधार पर ससार के समक्ष यथार्थ तथ्य

रखा था। इसी प्रकार की घटना विश्वयुद्ध के समय विजयी भारतीय सैनिकों के सम्बन्ध में घटी थी—'मालवीयजी विश्वयुद्ध के समय विजयी भारतीय सैनिकों की वीरता के विषय में संसद में प्रकाश डाल रहे थे। अध्यक्ष ओडायर ने इन्हें बैठ जाने को कहा। मालवीयजी ने कहा—मुझे अपनी बात पूरी करने दी जाय। ओडायर ने व्यवस्था का प्रश्न उठाते हुए उन्हें बैठ जाने के लिए कहा। ब्रिटिश अधिकारी युद्ध में विजय का श्रेय अंग्रेज अफसरों को देना चाहते थे। अतः वे मालवीयजी को भारतीय सेना की वीरता के विषय में बोलने नहीं देना चाहते थे। मालवीयजी ने कहा—'अब मैं अपनी बातों को जनता से कहूँगा। सप्ताह के अन्दर भारतीय सैनिक जहाँ भी होगा, अपने शस्त्र डाल देगा। ब्रिटिश सरकार उन्हें ऐसा करने से रोके तो देखूँ। मालवीयजी ने ऐसा कहकर सदन का त्याग कर दिया। उनका मिस्टर जिन्ना सहित सभी भारतीयों ने समर्थन करते हुए सदन-त्याग में साथ दिया। यह समाचार बिजली की भाँति देश में फैल गया। मालवीय-जी की जय-जयकार से आकाश गूँज उठा। अन्त में ब्रिटिश सरकार को इसके लिए क्षमा माँगनी पड़ी।[४१]

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड की वीभत्स गाथा पर संसद में महामना निरन्तर तीन दिनों तक बोलते रहे, जिससे ब्रिटिश अधिकारियों की आँखों में भी पानी आ गया। दर्शक दीर्घा में बैठी ब्रिटिश अधिकारियों की पत्नियाँ अचेत हो गयीं।'''' गृहमंत्री विंसेट स्मिथ की पत्नी यह कहती सुनी गयी कि 'मेरे पति पण्डितजी का मुकाबिला नहीं कर सकते।'[४२]

इस प्रकार मालवीयजी ने ब्रिटिश संसद् में भारतीय जनता पर किये गये अत्याचार के प्रति विश्व समाज का ध्यान आकृष्ट करके, संसार के मंच पर पराधीन भारत के प्रति देश-विदेश के लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हुए, जहाँ अपनी राष्ट्रीयकृत विचारधारा और शब्दचित्र की क्षमता का परिचय दिया, वहीं उन्होंने ब्रिटिश सरकार के दमनात्मक तथा साम्राज्यवादी रवैये के विपरीत जन-प्रतिनिधित्व का कार्य किया और अपने परिवर्तनवादी चिन्तन का परिचय राजतंत्र, साम्राज्य-तंत्र के परे संसदीय लोकतंत्र की दिशा में दिया, जो उनकी प्रगतिशील सुधारवादी विचारधारा का द्योतक है।

(ख) राष्ट्रीय राजनीति एवं नेतृत्व

संसद् में रहकर मालवीयजी ने विधायिका-सम्बन्धी सामाजिक तथा राजनीतिक जो कार्य किये, उनका उद्देश्य पराधीन भारत में विशेषरूप से सुधारवादी रहा है। उन्होंने वहाँ एक प्रगतिशील सांसद के रूप में देश के हित में अत्यन्त महत्वपूर्ण

कार्य किया और सरकार की शोषण नीति तथा कर-निर्धारण आदि के सम्बन्ध में देश को जागृत किया। यद्यपि मालवीयजी के जीवन काल में स्वाधीनता प्राप्त नहीं हो सकी, तथापि वह इसके लिए निरन्तर यत्नशील रहे। इस सम्बन्ध में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी भी कीमत पर देश को साम्प्रदायिक, धार्मिक, राजनीतिक, जातीय तथा समुदायवाद के आधार पर वर्गीकृत या विभक्त हुआ नहीं देखना चाहते थे। यहाँ यदि किसी ने विरोध या फूट पैदा करने की चेष्टा की तो मालवीयजी ने उसका सबसे पहले विरोध किया।

उन्होंने कहा था कि—'स्वराज्य की सीढ़ी के लिए हमारा सबसे प्रथम काम एकता स्थापित करना है।'[४४] 'मैं हिन्दुओं और मुसलमानों का समान हित चाहता हूँ।'[४५] मालवीयजी ने राष्ट्रीयता के नाम पर देश को एकीकृत करके स्वाधीनता की लड़ाई का आवाहन किया। यहाँ ए०आई० देसाई[४६] की भारतीय राष्ट्रवादी समाज की पृष्ठभूमि का उल्लेख अप्रासंगिक नहीं होगा। उन्होंने इसे तीन सोपान-क्रम में वर्गीकृत किया है—(१) पाश्चात्य तथा शिक्षा के परिणामस्वरूप भारतीय प्रबुद्ध वर्ग ने जनतान्त्रिक आदर्शों का अनुशीलन किया तथा धार्मिक सुधारवादी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, (१८८५ई० तक) (२) प्रबुद्ध वर्ग उदारवादी विचारधारा का था। उसे अंग्रेजों (प्रशासकों) की उदारता पर विश्वास था। अतः वह उग्रवाद' आन्दोलन के विपरीत था। (१८८५-१९०५ ई० तक), (३) क्रान्तिकारी विचारधारा के प्रयास आरम्भ हुए तथा इसी समय मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना भी बढ़ी, (१९०५-१९१८ई०), (४) भारतीय जनता जो शोषण का शिकार थी, सगठित होने लगी (१९३४-१९३९)। श्री देसाई के अनुसार—भारतीय समाज की प्रगतिवादी विचारधारा पाश्चात्य शिक्षा द्वारा प्रभावित होकर क्रमशः विकास के मार्ग पर अग्रसर हुई। कांग्रेस की स्थापना के बाद उसके उद्देश्यों में क्रमशः परिवर्तन होता गया, परिणामस्वरूप कांग्रेस पूर्ण स्वराज्य के व्यापक उद्देश्य वाली सस्था बन गयी। मालवीयजी कांग्रेस की स्थापना के दूसरे वर्ष इसमें सम्मिलित हुए और तभी से उन्होंने निरन्तर इसका नेतृत्व किया। उन्होंने १८९४ ई० में सरकार से सस्तुति की कि भारतीय जनता के प्रतिनिधियों की सख्या में वृद्धि की जाय, साथ ही प्रत्यक्ष चुनाव पद्धति का विस्तार किया जाय। उदाहरणों द्वारा उन्होंने स्पष्ट किया कि अंग्रेजी सरकार की त्रुटिपूर्ण नीतियों का विरोध करके उनसे भारत के हितों की रक्षा जनप्रतिनिधि ही कर सकते हैं। अतः उनकी सख्या बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। आगे चलकर कांग्रेस के मंच पर एक युग से दूसरे युग में पदार्पण तथा पुराने और नवीन राजनेताओं के बीच सन्तुलन और व्यवस्था को निरन्तर बनाये रखने में उन्होंने आदि से अन्त तक अपना अमूल्य योगदान दिया। देशहित के लिए स्वाधीनता की मांग क्रमशः बढ़ती गयी, जिसका नेतृत्व और दिशा-निर्देशन उनकी परिवर्तनवादी विचारधारा का आवश्यक अंग रहा है। १८९७ ई० में मालवीयजी

ने कांग्रेस में निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उसे पारित कराया—(१) कौसिलो के गैर-सरकारी सदस्य प्रत्यक्षरूप से जन-प्रतिनिधियो द्वारा चुने जायँ, जिन्हें बजट में सशोधन प्रस्तुत करने एवं मत देने का अधिकार हो, (२) केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौसिलों के निर्वाचित सदस्यो की संस्तुति पर प्रतिष्ठित भारतीय पर्याप्त सख्या में भारत मंत्री की कौसिल के सदस्य नियुक्त किये जायँ, (३) भारत की आर्थिक स्थिति की जाँच के लिए ब्रिटेन की कामन्स सभा के सदस्यों की एक निर्वाचित कमेटी गठित की जाय, जिसमे भारतीय भी रखे जायँ, (४) सैनिक तथा अन्य अनुत्पादक खर्चों में कमी की जाय, साथ ही जन-साधारण के उत्कर्ष के निमित्त अधिक धन व्यय किया जाय, (५) सार्वजनिक नौकरियो और उच्च पदों पर यथासम्भव अंग्रेज कर्मचारियों के स्थान पर अधिक बचत तथा अधिक सुयोग्य शासन के दृष्टिकोण से भारतीय कर्मचारियों की नियुक्तियाँ की जायँ, (६) सीमा के परे के मुद्दो के व्यय का अधिकाश भार ब्रिटिश राजकोष वहन करे।[४८]

सन् १९०४ मे कांग्रेस ने अपनी कतिपय माँगों को पुन दुहराया। मालवीय जी ने इसके समर्थन में कहा कि ब्रिटेन की कामन्स सभा के सदस्यो को भारत की समस्याओं पर विचार करने का समय ही नही मिलता। अत योग्य और अनुभवी भारतीय प्रतिनिधियो का उसमे प्रतिनिधित्व लाभदायक होगा।[४९]

सन् १९०३ मे हर्बर्ट रिसले ने घोषित किया कि बंगाल सरकार को दो भागो मे बाँट दिया जाय। सभी लोगों ने इसका विरोध किया। लार्ड कर्जन ने इस योजना को साम्प्रदायिक बना दिया और इसके समर्थन में कुछ मुसलमानो को खड़ा किया, जिसमे बहुत सीमा तक उन्हे सफलता भी मिली। अन्तत १९०४ई० में भारत मत्री की स्वीकृति से बगाल प्रान्त को दो भागो मे बाँट दिया गया, जिसका कांग्रेस ने घोर विरोध किया। जुलाई १९०५ ई० मे बगालवासियो ने ७० हजार हस्ताक्षरो से वग-भग का विरोध और क्षोभ प्रकट किया। परन्तु सरकार अडिग रही। कांग्रेस के विरोध का कोई प्रतिफल नही हुआ। ऐसे समय मे आने वाली पीढी के नवयुवको ने अराजकता के हिंसात्मक मार्ग का अनुसरण करना ठीक समझा। कुछ नवयुवक बहिष्कार और सविनय प्रतिरोध के मार्ग पर डटे रहे। कांग्रेस गरम दल और नरम दल दो भागों मे विभक्त हो गयी। गरम दल के नेताओं ने स्वराज्य को अपना ध्येय घोषित किया। कांग्रेस का पुराना नेतृत्व स्वदेशी का सिद्धान्त स्वीकार करता था, किन्तु बहिष्कार और सविनय अवज्ञा के बजाय वैधानिक ढग पर चलना उचित समझता था। इस प्रकार मतान्तर की खाई बढ़ती गयी। १९०५ ई० मे काशी मे गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसकी विषय समिति मे मतभेद विस्फोटक रूप में दृष्टिगोचर हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कांग्रेस टूटती हुई प्रतीत हुई। इस मतभेद को समाप्त करने में मालवीयजी तथा लाला लाजपत राय ने

बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। उनका योगदान कांग्रेस के इतिहास में यहाँ भी जोड़ने की दिशा मे कारगर रहा।[५०]

वग भंग के प्रश्न पर मालवीयजी ने देशवासियों का ध्यान बंगाल की इस कठिनाई की ओर आकर्षित किया और देशवासियो से अनुरोध किया कि वे वग-भंग के प्रश्न पर उदासीन न हो। यह प्रश्न जहाँ बंगाल के लिए अहितकर है वही समूचे देश के लोगों के लिए भी घातक है, क्योकि बगाल से भारतीयता और राष्ट्रीयता के सम्बन्ध के कारण पूरा देश सम्बन्धित है। अतः सम्पूर्ण देश को इसका विरोध करना चाहिए।[५१] सन् १९०६ मे स्थिति भयकर हो गयी। सरकार ने दमन का हथकण्डा अपनाया तथा 'वन्दे मातरम्' के नारे को अवैधानिक घोषित कर दिया और नवयुवकों के ऊपर विशेष अत्याचार किया, जिसका नव-युवको ने हिंसक ढग से प्रत्युत्तर दिया। इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी देश के विभाजन और वर्गीकरण के समय क्षेत्रीयता और प्रान्तीयता से परे राष्ट्रीयता की उदार विचारधारा के पक्षधर थे। उन्होने ऐसे समय मे कांग्रेस को एकता के सूत्र मे बाँधने का नेतृत्व प्रदान किया था।

नेतृत्व के लिए कांग्रेस के गरम और नरम दल के आपसी तनाव के समय मालवीयजी ने दोनो दलों के प्रस्तावों को समन्वित करते हुए, कांग्रेस के सयुक्त अधिवेशन में प्रस्ताव प्रस्तुत किया और दोनो दलों का मतभेद दूर किया।[५२]

स्वाधीनता के क्षेत्र मे कांग्रेस को अग्रसर करने वाले मालवीयजी ने जहाँ प्रशासन मे प्रारम्भिक काल मे भारतीय जनता के प्रतिनिधित्व की माँग की थी और ब्रिटिश शासनतन्त्र के अधीन कतिपय मामलो मे भारतीयों को एक सीमा तक स्वाधीन करने की बात की थी, वही आगे चलकर स्पष्ट रूप से वह लिखते हैं कि 'जिस समय हम अपने को इस योग्य बना लेगे कि इग्लैण्ड से सभी अधिकार हमे दे जो अग्रेजो को प्राप्त है, उस समय इग्लैण्ड को हमे सभी अधिकार देते ही बनेगा। योग्य होने का यह अर्थ है कि न केवल हमको उन अधिकारो को काम में लाने की और उनसे देश के हित का काम करने की बुद्धि और योग्यता हो, अपितु यह भी कि हमारे हृदय मे उनके पाने की ऐसी अभिलाषा हो कि उनको पाये बिना हम अपने को सुखी न मानें और उनको पाने के लिए जितना सुख-स्वार्थ का त्याग करना आवश्यक हो उसे करने को तत्पर हो।'[५३] हमे अपने मे ऐसी जागृति पैदा करनी है कि स्वराज्य देने के लिए अग्रेजी प्रशासन बाध्य हो जाय। यहाँ यह बात स्पष्ट है कि मालवीयजी ने पूर्ण स्वतंत्रता के लिए भारतीय जनता का आवाहन करते हुए, उसके मनोबल को उन्नत करने का प्रयास किया था। उनके नेतृत्व से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पूर्णरूपेण प्रभावित रही है, जिसका उद्देश्य प्रतिनिधित्व से पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करना था। इसमे मालवीयजी का आद्योपान्त योगदान रहा है।

उपर्युक्त बगभंग तथा भारत मे स्वशासन बनाये रखने के ब्रिटिश रवैये के सम्बन्ध मे मार्क्स का निम्नलिखित दृष्टिकोण लागू होता हुआ दृष्टिगोचर होता है, जिसके अनुसार—'सामाजिक परिवर्तन स्वार्थ-समूहों के संघर्ष द्वारा आरम्भ होता है। वर्तमान सत्ताधारी विशिष्ट वर्ग मूल पदों मे परिवर्तन का प्रतिरोध करता है। जनता परिवर्तन प्रारम्भ करने का दायित्व तब स्वीकार करती है, जब वह इस ओर जागरूक हो जाती है।'[54] मार्क्स के उक्त विचार के अनुसार मालवीयजी ने पराधीनता से स्वतन्त्रता प्राप्ति के परिवर्तन के लिए जनता को जागरूक होने का आवाहन किया था, जो उनकी परिवर्तन की दिशा में काग्रेस को आगे बढाने की प्रेरणा से पूर्णरूपेण अभिषिक्त करने की विचारधारा का द्योतक है।

मालवीयजी का नेतृत्व, राष्ट्रीयता तथा स्वदेशी

मैकाइवर तथा पेज के अनुसार—'नेतृत्व से तात्पर्य लोगों को प्रोत्साहित तथा निर्देशित करने की वह योग्यता है, जो पद के अतिरिक्त व्यक्तिगत गुणों से आती है।' लेपियर तथा फ़ासवर्थ ने लिखा है कि नेता का पद प्राप्त करने वाला व्यक्ति आवश्यक रूप मे (अपने) विविध रूपो मे कर्त्तव्यों तथा उपकारों की अवहेलना करता है, सामान्य रूप से वह जीवन के सामान्य सुखो का परित्याग भी करता है।[55] मालवीयजी के सम्बन्ध में उक्त मत पूर्णरूपेण लागू होता है। गोपाल कृष्ण गोखले के शब्दों मे—'त्याग तो मालवीयजी महाराज का है। वे निर्धन परिवार मे उत्पन्न हुए और बढ़ते-बढते प्रसिद्ध वकील होकर उस जमाने में सहस्रों रुपये मासिक कमाने लगे। उन्होंने वैभव का स्वाद लिया और जब हृदय से मातृ-भूमि की सेवा की पुकार उठी तो उन्होने सब कुछ त्याग कर पुन. निर्धनता स्वीकार कर ली।'[56] मालवीयजी मे उपर्युक्त त्याग और बलिदान की सभी बातें बाह्य तथा आन्तरिक सभी दृष्टियो से समान रूप से विद्यमान थी। देश मे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के सकट के समय लक्ष्य प्राप्ति के क्षेत्र में शिथिलता और अकर्मण्यता की स्थिति जब-जब आयी, मालवीयजी अपने जीवन के अन्तिम समय मे भी, जबकि वह अत्यधिक वृद्ध हो गये थे, निरन्तर नेतृत्व सँभालते रहे हैं। यहाँ १९३२ ई० मे, जबकि काग्रेस के प्राय. सभी नेता गिरफ्तार हो चुके थे और स्वाधीनता आन्दोलन का दीपक बुझता हुआ-सा प्रतीत हो रहा था, अत्यन्त वृद्ध होने पर भी सदा की भाँति उन्होंने पुन आगे आकर नेतृत्व सँभाला था। पट्टाभि सीतारमैया के शब्दो मे —'तब आगे आये भारत के वन्दनीय वृद्ध महापुरुष और अवस्था तथा बुद्धि मे परम परिपक्व पण्डित मदनमोहन मालवीय, जिन्होंने एक बार पुन· सदा की भाँति काग्रेस की बागडोर सँभाली और (अग्रेज सरकार को) यह चुनौती दी कि गाधीजी ने अपने आरोप पत्र का जो उत्तर दिया है, या तो सरकार उसका स्पष्टीकरण करे, अन्यथा गाधीजी को छोड दे।'[57] इस प्रकार मालवीयजी ने देश को आजीवन अपनी सेवाएँ समर्पित कीं। भारतीय समुदाय को वह एकता के सूत्र मे बाँधने के लिए कृतसंकल्प थे। उनका कहना था कि 'प्रगाढ

देशभक्ति से एकता उत्पन्न होती है, एकता से राष्ट्रीयता का भाव और राष्ट्रीयता के भाव से उन्नति होती है।[58] अतः उन्होंने एकता के लिए ही सर्वाधिक प्रयास किया था। नेता और अनुयायियो मे यदि एकता न हो तो नेतृत्व सफल नही माना जा सकता। मालवीयजी ने एकता को मानव का सहज धर्म बताया था। पराधीन भारत मे एकता के महत्व को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था—'सच्चे देशभक्त ......वे है, जो कुछ करें धरें, सब कुछ देश के ही लिए हो तथा देश के कार्य में वे प्रतिक्षण सन्नद्ध तथा तत्पर रहें एवं एकाकी लगन से देश के ही ध्यान और उपासना में संलग्न रहें।'[59]

धर्म समाज और देशभक्ति

धर्म और देशभक्ति के विषय में मालवीयजी ने कहा था—'देशभक्ति द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता हुआ देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नही समझता, उस पुरुष को जान लीजिए कि वह धर्म के तत्व को नही जानता। वह 'धर्म'—'धर्म' शब्द गा रहा है, किन्तु वह यह नही जानता कि धर्म क्या वस्तु है।'[60]

मालवीयजी चाहते थे कि 'भारत के लोग स्वार्थभक्ति छोड़कर देशभक्ति अपनायें, जिसके आगे हम अपने आपको भूल जायें, देश की उन्नति मे ही अपनी उन्नति समझें, देश के यश मे यश समझें, देश के जीवन में अपना जीवन समझें तथा देश की मृत्यु में ही अपनी मृत्यु समझे।'[61]

इस बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था कि सच्ची ईश्वरसेवा यह है कि दु खी जीवो की सहायता की जाय।........'देशभक्ति का सचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर बाहर कर देगा।.........'[62]

स्वदेशी : मालवीयजी स्वदेशी को मूलरूप मे देशभक्तिका महत्वपूर्ण अग समझते थे। उनके अनुसार—'गहरा, प्रगाढ, उत्सुक तथा अन्य सभी भावों को शमित कर देने वाला अपने देश का प्रेम ही स्वदेशी का मूल अर्थ है।'[63] स्वदेशी आन्दोलन की व्याख्या करते हुए मालवीयजी ने लोगो को बताया कि '(स्वदेशी का) मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक स्थिति को सुधारना है। देश की स्थिति तब सुधर सकती है, जब देश मे देशी वस्तुओ के व्यापार मे वृद्धि हो तथा जो हमारे नित्य की आवश्यक वस्तुएँ है, वे यहाँ बनने लगें। हमारे देश मे व्यवसाय तथा शिल्प अभी नवजात है। इनकी रक्षा और वृद्धि बहुत सावधानीपूर्वक करनी पड़ेगी। जिन देशो मे स्वराज्य है, उन देशो मे इनकी रक्षा सरकार कर लगाकर तथा रुपया देकर करती हैं। परन्तु इस देश मे इस विषय मे सरकार से बहुत आशा नही की जा सकती, (क्योंकि उस समय देश पराधीन था) अतः आत्म-सहायता तथा स्वार्थत्याग से हमे इनकी रक्षा करनी पड़ेगी। सरकार इसके लिए

कर नहीं लगाएगी तो हम अपने ऊपर स्वयं कर लगा सकते हैं। अर्थात् देशी वस्तुएँ यदि महँगी हों तो भी उनको अधिक मूल्य देकर ले सकते हैं।[64]

राजभक्ति : महामना के अनुसार—'सच्ची देशभक्ति ही राजभक्ति है।······ प्रजाभक्ति ही सच्ची राजभक्ति है। उन्होंने कहा था कि 'सभी राजभक्तों का यह कर्तव्य है कि राजा को उसी मार्ग पर चलने के लिए बाध्य करें, जिसमे उस देश का एवं प्रजा का भला हो।'[65]

मालवीयजी मनु के राजतंत्र के समर्थक नहीं थे और न ही वह मनु की आनुवंशिक राज्य-प्रणाली के अनुगामी थे। इस सम्बन्ध में उनके विचार प्रजातांत्रिक थे। यह बात उनकी निम्नलिखित प्रजातांत्रिक मान्यताओं से और भी अधिक स्पष्ट हो जायेगी।

(क) राजा का कर्त्तव्य · प्रजा के सुख में राजा का सुख, प्रजा के दुःख में राजा का दुःख, प्रजा की अवनति में राजा की अवनति।······जिस प्रकार किसान अपने खेत में खरपत काटकर खेत के पौधों की रक्षा करता है, उसी प्रकार राजा का भी यह कर्त्तव्य है कि दुःख के निमित्त (कारणों) को दूर करके, प्रजा की रक्षा करे।

(ख) राष्ट्रीयता : मालवीयजी के अनुसार—'राष्ट्रीयता द्वारा ही जापान, इंग्लैण्ड आदि देशों की इतनी उन्नति सम्भव हुई है। इसी से भारत की भी उन्नति सम्भव है।'[66] उक्त भावना को और अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—'राष्ट्रीयता उस भावना का नाम है, जो देश के सभी निवासियों के हृदय में देश हित की अभिलाषा से व्याप्त हो रही हो, जिसके सामने अन्य भावों की श्रेणी निम्न ही रहती हो। देश ही सभी देशवासियों के प्रेम और भक्ति का विषय बन जाय, मतभेद, धर्मभेद, वर्णभेद तथा जातिभेद के होते हुए भी राष्ट्रीयता का श्रेष्ठ भाव देशव्यापी हो जाय तथा इतना बढ़ जाय कि उसके आगे अन्य भावों की श्रेणी निम्न हो।'[67]

स्वराज्य सिद्धि

जैसा कि कांग्रेस के इतिहास में कांग्रेस के नेतागण प्रारम्भ में स्वराज्य की उपलब्धि, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत ही (औपनिवेशिक) चाहते थे, मालवीयजी भी इसके लिए प्रयत्नशील थे, किन्तु उस समय अंग्रेजी प्रशासन इसके लिए भी तैयार नहीं था। मालवीयजी की स्वराज्य की धारणा के अनुसार अधिक मुक्त शासन प्राप्त करना आवश्यक था, यह बात उनके निम्निलिखित तर्कों द्वारा स्पष्ट हो जाती है—'प्रजा के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा प्रजा की सम्मति से राज्य के प्रबन्ध का अधिकार ही स्वराज्य है और हम भारतीय पूर्णरूपेण उसके लिए योग्य हैं।'[68] मालवीयजी ने पूर्ण स्वराज्य की मान्यताओं को प्रतिष्ठित करते हुए लिखा है—'न्याय तथा धर्म की बात यही है कि प्रत्येक देश तथा जाति के लोग

देश में स्वाधीन हों एवं अपने ऊपर स्वतः-राज्य करें।'[69] इस बात को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है कि 'अंग्रेज जाति, जो स्वयं स्वतन्त्रता की प्रेमी है, भारत को सभ्यता के नाम पर सदैव अपने अधीन नहीं रख सकती।........जब तक यह नहीं हो जाता भारत का वर्तमान दुर्दशा से उद्धार नहीं हो सकता।'[70] उनके अनुसार—देशभक्ति ही स्वराज्य की सिद्धि का पहला सबसे प्रमुख साधन है। इसके लिए जहाँ तक सम्भव हो देश के प्रत्येक प्राणी में देशभक्ति की भावना बढ़ायी जाय।[71]

मालवीयजी ने जिस युग में कांग्रेस के माध्यम से देश का नेतृत्व सँभाला उस समय भारतीय जनता अशिक्षा और अज्ञान के अन्धकार में थी। उसे अपना मार्गदर्शन भी नहीं मिल रहा था। ऐसे समय में उन्होंने सर्वप्रथम यह अनुभव किया कि भारतीय जनता को जब तक स्वराज्य का ज्ञान नहीं हो जाता, स्वराज्य का आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। अतः उन्होंने लिखा है कि 'जहाँ तक सम्भव हो नगर-नगर, गाँव-गाँव में लोगों को स्वराज्य का अर्थ, उसकी आवश्यकता और उसकी महिमा समझायी जाय, जिससे उनके हृदय में उसको प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा जागृत हो।.........स्वराज्य पाने के लिए निरन्तर आन्दोलन हो।'[72] यहाँ हम देखते हैं कि मनोवैज्ञानिक हुल्याकर का निम्नलिखित विचार मालवीयजी की विचारधारा में चरितार्थ होता है—'अवसर मिलने पर नेतृत्व के गुण अपना चमत्कार दिखाते हैं तथा व्यक्ति पर्यावरण के प्रभाव से नेता का स्थान ग्रहण करता है।'[73] यहाँ मालवीयजी को उस समय की देश की वर्तमान परिस्थितियों ने प्रभावित किया और उन्होंने अपने नेतृत्व के गुणों के अनुसार देश की व्यापक आवश्यकता पर ध्यान दिया तथा राजतन्त्र के परे, विश्व के जनतान्त्रिक चश्मे से स्वाधीनता के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करने के क्षेत्र में अपने राष्ट्रीय नेतृत्व की भूमिका निभायी।

मालवीयजी ने जनता की निर्धनता पर विशेष रूप से ध्यान दिया और कहा कि 'जनता की निर्धनता उसके असन्तोष का मूल कारण है।'[74] जनतान्त्रिक व्यवस्था से आधुनिकता उनकी विचारधारा के परिवर्तनवादी भावना से मिलती-जुलती है। उन्होंने अपने नेतृत्व काल में एक कुशल नेता की भूमिका निभाते हुए जनता की आधारभूत आवश्यकताओं की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया, जो अर्थशास्त्र तथा समाजशास्त्र की दृष्टि से उनकी आधुनिकतम विचारधारा की द्योतक है। उन्होंने देश की स्थिति तथा सरकारी नीति-रीति की समीक्षा करते हुए कहा था कि देश के व्यापक असन्तोष का मूल कारण जनता की निर्धनता तथा उसकी स्वाभाविक आकांक्षाओं की उपेक्षा है। विश्व में कोई भी देश भारत की भाँति निर्धन नहीं होगा। देश की निर्धनता को देखते हुए यहाँ के प्रशासकों का वेतन अन्य देशों के प्रशासकों के वेतन की अपेक्षा बहुत अधिक है।'[75] उन्होंने विदेशी प्रशासनाधिकारियों को दिये जा रहे वेतन के विषय में सबसे पहले लोगों

का ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया कि इन विदेशी प्रशासनाधिकारियों के कारण देश का धन बाहर चला जाता है, जिससे देश की आर्थिक व्यवस्था प्रभावित होती है। अतः राजस्व का एक-चौथाई या इससे कम भाग ही जन-कल्याण में व्यय किया जा रहा है। इस स्वार्थपरक स्थिति में सुधार के लिए भारत को प्रशासन का अधिकार दिया जाना नितान्त आवश्यक है।[76]

मालवीयजी देश के प्रत्येक क्रिया-कलाप को एकीकृत दृष्टि से देखते थे। उन्होंने धर्म के आधार पर किये जाने वाले पृथक् निर्वाचनों को अनावश्यक और अव्यावहारिक बताया।[77] उन्होंने कहा कि हिन्दुओं और मुसलमानों द्वारा सम्मिलित रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि दोनों जातियों का समाज-हित-साधन करने में योगदान देंगे। किन्तु जब मुसलमान प्रतिनिधि तथा हिन्दू प्रतिनिधि पृथक्-पृथक् निर्वाचित किये जायेंगे तब वे साम्प्रदायिकता के आधार पर अपने-अपने समाज के हितों में सहयोग करेंगे, जिससे साम्प्रदायिक तनाव और संघर्ष होने की अधिक सम्भावना रहेगी।[78]

राजनीतिक एकता की सद्भावना

मालवीयजी कांग्रेस में नरमदल के नेता माने जाते थे। वह अपने मित्र गोखले के समर्थक थे, परन्तु गरमदल वालों के प्रति भी उनकी सद्भावना कम नहीं थी। यह बात केलकर महोदय ने अपने संस्मरण में स्पष्ट की है, जिससे उनकी उक्त भावना का सहज बोध होता है। केलकर ने लिखा है कि—'सन् १९०८ में लोकमान्य तिलक (गरम दल के नेता) के आदेश पर युक्त प्रान्त की गतिविधि देखने गया, तब हमारा मिशन स्पष्ट शब्दों में एक राजनीतिक विरोधी का था, क्योंकि पं० मालवीय नरम दलीय नेताओं में प्रमुख गिने जाते थे जो तिलक के विपरीत गोखले (नरम दलीय नेता) के पक्ष में कार्यरत थे। परन्तु उन्होंने अपार सौजन्य का व्यवहार किया। यद्यपि वे चाहते तो मुझे निकाल सकते थे। जब १९०९ ई० में कतिपय क्रान्तिकारियों की भर्त्सना के लिए प्रान्तीय सरकार ने सभा आयोजित की तथा मालवीयजी आतंक के विरुद्ध भाषण देने के लिए आमन्त्रित किये गये, तब उन्होंने अधिकारियों के रोष की उपेक्षा करते हुए स्पष्ट कह दिया कि 'मैं उस समय तक क्रान्तिकारियों के विरुद्ध कुछ कहने को तैयार नहीं हूँ……… जब तक मुझे सरकार की उस गतिविधि की आलोचना का अवसर न मिले जिसके कारण क्रान्तिकारी भावनाएँ प्रज्वलित होती हैं।' उनके रवैये की प्रान्त के गवर्नर ने कटु आलोचना की।[79] इसी प्रकार १९०९ ई० में प्रयाग के 'स्वराज्य' नाम के उर्दू पत्र के आठ मुस्लिम सम्पादक राजद्रोह में फँसा दिये गये, उस समय मालवीयजी ने उन्हें आर्थिक सहायता दी तथा पुरुषोत्तम दास टंडन से उनकी (अभियुक्तों की) वकालत करने को कहा। जेल में पड़े उन (मुस्लिम) सम्पादकों के परिवारों का पोषण भी मालवीयजी ने किया था। यह बात कुछ लोगों को

बुरी लगी, परन्तु उन्होंने उनकी देश-भक्ति की प्रशंसा की और अपने इस कार्य के औचित्य की पुष्टि की।[८०]

महान् क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद, योगेशचन्द्र चटर्जी आदि ने मालवीयजी की क्रान्तिकारियों के प्रति सहानुभूति तथा सहयोग का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में महामना मालवीयजी की व्यक्तिगत भावना अहिंसानीति पर आधारित थी, परन्तु वह क्रान्तिकारियों की देशभक्ति और आत्म-बलिदान की भावना का समादर करते थे।[८१]

राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय आन्दोलन का आवाहन

अनेक अवसरों की भाँति १९२९ई० में मालवीयजी ने अपने दीक्षान्त भाषण में कहा था कि विश्वविद्यालय के स्नातकों को चाहिए कि वे देश-प्रेम और शोषित भारतवासियों से प्रेम करें और उसमें एकता और शिक्षा का प्रसार करें। उन्होंने कहा—'आप स्वतन्त्रता चाहते हैं, अपने देश में स्वशासन चाहते हैं, इसके लिए जो त्याग आपसे अपेक्षित हो उसके लिए तैयार रहिए। आप अपने में स्वातन्त्र्य-प्रेम और मातृभक्ति के गौरव के लिए त्याग की भावना पुष्ट करें। इस प्रकार हम पुनः एक बड़ा राष्ट्र बना सकेंगे।[८२]

उक्त अभिभाषण की सरकारी क्षेत्र में तथा जनता में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। इस बीच गांधीजी के नेतृत्व में पूर्ण स्वाधीनता के लिए सविनय अवज्ञा का निर्णय किया गया, तथा मालवीयजी ने उसमें सक्रिय रूप से भाग लिया। अगस्त के अन्तिम सप्ताह में सरकार द्वारा अवैध घोषित कांग्रेस की कार्यसमिति में भाग लेने के अभियोग में उनको छः मास का कारावास का दण्ड दिया गया। इसके बाद सरकार ने विश्वविद्यालय का अनुदान भी बन्द कर दिया। परन्तु मालवीयजी के प्रभाव से उनका विश्वविद्यालय किसी प्रकार चलता रहा। मालवीयजी के परामर्श से विश्वविद्यालय कार्यसमिति ने २९ नवम्बर १९३० ई० को भारत सरकार को लिखा : 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय राष्ट्रीय संस्था है। यहाँ धर्म तथा नैतिकता की शिक्षा द्वारा नवयुवकों का चरित्र निर्माण करना उसका मुख्य उद्देश्य है।.... देशभक्ति एक शक्तिशाली उत्कर्ष है। इसके विकास में विश्वविद्यालय का सहयोग आवश्यक है।........राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अध्यापकों तथा विद्यार्थियों से राष्ट्रीय लहर से प्रभावित न होने की आशा नहीं की जा सकती।'[८३] इस समय यह समाचार फैल गया था कि मालवीयजी पर सरकार कुलपति पद से उनके राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण त्यागपत्र देने के लिए दबाव डाल रही है, इससे विश्वविद्यालय में उत्तेजना फैल गयी और मालवीयजी को छात्रों,अध्यापकों एवं नागरिकों ने एक स्वर से समर्थन दिया।[८४]

१९ जनवरी, १९३१ ई० को उत्तर प्रदेश के शिक्षा विभाग के निदेशक मेकजी महोदय ने मालवीयजी से बात की और अनुरोध किया कि आप कम-से-

कम इस बात की घोषणा करें कि जिन विद्यार्थियों ने अनुशासन भगकर, आन्दोलन में भाग लिया है, उन्हें लिखित आवेदन-पत्र पर ही विश्वविद्यालय में भरती किया जाय। परन्तु मालवीयजी ने इस प्रकार की घोषणा से स्पष्ट इनकार कर दिया।

उन्होंने कहा कि शर्त के साथ सरकारी अनुदान नहीं लिया जायगा और आवश्यकता हुई तो कठिनाइयों को सहते हुए बिना अनुदान के ही विश्वविद्यालय चलाया जायगा। परन्तु १७ फरवरी १९३१ ई० को लार्ड अर्विन तथा गांधीजी के समझौते के बाद सरकार ने विश्वविद्यालय को आवर्तक अनुदान देना स्वीकार कर लिया, जिससे विश्वविद्यालय की आर्थिक कठिनाई दूर हो सकी।[95]

आवर्तक अनुदान में दस प्रतिशत की कटौती से विश्वविद्यालय का आर्थिक संकट पूर्णरूपेण दूर नहीं हो सका, किन्तु मालवीयजी की कार्य-क्षमता और सहयोग से विश्वविद्यालय में नये विभागों और संकायों का निर्माण कार्य अबाधगति से चलता ही रहा। इस प्रकार हम पाते हैं कि मालवीयजी अपने प्रगतिशील कार्यों के लिए संकट के समय भी भारतीय सुधार और मौलिकता के उत्कर्ष स्वराज्य-प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहे।

कांग्रेस की राजनीति तथा मालवीयजी

मालवीयजी साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक् निर्वाचन प्रणाली के विरोधी थे। उन्होंने इसके लिए न्यायसंगत तर्क भी प्रस्तुत किया। परन्तु तिलक आदि द्वारा इस विषय को मान लेने पर देश-हित में मालवीयजी ने भी विरोध करना उचित नहीं समझा।

इस प्रकार देश में कांग्रेस लीग योजना के अन्तर्गत स्वशासन की योजना बनायी गयी। मालवीयजी ने इस योजना का देश भ्रमण करके प्रचार किया। उन्होंने कहा—'स्वशासन मानव समाज का स्वाभाविक अधिकार है। कोई देश दूसरे देश को सदैव अपने अधीन नहीं रख सकता।'[86]

योजना के सेना-विषयक सुझावों के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—'भारतीयों को *निरस्त्र रखने तथा सेना के उच्च पदों पर भारतीयों को नियुक्त न करने की नीति* कठोर ही नहीं, अपितु अन्यायपूर्ण है।'[87] इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा—'सैनिक शक्ति तथा उसे प्राप्त करने की योग्यता किसी जाति-विशेष की बपौती नहीं है।'[88]

उन्होंने बताया कि हमारे नेता दादाभाई नौरोजी का आदेश है—'आन्दोलन करो, आन्दोलन करो, देश के प्रत्येक कोने में आन्दोलन करो।' मालवीयजी ने कहा—'हमारे लिए खेद की बात होगी यदि हम अपने पूज्य नेता की बात का अनुसरण न करें। हमें कलंक लगेगा यदि हम उनकी बात को कार्य-रूप में परिणत न करें।'[89]

नेतृत्व पद-प्रतिष्ठा के विषय मे मालवीयजी की निष्ठा का सहज बोध होता है। वह अपने नेता की बात मानते हैं और जनता को उसे मानने के लिए प्रेरित करते हैं। मालवीयजी की धारणा थी कि अंग्रेज आसानी से बात माननेवाले नही हैं, उन्हे राजी करने के लिए यह सिद्ध करना होगा कि राष्ट्रीय माँग को देश की जनता का समर्थन प्राप्त है तथा जनता उसकी प्राप्ति के लिए कटिबद्ध है।[१०]

सन् १९१८ मे दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह मे मालवीयजी ने भारतीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन की दिल्ली मे अध्यक्षता की। उन्होने अपने भाषण में कहा—आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को लागू करते हुए स्वशासन का अधिकार दिया जाय। उक्त अधिवेशन मे मालवीयजी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता, गरमदल और नरमदल में एकता के महत्त्व पर विशेष बल दिया। उन्होने राष्ट्रीय कार्यों में स्त्रियो को भी आगे आकर कार्य करने के लिए आवाहन करते हुए कहा—'उन (स्त्रियो) को अपनी रक्षा के लिए दूसरो की आवश्यकता नही है। जब तक प्रगति के क्षेत्र मे वे आगे नही आती, तब तक देश के लिए उन्नति असम्भव है।'[११]

इस प्रकार मालवीयजी ने एक प्रगतिशील राजनीतिज्ञ के रूप मे देश की पर्दा प्रथा के युग मे स्त्रियो को आगे आकर देश की राजनीति में भाग लेने के लिए कहा था। इससे स्पष्ट है कि वह प्रगतिशील नीति के पक्षधर थे, जिससे उनकी राजनीतिक गतिशीलता के साथ परिवर्तनवादी नीति और विचारधारा का सहज बोध होता है। उस युग मे जबकि स्त्रियो के लिए पर्दा तथा घर के अन्दर रहना अनिवार्य था, इस परम्परा के विपरीत मालवीयजी ने राष्ट्रीय आन्दोलनों में सहयोग के लिए उनका आवाहन किया।

राजनीतिक संघर्ष और मालवीयजी

मालवीयजी के अनुसार—'दूसरों का भी अपने साथ-साथ अभ्युदय हो, यही सच्ची श्लाघनीय राजनीति है।'[१२] कांग्रेस अथवा संसद मे मतभेदो के समय भी मालवीयजी ने अपने उक्त विचारो के अनुसार ही काम किया था। उन्होंने कभी किसी को नीचा दिखाने का प्रयास नही किया। समझौता उनकी राजनीति का आवश्यक अंग था। यही कारण है कि राजनीति मे विरोधियों द्वारा भी वह सम्मान्य थे। प० जवाहरलाल नेहरू के शब्दो में—मालवीयजी तथा गाधीजी की राजनीति के सम्बन्ध मे निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है :

'हण्टर कमेटी पजाब हत्याकाण्ड की जाँच करना चाहती थी। गाधीजी इसमे गवाही देने के विरुद्ध थे, किन्तु पजाबी नेता कांग्रेस के सभापति मालवीयजी के विचारो के अनुसार गवाही के पक्ष मे थे। अत: कांग्रेस का निर्णय गाधीजी के विरुद्ध मालवीयजी के पक्ष मे हुआ। गाधीजी ने स्टेटमेन्ट लिखायी कि क्योंकि निर्णय मेरे विचार के विरुद्ध हुआ है, अतः मेरा पजाब में रुकना बेकार है। स्वामी श्रद्धानन्द ने मालवीयजी को गांधीजी के इस निर्णय से अवगत कराया।

मालवीयजी मतभेद शान्त कराना चाहते थे। अतः उनकी सहमति से पं० मोती लाल नेहरू तथा सी०आर० दास आदि नेताओं को, जो मालवीयजी के पक्ष मे थे, गाधीजी के विचारों की ओर आकर्षित किया गया। स्वामी श्रद्धानन्द ने मालवीय-जी मे कहा कि बहुमत से निर्णय कराया जाय और आप अपने पजाबी नेताओं को दिये गये आश्वासन के अनुसार अल्पमत पंजाबी नेताओं का साथ मत दे। मालवीयजी तैयार हो गये मानो उनके सिर से बहुत बडा बोझ उतर गया हो। इस प्रकार उक्त निर्णय गाधीजी के पक्ष मे कराया जा सका। इस निर्णय की सूचना पंजाब के गवर्नर को देते हुए मालवीयजी ने निर्णय का सारा दायित्व अपने ऊपर ले लिया।[९३] इस प्रकार मालवीयजी तथा महात्मा गाधी की राज-नीतिक विचारधारा का वोध होता है। महात्मा गाधी अपनी बात न मानने की स्थिति में पजाब छोडकर जाने की बात करते हैं। वहो समन्वयवादी मालवीयजी एकता के लिए अपनी विचारधाराओ को वदलकर समझौते का मार्ग प्रशस्त करते हैं। यह मालवीयजी के नेतृत्व की अपनी विशेषता थी, जिसका गाधीजी बडा सम्मान करते थे।

सन् १९२६ के निर्वाचन के समय मोतीलाल नेहरू तथा मालवीयजी के पारस्परिक मतभेद और बढ गये। राजनीति में मतभेद के समय मालवीयजी की क्या भूमिका तथा नीति थी, इसका परिचय निम्नलिखित घटना-क्रम से स्पष्ट हो जाता है :—

मालवीयजी की नीति शत्रु के प्रति भी विद्वेष न रखने की थी। वह मोती-लाल नेहरू को जो आयु मे मालवीयजी से छ. मास बड़े थे, बडा भाई मानते थे और उन्हे उचित सम्मान देते थे। मोतीलालजी मालवीयजी की रहन-सहन पर सदैव फबतियाँ कसते रहते थे। मालवीयजी सदा ही मोतीलालजी से अदब से पेश आते थे।[९४] सन् १९२३ के चुनावो मे स्वराज्य पार्टी के कार्यकर्त्ताओं ने मालवीयजी की सभाओं को भंग करने तथा उन्हे अपमानित करने की भरपूर चेष्टा की, जिसमे उन्होने स्वराज्य पार्टी के प्रत्याशी के विपरीत प्रोफेसर पी०के० तैलंग का समर्थन किया था। मोतीलालजी ने स्वतः काशी की सभा मे मालवीय-जी का उपहास किया, परन्तु मालवीयजी ने दूसरे स्थानों पर स्वराज्य पार्टी के प्रत्याशियों का समर्थन किया।[९५]

इस समय मालवीयजी तथा लाला लाजपत राय नेशनलिस्ट पार्टी को लेकर चुनाव में भाग ले रहे थे। लाला लाजपत राय भी चुनाव लड रहे थे। उन्हें मालवीयजी का समर्थन प्राप्त था। मोतीलाल तथा मालवीयजी के समर्थक परस्पर एक-दूसरे नेता का उपहास करते रहते थे। मालवीयजी को ये बातें पसन्द नही थी। एक बार अमृतसर की उनकी एक सार्वजनिक सभा में किसी ने मोतीलालजी का उपहास किया। मालवीयजी ने उसे रोका और आधे घंटे तक अपने दल के प्रतिद्वन्द्वी मोतीलालजी के समर्थन मे बोलते रहे, जिसे सुनकर लोग दंग

गये।[९६] चुनाव के दौरान लाला लाजपत राय तथा मालवीयजी मोतीलालजी के चुनाव क्षेत्र में भी गये, किन्तु मालवीयजी ने कभी भी मोतीलाल के प्रति कुछ भी नही कहा। एक बार एक सभा मे एक कवि ने मालवीयजी की प्रशसा और मोतीलाल की निन्दा से युक्त कविता का पाठ करना आरम्भ किया। मालवीयजी ने कवि को कविता पढने से रोका और कहा—'मोतीलालजी मेरे बड़े भाई हैं। मै उनकी शान के विरुद्ध कोई बात नही सुन सकता।'[९७] चुनाव के बाद मोतीलालजी ने लाला लाजपत राय के उर्दू सामाहिक 'वन्दे मातरम्' पर उसके काबुल-सम्बन्धी आरोपों के लिए मान-हानि का मुकदमा दायर कर दिया और मॉग की कि या तो सम्पादक क्षमा-याचना करे या एक लाख रुपया हर्जाना मे दे। मामले ने तूल पकडा, तब महात्मा गाधी ने बीच में पडकर किसी प्रकार उसे शान्त कराया और मुकदमा वापस कराया।[९८] मोतीलालजी को यही विशेष दु ख था कि उनके भतीजे श्यामलाल ने भी उनकी पार्टी के विरोध में कार्य किया और बहुत-से उनके पुराने साथियों ने भी उनका साथ न देकर मालवीयजी तथा लाला लाजपत राय का साथ दिया।[९९]

पं० जवाहरलाल नेहरू की आलोचनात्मक दृष्टि में मालवीयजी

नेहरूजी काग्रेस और नेशनलिस्ट पार्टी के बीच चुनाव संघर्ष अनुचित मानते थे और मालवीयजी तथा लाला लाजपत राय की नेशनलिस्ट पार्टी के विपरीत थे। उन्होने लिखा है—'मालवीयजी की नेशनलिस्ट पार्टी ने सफलता की बड़ी मात्रा प्राप्त की, पर इस सफलता ने लेजिस्लेटिव असेम्बली के राजनीतिक वातावरण को अवश्य ही नीचे गिरा दिया। गुरुत्व केन्द्र अधिक दक्षिण की ओर हटा। स्वराज पार्टी काग्रेस का स्वयं दक्षिण पक्ष था। अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए उसने बहुत-से सन्दिग्ध व्यक्तियों को अपने मे घुस आने दिया। इसके कारण उसके गुण मे क्षति पहुँची है। नेशनलिस्ट पार्टी ने भी इसी नीति का अनुसरण किया, पर अधिक निम्नस्तर पर। उद्योगपतियो, जमीन्दारो का पचरगी जत्था, जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नही था उसकी पक्ति मे आ गया।[१००] उनके अनुसार नेशनलिस्ट पार्टी हिन्दू पार्टी थी, जो महासभा के निकट सहयोग में काम करती थी।[१०१] किन्तु स्वराज्य पार्टी को जवाहरलालजी ने नेशनलिस्ट पार्टी की अपेक्षा अधिक राष्ट्रीय माना था, उसकी त्रुटियो की ओर उन्होने कुछ कम ध्यान दिया है। इन्ही कमियों के परिणामस्वरूप यह पार्टी १९२९ ई० मे भंग हुई थी, जिसके कारण दो पार्टियों का बनना स्वाभाविक था।[१०२]

इन पार्टियो की समीक्षा करते हुए मुकुटविहारी लाल ने लिखा है कि 'यह कहना कि नेशनलिस्ट पार्टी की सफलता ने लेजिस्लेटिव असेम्बली के राजनीतिक स्तर को नीचे गिरा दिया, बिलकुल निराधार है। लाला लाजपत राय, मालवीयजी तथा जयकर साहब के नेतृत्व में गठित नेशनलिस्ट पार्टी का काम

केन्द्रीय असेम्बली मे किसी प्रकार भी काग्रेस पार्टी के काम से कम गौरवपूर्ण और कम तगडा तथा कम प्रभावकारी नही था। वास्तव मे कभी-कभी तो नेशनलिस्ट पार्टी के नेता लाजपत राय और उपनेता मालवीयजी का विरोध काग्रेस पार्टी के नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू और उपनेता श्री श्रीनिवास ऐयंगर से अधिक तगडा होता था। मोतीलाल तथा श्रीनिवास ऐयगर के पारस्परिक सम्बन्धो से भी जो क्षोभ और अव्यवस्था काग्रेस पार्टी मे पैदा हो गयी थी, उसका शताश भी नेशनलिस्ट पार्टी मे नही था। समाज-सुधार के प्रश्नों पर मालवीयजी तथा लाला लाजपत राय में मतभेद था, पर उसके कारण पार्टी मे क्षोभ की स्थिति पैदा नही हुई। दोनों ने पारस्परिक सद्भावना के साथ असम्वली मे अपने विचार प्रस्तुत किये। पार्टी के साधारण सदस्यों को भडकाकर अपने को ऊँचा उठाने की और दूसरे को नीचा गिराने की बात तो इन दोनों मे कोई सोच भी नही सकता था।[१०३]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी ने राजनीति मे भी भारतीय धर्म तथा दर्शन की गरिमा के अनुसार काम किया है और प्रजातंत्र के इस गुण को उन्होने सबसे अधिक चरितार्थ किया हैं, जिसमे विरोधी दल के तर्कों और विचारों का प्रजातंत्र मे विशेष महत्व होता हैं। उन्होंने वैचारिक मतभेद को व्यक्तिगत स्तर पर कभी नही लिया और विपक्षी को सदैव महत्वपूर्ण स्थान दिया। प० मोतीलाल नेहरू को काग्रेस मे लाने का श्रेय मालवीयजी को है। उन्हें कांग्रेस का अध्यक्ष निर्वाचित कराना भी मालवीयजी के ही प्रयासो का प्रतिफल रहा है, किन्तु मतभेद के समय भी उन्होने कभी इन बातों का उल्लेख अथवा मोतीलालजी के व्यक्तित्व पर कोई टीका-टिप्पणी नही की, जबकि विरोध के दिनों मे मोतीलालजी और उनके समर्थकों ने मालवीयजी को सदा ही नीचा दिखाने का प्रयास किया था।

साम्प्रदायिक निर्णय पर मालवीयजी के सामाजिक विचार

१७ अगस्त १९३२ ई० को प्रधान मत्री मेकडौनल्ड ने अपना साम्प्रदायिक निर्णय घोषित किया। उन्होने इस निर्णय द्वारा भारतीय निर्वाचको को मुसलमान, दलित वर्ग, पिछडा वर्ग, भारतीय ईसाई, सिक्ख, व्यावसायिक तथा औद्योगिक वर्ग, जमीन्दार, श्रमिक, विश्वविद्यालय आदि श्रेणियो मे विभक्त कर दिया और इन सबके लिए पृथक् निर्वाचन पद्धति द्वारा पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की। अर्ध-गोरे यूरोपियनों के लिए भी पृथक् प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गयी। व्यावसायिक वर्ग को प्रजातीय आधार पर विभाजित कर यूरोपियन व्यापार-मण्डलो के प्रतिनिधित्व का पृथक् प्रवन्ध कर दिया गया।

मालवीयजी राष्ट्रीयता की दृष्टि से इस विभेदीकृत निर्णय को राष्ट्र के लिए घातक समझते थे। अतः ९ मई १९३४ ई० को उन्होने लाहौर से एक वक्तव्य प्रसारित किया, जिसमे उन्होने उक्त निर्णय के प्रति असन्तोष व्यक्त किया।

१८-१९ मई, १९२४ ई० में मालवीयजी की अध्यक्षता में पटना मे अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ, जिसमे अनेक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये। जून १९३४ ई० मे कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने सरकार के श्वेतपत्र और साम्प्रदायिक निर्णय के विरोध मे प्रस्ताव पारित किया। प्रस्ताव मे साम्प्रदायिक निर्णय को दोषपूर्ण बताया गया, पर निश्चय किया गया कि 'परिस्थिति को ध्यान मे रखते हुए कमेटी न तो स्वीकार करती हैं और न ही रद्द करती है।'

मालवीयजी चाहते थे कि 'नरो वा कुंजरो' की भाषा के स्थान पर साम्प्रदायिक निर्णय को स्पष्ट शब्दों में रद्द करने की घोषणा की जाय।

सुभाषचन्द्र बोस भी साम्प्रदायिक निर्णय के विरोधी थे। उनका कहना था कि साम्प्रदायिक निर्णय को तत्काल रद्द कर देना चाहिए। चाहे उसका विकल्प तुरन्त मिल पाये अथवा नही।[१०४]

१९३४ ई० मे डॉ० राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में काग्रेस का अधिवेशन हुआ। इसमें मालवीयजी ने सरकार के साम्प्रदायिक निर्णय का विरोध किया। अणे महोदय ने उनके प्रस्ताव का समर्थन किया। सरदार गोपाल सिंह कौमी तथा मौलवी अब्दुल कलाम आदि ने उनका समर्थन किया। सिंधवी आदि कई व्यक्तियों ने उसका कड़ा विरोध किया।[१०५]

सरदार पटेल ने कहा कि 'साम्प्रदायिक निर्णय किसे पसन्द है ? वह तो राष्ट्र-विरोधी है ही और देश मे फूट डालने के लिए बनाया ही गया है। हम सब मालवीयजी का आदर करते हैं। उनकी भावनाओ के प्रति हमारी सहानुभूति है। हम चाहते है कि साम्प्रदायिक निर्णय रद्द हो·········।'[१०६] फिर भी कांग्रेस ने भारी बहुमत से मालवीयजी का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।

साम्प्रदायिक निर्णय-विरोधी सम्मेलन

मालवीयजी की प्रेरणा से २३-२४ फरवरी १९३५ई० मे दिल्ली मे सी.वाई. चिन्तामणि की अध्यक्षता मे साम्प्रदायिक निर्णय के विरुद्ध एक सम्मेलन हुआ। चिन्तामणि ने कहा कि साम्प्रदायिक निर्णय पच-निर्णय नही समझा जा सकता। यह ब्रिटिश अधिकारियो की चाल है।········साम्प्रदायिक निर्णय त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि पजाब और बंगाल के हिन्दुओ के लिए उनकी जन-संख्या से भी कम स्थान सुरक्षित है·········यूरोपियनो को भी अधिक स्थान दिये गये हैं।[१०७]

'२४ फरवरी को कान्फरेन्स मे सर्वसम्मति से मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए साम्प्रदायिक निर्णय को निन्दनीय घोषित किया गया····—।'[१०८]

कान्फरेंन्स में मालवीयजी की अध्यक्षता में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, सी०वाई० चिन्तामणि आदि बहुत-से सुविख्यात सज्जनों की

कमेटी गठित की गयी, जिसमे मालवीयजी के नेतृत्व मे एक डेपुटेशन लन्दन भेजने का निश्चय किया गया।

सरकार के साम्प्रदायिक निर्णय के प्रति काग्रेस के अस्पष्ट रवैये के कारण मालवीयजी ने नवीन पार्टी का गठन किया था, परन्तु असेम्बली मे उसके सदस्य सरकार के साम्प्रदायिक निर्णय के विपरीत अन्य बातों पर काग्रेस के साथ थे।[१०९] इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्प्रदायिक निर्णय जैसे राष्ट्र-विरोधी सरकारी अधिनियमो का विरोध काग्रेस नही कर पा रही थी, जबकि उसके सभी उच्चकोटि के नेता व्यक्तिगत रूप से उक्त निर्णय को राष्ट्रघाती, अग्रेजो की चाल मान रहे थे, फिर भी वे सत्य को सत्य रूप मे नही व्यक्त कर पा रहे थे। ऐसे स्थल पर सत्य और राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर मालवीयजी ने उक्त निर्णय का विरोध किया था—यह उनकी सत्यनिष्ठ, निर्भीक नीति का परिचायक है।

हिन्दी एवं नागरी द्वारा देश का राष्ट्रीयता-सम्बन्धी नेतृत्व

किसी राष्ट्र की एकता के लिए एक भाषा का होना आवश्यक है। मालवीयजी ने भारत जैसे बहुभाषा-भाषी देश की अनेकता मे राष्ट्रीय एकता के लिए हिन्दी को राष्ट्रीय स्तर पर विकसित एव प्रसारित करने का प्रयास आरम्भ किया। हिन्दी और नागरी के सम्बन्ध मे उन्होने जो नेतृत्व किया, उसका देश की राजनीति पर व्यापक प्रभाव पडा। इस सम्बन्ध मे हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा काशी नागरी प्रचारिणी सभा जैसी सस्थाओ की स्थापना उन्ही की प्रेरणा और प्रयास का प्रतिफल है। मालवीयजी ने १० अक्टूबर १९१० ई० मे काशी मे आयोजित हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन की अध्यक्षता की। इस अवसर पर उन्होने हिन्दी तथा देश की भाषाओ के परस्पर सम्बन्ध के महत्व पर प्रकाश डाला और हिन्दी साहित्य-भण्डार को समृद्ध करने पर बल दिया।[११०] उन्होने कहा—'एकता की दृष्टि से देश की सब भाषाएँ हमारी भाषाएँ हैं, पर हिन्दी अपनी बहनों मे सबसे प्राचीनतम और बडी बहन है।'[१११] मालवीयजी ने हिन्दी का महत्व बताते हुए कहा कि 'हिन्दी भाषा एक सार्वजनिक भाषा है,जिसे सब भेद-भाव छोड़कर प्रत्येक भारतीय स्वीकार कर सकता है।'[११२]

काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से जब देवनागरी को न्यायालय मे प्रवेश दिलाने का आन्दोलन आरम्भ हुआ, तब मालवीयजी उसके नेता चुने गये। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन गवर्नर सर एटनी मैकडोनाल्ड मालवीयजी की विद्वत्ता और उनकी हिन्दी के लिए की गयी पैरवी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने न्यायालयो मे आवेदन-पत्र लेने के सम्बन्ध मे राजाज्ञा निकाल दी। इसके विरोध मे मुसलमानों के नेताओ ने उर्दू के पक्ष मे नागरी के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया, परन्तु मालवीयजी से लोहा लेना टेढी खीर थी और वे असफल रहे।'[११३]

इस प्रकार मालवीयजी ने उस युग में जब सरकार हिन्दू और मुसलमानो में फूट डालने के लिए मुसलमानों का पक्ष लेती थी,(उन्होंने)आम जनता के लिए दुरुह फारसी और उर्दू के विरुद्ध प्रचलन के विरुद्ध जनता की भाषा हिन्दी तथा सरल और सर्वग्राह्य लिपि नागरी को न्यायालयों में स्थान दिलाया। यह प्रश्न उर्दू को हटाने का नही था, किन्तु हिन्दी जैसी सर्वग्राह्य भाषा को प्रयोग और प्रचलन से वंचित रखने का था, जो मालवीयजी के परिवर्तनवादी दृष्टिकोण का परिचायक है। उन्होंने पहले से न्यायालयों में प्रचलित उर्दू और उसके समर्थकों की भावना पर बिना किसी प्रकार का आघात किये हिन्दी को भी उसके साथ न्यायालयों मे स्थान दिलाया। उनके कार्य का यही ढंग होता था, जिसमे जो परम्पराएँ और बातें चल रही है, वह उनका विरोध नही करते थे, किन्तु उसके साथ जो उचित होता था उसको प्रकाश मे लाते थे, और सही-गलत का निर्णय गुण और दोष को सामने रखकर जनता द्वारा कराना पसन्द करते थे।

(ग) धार्मिक-सामाजिक राजनीति एवं उदार नेतृत्व

मालवीयजी ने धार्मिक क्षेत्र मे भी भारतीय जनता का पथ-प्रदर्शन किया था। धर्म के क्षेत्र मे मनु तथा शास्त्रों के उपासक होते हुए भी उन्होने धर्म तथा धार्मिक परम्पराओं मे समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन मे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया था। दूसरे शब्दों मे मालवीयजी ने भारतीय जनता का धार्मिक क्षेत्र में नेतृत्व भी किया था।

मालवीयजी उच्च कुल के ब्राह्मण थे। अत: भारतीय जनता ने उनको अपना धार्मिक नेता भी माना था। मालवीयजी की राजनीति भी धर्म से प्रभावित रही है। एक दिन ब्रजमोहन व्यास ने कहा कि महाकवि माघ ने एक छन्द मे राजनीति शब्द की व्याख्या कर दी है अर्थात् 'अपना उदय और शत्रु का नाश राजनीति है।' मालवीयजी ने कहा—'दूसरों का भी अपने साथ-साथ अभ्युदय हो यही सच्ची श्लाघनीय राजनीति है। देखो एक उपदेश देता हूँ जीवन भर याद रखना, अभ्युदय की ही कामना करनी चाहिए किसी को नीचा दिखाने की नहीं।'[१२५]

धर्म-परिवर्तन और शुद्धीकरण

मालवीयजी के धार्मिक नेतृत्व की भी एक शास्त्रीय परम्परा थी। सनातन धर्म छोड कर दूसरा धर्म स्वीकार करनेवाले हिन्दुओ के लिए हिन्दू सनातन धर्म में पुनः प्रवेश करने के सभी द्वार बन्द हो जाते हैं। व्यक्ति को पश्चात्ताप या

परिष्कार करने को कोई परम्परा नहीं है। इस परम्परा का खण्डन मालवीयजी ने अपने ढंग से किया था। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उदाहरण उल्लेखनीय है--

'सीतामऊ एक छोटा सा देशी राज्य था। वहाँ राठौर वंशीय क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। उनके मझले कुमार गोविन्द सिंह ने इन्दौर के क्रिश्चियन कालेज के लोगो के प्रभाव में आकर क्रिश्चियन धर्म स्वीकार कर लिया। राजा साहब ने इसे सहन करते हुए राजकुमार को ४००) रु० मासिक देना स्वीकार कर लिया। गोविन्द सिंह लखनऊ मे कानून की शिक्षा ग्रहण करने लगे। उन्हे वहाँ क्रिश्चियन-धर्म दीक्षा से पश्चात्ताप होने लगा। उन्होंने विभिन्न माध्यमों से पुन हिन्दू धर्म मे दीक्षित होने की मशा व्यक्त की। आर्य-समाज की दीक्षा उनके सम्बन्धी अन्य राजे मानने को तैयार नहो थे, किन्तु मालवीयजी की व्यवस्था सबको स्वीकार्य थी।

इस काम के लिए राजकुमार के ट्यूटर श्री रामप्रसाद पाण्डेय को नियुक्त किया गया। मालवीयजी बीमार थे। वह विन्ध्याचल पर्वत पर विश्राम कर रहे थे। उन्होंने यह कार्य पं० रामव्यास ज्योतिषी को सौंपा।

गगा तट पर दो दिनों तक हवन-पूजन हुआ और प्रायश्चित्त करा कर राजकुमार को पुनः हिन्दू बनाया गया। शुद्धि की सागोपाग क्रिया १३ नवम्बर १९३८ई० को सम्पन्न हुई। पं० रामव्यास राजकुमार को लेकर विन्ध्याचल गये। वहाँ मालवीयजी ने राजकुमार को आशीर्वाद दिया। मालवीयजी ने इसकी सूचना तार द्वारा राजकुमार के अन्यान्य सम्बन्धी राजपूतों को दी। सभी नरेशो ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया और मालवीयजी को बधाई के सन्देश भेजे।[115] इसी प्रकार की अन्यान्य घटनाओं के समय भी उन्होने शुद्धीकरण की व्यवस्था दी और हिन्दू धर्म के बन्द द्वार को उन्मुक्त किया।

जात-पॉत के विरोधी

मार्च १९३१ ई० मे कानपुर मे हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। उसके बाद अप्रैल १९३१ ई० में हिन्दू-मुसलमानों की खुली सभा हुई। उस सभा मे मालवीयजी ने कहा—'मैं मनुष्यता का उपासक हूँ। मनुष्यत्व के आगे मैं जात-पाँत नही मानता। ....गरीबो की सेवा कीजिए, उनका प्रेम से आलिंगन कीजिए और अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप कीजिए।'

धार्मिक नेतृत्व का आधार सुधारवादी विचार

मालवीयजी जो कुछ करते थे, उसके पीछे उनका कुछ उद्देश्य रहता था। हिन्दू महासभा का जब भी अधिवेशन हुआ उसमें उन्होने सुधारवादी कार्य किये, जिनमे कतिपय सुधार कार्य एव तत्सम्बन्धी विचार निम्नलिखित है—

हिन्दू महासभा का अधिवेशन तथा राष्ट्रीय नेताओं का योगदान : हिन्दू महासभा के अधिवेशन मे मालवीयजी सदैव सुधारवादी कार्य करते थे। इसमे

उस समय के चोटी के नेता भी भाग लेते थे। उदाहरणस्वरूप २७-२८ दिसम्बर १९२९ ई० में बेलगाँव की हिन्दू महासभा में मालवीयजी अध्यक्ष बनाये गये। यह सभा बेलगाँव काग्रेस के साथ हुई थी। इस सभा में महात्मा गाँधी, लाला लाजपत राय, देशबन्धु चित्तरजनदास, पं० मोतीलाल नेहरू, स्वामी श्रद्धानन्द, कर सिंह, चिन्तामणि केलकर, सत्यमूर्ति, शौकत अली, मुहम्मद अली आदि नेताओं ने भी भाग लिया था।[116] इस प्रकार हम देखते हैं कि उनके द्वारा आयोजित हिन्दू-महासभा के अधिवेशन में महात्मा गाँधी से लेकर शौकत अली प्रभृति मुसलमान नेता तक मालवीयजी के प्रयास से उपस्थित थे। मालवीमजी के प्रयासों द्वारा उस समय प्राय' काग्रेस के अधिवेशन के साथ-साथ हिन्दू महासभा का भी अधिवेशन हुआ करता था, जिसमे वह देश के सभी सम्प्रदाय के लोगों को सम्मिलित किया करते थे।

गोरक्षा आन्दोलन

गोरक्षा मालवीयजी के आन्दोलन का एक अग था। उनके प्रयास से काग्रेस के जन्म के वाद गोरक्षा सम्मेलन भी होने लगा। इस सम्बन्ध मे मालवीयजी की प्रेरणा से 'अखिल भारतीय गोरक्षा समिति, साबरमती के अधीन महात्मा गाधी की संरक्षता मे एक केन्द्रीय गोरक्षा समिति बनी, जो बराबर गोरक्षा कार्य करती थी।[117]

मालवीयजी किसी बात का क्रियात्मक पक्ष समझकर ही कोई कार्य करते थे। उन्होंने धार्मिक भावना के साथ ही गोवंश के पौष्टिक दुग्धाहार-सम्बन्धी भौतिक पक्ष पर भी व्यापक ध्यान दिया था। उन्होंने गोरक्षा-आन्दोलन पर बल देने के साथ ही साथ गोशालाओ की स्थापना भी की तथा गोचर भूमि की भी व्यवस्था की।[118]

अछूतोद्धार तथा मंत्र-दीक्षा नेतृत्व एवं नीति

मालवीयजी ने सनातन धर्म महासभा के मंच से धार्मिक एकता का भी कार्य किया था। २६ जनवरी १९२५ ई० में अखिल भारतीय सनातन धर्म महासभा के विशेष अधिवेशन में उन्होंने अस्पृश्यों से भेद-भाव मिटाने के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव पारित कराया था।

अस्पृश्य : 'यह महासभा इस बात को मानती है कि जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गयी हैं, वे सनातन धर्म को मानने वाली हैं और इसलिए समस्त सनातन धर्मियो का यह कर्त्तव्य है कि वे उन जातियो के लोगों को सनातन धर्मानुयायी होने का पूरा लाभ प्राप्त करने में सहयोग करें।.........सनातन धर्मी होने के नाते इन्हें भी देव-दर्शन का अधिकार है। अत: महासभा मन्दिरो की स्थिति के अनुसार देव-दर्शन का प्रबन्ध करे।'

महासभा की सम्मति में अस्पृश्य कही जाने वाली जातियो को सर्वसाधारण कुएँ, तालाबों, वावलियों, बाग, सडक, सराय, श्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूल और सभाओ मे जाने के लिए कोई रोक नही होनी चाहिए।'''''''''आदि।

इस प्रकार मालवीयजी ने उक्त सभा के माध्यम से अस्पृश्यो को जो मन्दिर के द्वार तक भी न फटकने पाते थे, पहले देव-दर्शन करने की स्वीकृति दिलायी। तत्पश्चात् उन्होंने अन्य सवर्णो की भाँति हरिजन मन्दिर-प्रवेश की बात भी मान ली थी। उन्होंने साधारण कूप तथा बावलियो पर हरिजनो के लिए लगी रोक को भी समाप्त कराने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित कराया और हरिजनो को उनका न्यायोचित अधिकार दिलाया।

सामाजिक मंत्र-दीक्षा

मालवीयजी ने प्रयाग मे 'सनातन धर्म महासभा' की स्थापना की। इस अधिवेशन मे भारत के दूर-दूर के क्षेत्रो के दिग्गज पण्डितों ने भाग लिया। उन्होने हरिजनो को मंत्र-दीक्षा का प्रस्ताव, जो मनु तथा अन्य ऋषियों के आधार पर तैयार किया गया था, प्रस्तुत किया। पण्डितो मे तहलका मच गया। एक पण्डित ने सस्कृत मे कहा—'मालवीयजी अपने को मनु से भी अधिक समझते हैं।[119] उनके अनुसार—हरिजनों को मंत्र दीक्षा नही दी जा सकती।' इस पर मालवीयजी ने एक घण्टे तक धारा-प्रवाह संस्कृत मे सयत और तर्कयुक्त भाषण दिया कि 'मैंने आप ऐसे विद्वानों के चरणो मे मनु एवं अन्य ऋषियो के सिद्धान्तो की समीक्षा, जैसी मेरी तुच्छ बुद्धि मे आयी प्रस्तुत की है। निर्णय तो आप लोगो के हाथ मे है। जैसा आप निर्णय करेंगे—मै उसका पालन करूँगा। पण्डितो ने उनकी वाणी और तर्क से प्रभावित होकर उस प्रस्ताव को उसी रूप में सर्वसम्मति से पारित कर दिया।[120]

१९२७ ई० मे महाशिवरात्रि के दिन काशी मे दशाश्वमेध घाट पर उन्होने ब्राह्मण से लेकर चाण्डाल तक को मत्र-दीक्षा दी। १९३६ ई० मे मालवीयजी नासिक गये और वहाँ गोदावरी के तट पर हरिजनो को दीक्षा दी। कलकत्ते मे सवर्णो ने उनके ऊपर कीचड़ फेंका तथा दीक्षामण्डप मे बाधाएँ डालीं, किन्तु वह अपने कार्य में सलग्न रहे और दीक्षा-कार्यक्रम देश के विविध भागों मे आयोजित कराते रहे।

यहाँ हम देखते है कि मालवीयजी ने ब्राह्मणों से लेकर हरिजनो तक के लिए मत्रदीक्षा का आयोजन कर, एकता के मच को स्थापित करने का प्रयोग किया था, जिससे भारत के बहु जातिवाद के एकीकरण का व्यवहारवादी समाकलन दृष्टिगोचर होता है। दीक्षा हरिजनों के धार्मिक स्तर को उन्नत करने का प्रयास था, जिसमे बिना किसी संघर्ष के हरिजनों की उपेक्षित सामाजिक स्थिति को

ऊँचा उठाने का उनका जनतांत्रिक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। उनका इस प्रकार का कार्य जहाँ धार्मिक नेतृत्व की विशेषता का द्योतक है, वही अनेकता में एकता स्थापित करने की दिशा मे उठाये गये प्रगतिशील कदमों पर भी व्यापक प्रकाश पड़ता है।

सामाजिक, धार्मिक द्वन्द्ववाद की स्थिति मे देहली दीपक विचारधारा

कभी-कभी समाज में कर्म अथवा राजनीति से सम्बन्धित ऐसे प्रश्न उठा दिये जाते है, जिनमे वर्ग सघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में समाज के वर्तमान ढांचे को बनाये रखने वाला वर्ग तथा तार्किक दृष्टि से परिवर्तनवादी वर्ग की विचारधाराओ मे संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मालवीयजी के जीवन में कांग्रेस की राजनीति मे तथा धार्मिक क्षेत्रो मे ऐसी बातें अनेक बार आती रही है, किन्तु उन्होने दोनो ही वर्गों की स्थिति स्पष्ट करते हुए सघर्षो को सदैव नवीन दिशा देने मे सफलता हासिल की थी। यह उनके नेतृत्व की प्रमुख विशेषता रही है। ऐसी ही घटना हिन्दू महासभा के कलकत्ता अधिवेशन के समय उपस्थित हुई थी। उक्त सम्मेलन पजाब केशरी लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में हो रहा था। रामजी प्रसाद ने अछूतो और शूद्रो को वेद पाठ का अधिकार देने का प्रस्ताव उठाया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ने समर्थन करते हुए कहा कि 'ईश्वर की दी हुई रोशनी, हवा, वर्षा से जब शूद्र वचित नही हैं, तब ईश्वर की वाणी (वेद) से क्यों वचित रहें?'

पडाल में सवर्णो तथा अन्य लोगों के परस्पर विरोधी विचारों से हलचल मच गयी। उस कोलाहल वाली भीड़ को संभालने के लिए कोई सामने नही आ रहा था। अध्यक्ष लाला लाजपत राय ने मालवीयजी से बोलने का आग्रह किया। मालवीयजी बोले—'ईश्वर के दिये हुए प्रसाद प्राणिमात्र के लिए सुलभ है, परन्तु वेदो का अध्ययन करने के लिए कठोर तपस्या की आवश्यकता है, जो सबके लिए साध्य नहीं है। इसीलिए भगवान् ने स्वय वेद-शास्त्रोपनिषदो का सार 'श्रीमद्भगवद्गीता' के रूप मे प्रकट कर दिया। वह भी साक्षात् ईश्वर की ही वाणी है। गीता भूमण्डल का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इसका अध्ययन और मनन सबके लिए सुलभ है। शूद्र और अन्त्यज भी उसका पाठ करके सफल-मनोरथ हो सकते है। वेदपाठ का अधिकार मात्र ले लेने से कोई लाभ नही। उसके लिए कठिन साधना की आवश्यकता होगी। प्रस्ताव वही पारित करना चाहिए जो कार्यरूप मे परिणत हो सके। भगवान् ने यही समझ कर गीता का उपदेश दिया है कि कलियुग मे वेदपाठ सब श्रेणी के मनुष्यो के लिए साध्य नही होगा।'[२१]

यहाँ मालवीयजी ने स्पष्ट कर दिया है कि वेदपाठ दुरूह कार्य है। इसके लिए कठिन तपस्या और त्याग की आवश्यकता है, जो कठिन कार्य है। वैसे ईश्वर के दिये हुए प्रसाद पर प्राणिमात्र का अधिकार स्वीकार किया है। वेदों के प्रति

स्थिर मान्यता के आधार पर उन्होंने उसके स्वरूप को बनाये रखने के लिए, पाठ-भेद से बचने के लिए बिना साधना के उसके पाठ को कठिन कार्य बताते हुए सवर्णों की परम्परागत मान्यता को बिना ठेस पहुँचाये सहज समझ में आने वाले वेदशास्त्र के सार गीता के पाठ की ओर ध्यान आकर्षित किया है, जिसे ब्राह्मण से लेकर शूद्र पर्यन्त कलियुग में आसानी से पढ और समझ सकते हैं। इस प्रकार मालवीयजी ने यहाँ पारस्परिक परम्परागत द्वन्द्व की स्थिति समाप्त करने की अपने नेतृत्व की सर्वसम्मत क्षमता का परिचय दिया है।

एकता का सर्वोपरि सामाजिक महत्व

मालवीयजी ने धर्म, राजनीति आदि सभी क्षेत्रों में एकता के व्यापक सामाजिक महत्व पर सर्वाधिक बल दिया है। उन्होंने एकता-स्थापन हेतु कहा था—'एकता के लिए गाँव-गाँव में सभी जातियों को एकत्र कर सभा कर ले, जिससे आपस मे एकता बढे और परस्पर के सभी विषयों का निर्णय समझौते से हो जाय। मास में एक बार मिलकर सामाजिक तथा धार्मिक विषयो पर विचार कर लें और गिरी दशा सुधारने का सामूहिक प्रयास करें।'[122]

अछूतों की दशा-सुधार के विषय मे उन्होंने कहा था कि 'आप लोग अछूतों से प्रेम-व्यवहार करें। उन्हें भी अपना भाई समझें। छुआ-छूत को दूर करें। उनकी अवस्था को सुधारें और उनकी उन्नति का मार्ग सोचें।'....[123]

गांधीजी की सभा में अन्त्यजोद्धार के सम्बन्ध में मालवीयजी के सामाजिक विचार

जुलाई १९३४ई० मे गाधीजी हरिजनोद्धार के काम से वाराणसी आये, उनकी सभा में ही उनकी अनुमति से श्री देवनाकाचार्य ने अन्त्यजोद्धार कार्य को शास्त्र-विरुद्ध प्रमाणित करने का प्रयास किया।

उनके बाद मालवीयजी ने अपने भाषण मे (गाधीजी की उपस्थिति मे) शास्त्रो का सारगर्भित प्रमाण देते हुए कहा—'हमारे सनातन धर्म की महिमा है कि मनुष्य चाहे किसी जाति में रहे, किन्तु धर्म से चले तो उसका उद्धार हो सकता है। मैं धर्मग्रन्थों के अध्ययन के अनुसार कहता हूं कि हरिजनो को भी देवदर्शन का लाभ मिलना ही चाहिए। यही अभिलाषा गाधीजी को भी होगी। स्कन्दपुराण मे इसका प्रमाण है कि यदि चाण्डाल सदाचारी हो, तो वह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान आदर पाने योग्य हो जाता है। यदि ऐसा हो सकता है, तो हम अपने अछूत भाइयो को सदाचारी क्यो न बनाये ? हम उनको सदाचारी बनाकर दिखा दें कि जो भाई छोटे-से-छोटे हों उन्हे भी हिन्दू धर्म ऊँचा उठा सकता है।'[124] उन्होंने कहा—'(चाण्डाल) यदि प्यासा रह जाता है तो समझ लो हमारे पूर्वज पितर सब प्यासे रह गये। चाण्डाल भी हमारा अंग है।'....वह

मानव जाति की जो सेवा करता है, उसे और कोई नही कर सकता। यदि वे एक दिन भी अपना काम बन्द कर दें तो हमारी क्या दुर्गति होगी विचार लो।'[125]

सामाजिक, धार्मिक नीति, नेतृत्व और सत्याग्रह

मालवीयजी ने धार्मिक तथ्यो और परम्पराओं के सामाजिक महत्व और जन-भावना का भी नेतृत्व किया। सन् १९२४ मे अर्धकुम्भी पड़ी। सरकार ने संगम की धारा की गहराई को देखते हुए संगम पर स्नान के लिए रोक लगा दी। मालवीयजी ने संगम पर स्नानार्थियो की भारी संख्या और महत्व को देखते हुए स्नान-व्यवस्था करने तथा संगम पर लगी रोक हटाने के सम्बन्ध में सरकार से लिखा-पढ़ी की, पर सरकार उसे मानने के लिए तैयार न हुई। मालवीयजी ने इसे सम्पूर्ण हिन्दू जाति का घोर अपमान माना और सत्याग्रह करने की ठान ली। उस समय सारा मेला मालवीयजी के साथ था। आगे-आगे मालवीयजी और पीछे-पीछे जनसमूह स्नान हेतु चल पड़ा। वहाँ पहुँचने पर मालवीयजी को रोक दिया गया.... इन सत्याग्रहियो मे पं० जवाहरलाल नेहरू भी वालण्टियर थे।[126]

जवाहरलालजी कूद कर बन्ध पर चढ़ गये। उन्होने उस बन्ध पर राष्ट्रीय ध्वज टाँग दिया। मालवीयजी शान्त बैठे थे। परन्तु थोड़ी ही देर बाद विद्युत गति से उठे और घुड़सवार तथा पैदल सिपाहियों के बीच तीर की भाँति निकल गये।

जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा मे लिखा है कि 'मालवीयजी ने उस समय जो करतब दिखाया वह साधारण आदमी के लिए भी कठिन था। फिर बुढ़ापे की उस स्थिति मे यह करना तो महान् आश्चर्य की बात थी।' मालवीयजी के ही साथ बहुत-से लोग धारा मे कूद पड़े। मालवीयजी की विजय हुई।[127]

हिन्दू और मुस्लिम सामाजिक एकता

'हिन्दू और मुसलमानों मे मात्र उपासना विधि मे अन्तर है। इसके अतिरिक्त कोई अन्तर नही है।' जिस किसी जन को भी हिन्दू धर्म के सिद्धान्तो पर विश्वास हो उसे हिन्दू मान लिया जाय। इस निर्णय की पुष्टि मालवीयजी ने दो जगद्गुरु शंकराचार्यों की उपस्थिति मे करायी।

मालवीयजी दूसरे धर्मों का बड़ा आदर करते थे। उन्होने स्पष्ट कहा था कि 'मेरा अपने धर्म पर दृढ विश्वास है, परन्तु पर-धर्म का अपमान करने की कल्पना मेरे मन में नाम मात्र को भी नही है। किसी गिरजाघर और मसजिद के पास से जब भी जाता हूँ तो मेरा मस्तक झुक जाता है। जबकि परमेश्वर एक ही है, तो हमारे लड़ने का कारण क्या है? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परि-स्थिति मे रहते हुए भी आपस में दगों का होना, इससे बढ़कर और आश्चर्य की

बात क्या हो सकती है। हमारा रक्षण विदेशी सेना करे, यह लज्जा की बात है।'[128] मालवीयजी केवल मौखिक रूप से ही उक्त बात नही कहते थे, अपितु वे उसका अक्षरशः पालन भी करते थे। उन्होंने जहाँ मन्दिरो की प्रतिष्ठा करने मे सहयोग किया वही (उन्होंने) मस्जिदों का जीर्णोद्धार भी कराया था।[129] यहाँ हम देखते है कि मालवीयजी यह चाहते थे कि सभी लोग अपने-अपने धर्म का समादर करे और कोई भी किसी दूसरे के धर्म का निरादर न करें।

मालवीयजी के धार्मिक नेतृत्व के सापेक्षिक महत्व है। उन्होंने धर्म के सम्बन्ध में जहाँ धार्मिक समुदायों के विभेदीकरण मे एकता स्थापित करने का प्रयास किया, वही धार्मिक मान्यताओं के प्रति सहज आस्था भी व्यक्त की। धर्म के सम्बन्ध में उन्होंने सदैव परम्पराओ और मान्यताओ की रूढियो द्वारा आये हुए दोषो का बहिष्कार धार्मिक पृष्ठभूमि में करने का प्रयास किया। धार्मिक मामलो में, वर्गों मे विरोधाभास को स्थिति उत्पन्न होने पर उन्होंने समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए एकता के महत्व को दर्शाया। उनकी उक्त विचारधारा परिवर्तनोन्मुखी रही है, जो उनके निम्नलिखित भाषण से स्पष्ट होती है—'भिन्न-भिन्न धर्म और सम्प्रदाय है। सबके उच्च और शुभ नियम मानव मात्र को मान्य है। वे चाहे हमारे देश के हो या अन्य देश के, चाहे वे काले हों या न हों। वे सभी उस शक्ति की आज्ञा का उल्लंघन नही कर सकते। उन्हें वह आज्ञा माननी ही पडती है। ईसाई, मुसलमान, बौद्ध सब उसके नियमों के अनुकूल चलते है।'[130] उनकी नीति में परिवर्तन, सुधार और अधिकार की परम्परित माँग को सत्य और यथार्थ की परिधि मे प्रस्तुत किया गया है। मार्क्स के अनुसार—'बल नवीन समाज को गर्भ मे धारण करने वाली प्रत्येक पुराने समाज की दाई है।'[131] उन्होंने जहाँ राज्य को एक राजनीतिक हथियार बताते हुए, इसे एक वर्ग पर दूसरे वर्ग का शासन माना है और इसे पूरी जनसंख्या के विपरीत प्रभुत्वशाली वर्ग के हितो का संरक्षक और यथास्थिति बनाये रखने का स्रोत बताया है, तथा इस प्रकार की पूँजीवादी राज्य-व्यवस्था को समाप्त कर स्वतत्र राज्य-व्यवस्था कायम करने की श्रमिकवर्ग से अपेक्षा की है, वही मालवीयजी ने राज्य के व्यापक हिताहित कार्यों की व्यापकता और आधुनिकता के साथ इसके जनतत्र-विरोधी कार्यों पर विशेष रूप से जनान्दोलन की चर्चा करते हुए कहा है—'यह निर्विवाद है कि यदि कोई व्यवस्थापिका सभा अथवा राजा ऐसे कानून का प्रयोग करता है, जो स्पष्टतः अन्यायमूलक और उत्पीड़क हो और हमारी साधारण स्वाधीनता के लिए विघातक हो तो जनता को ऐसे कानून की अवज्ञा और उसके विपरीत गम्भीर एव घोर विरोध करना चाहिए।'[132]

मार्क्स और मालवीयजी के राज्य-सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों मे (तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर) जहाँ मार्क्स ने राज्य के कर्त्तव्यों के प्रसग मे उसके स्वरूप को

चर्चा करते हुए श्रमिकवर्ग से उसे समाप्त करने की चर्चा की है, वहीं मालवीयजी ने राज्य के कार्यों पर जनता के अंकुश की चर्चा करते हुए भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत अपना दृष्टिकोण रखा है, किन्तु दोनों विचारधाराएँ देशगत सांस्कृतिक पर्यावरण की भिन्नता में प्रयोजन सादृश्य की समानता की द्योतक हैं।

इसी प्रसंग में मालवीयजी ने सरकार के स्वरूप के विषय में बताया है कि 'सरकार ऐसी हो, जिसमें देश के प्रतिनिधियों का महत्वपूर्ण अधिकार हो।''''जब शासन में हमारे दूरदर्शी प्रतिनिधियों का हाथ रहता है, तब हमलोग आर्थिक कुप्रबन्धों को वश में करने और उनके विरुद्ध कहने के योग्य हो जाते हैं।'[133]

उपर्युक्त प्रसंग में मार्क्स ने श्रमिकों से अपेक्षा की है कि निहित प्रभुत्वशाली वर्ग के हितों को संरक्षण देने वाली सरकार को समाप्त कर अधिक-से-अधिक लोगों के हितों की प्रतिनिधि सरकार की स्थापना करनी चाहिए।[134] यहाँ मालवीयजी ने भी सरकार पर जनता के नियन्त्रण की स्थिति को महत्व प्रदान किया है और निरंकुश सरकार को समाप्त करने की बात कही है, जिससे उनके विचार मार्क्स के विचारों से मिलते-जुलते प्रतीत होते हैं।

मालवीयजी : उदारवादी समाजवेत्ता

मालवीयजी के जीवन में अनेक ऐसी घटनाएँ हुई हैं, जिनसे उनकी उदार जनवादी भावनाओं का परिचय मिलता है। उनके विरोध करने की विधि निराली थी। किसी बात का विरोध करते समय वह इस बात का बराबर प्रयत्न करते थे कि उनके इस विरोध कार्य से दूसरों को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

लापियर तथा फासवर्थ के मतानुसार—'नेतृत्व वह व्यवहार है, जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है, जितना कि (इन) दूसरे लोगों का व्यवहार नेता को प्रभावित करता है। नेतृत्व का सार्थक प्रसार ऊपर से अनुयायियों की दिशा में होता है। परन्तु इसकी उत्तम दशा नेतृत्वकर्त्ता की ओर से चलकर अनुयायियों की ओर से नेता की ओर चलने की है, जिससे पारस्परिक अन्त क्रिया होती है।[135] ब्राउन के अनुसार—नेतृत्व नेता और अनुयायियों के मध्य पाये जाने वाले विशिष्ट सम्बन्धों का परिचायक है। यह सम्बन्ध एकतरफा नहीं होता। अर्थात् नेतृत्व उभयपक्षीय विषय है। नेतृत्व के सम्पूर्ण प्रतिमानों में नेता और अनुयायियों का पारस्परिक सम्बन्ध व्यक्त होता है। जहाँ एक ओर नेता का नेतृत्व इस प्रक्रिया में सामने आता है, वहीं अनुयायियों का नेतृत्व भी कभी-कभी नेतृत्व गुण ग्रहण करके प्रत्यक्ष प्रकाशित हो जाता है।[136]

प्रेस ऐक्ट के विरोध के समय कांग्रेस नरम दल के नेता गोपालकृष्ण गोखले थे। उक्त विधेयक प्रस्तुत होने पर मालवीयजी ने अपनी देशभक्ति के कारण विद्रोह कर दिया। इस विरोध के पीछे अंग्रेज शासन का भयंकर कोपभाजन होना

स्वाभाविक था, जिसकी ओर नेता गोखले ने सकेत भी किया था, किन्तु मालवीयजी ने विनम्र विरोध करना ही यथेष्ट समझा। इस प्रकार मालवीयजी जहाँ नेता के घोर अनुयायी थे, वही सैद्धान्तिक प्रश्न पर अपनी आवाज ऊपर उठाने वाले नेतृत्व के गुण से भी सम्पन्न थे।

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने मालवीयजी के इसी गुण की चर्चा करते हुए लिखा है—'मालवीयजी मे नेतृत्व की तथा अनुगमन करने की अद्भुत शक्ति थी। जहां वह अपने से बहुत बाद मे काग्रेस मे सम्मिलित पण्डित मोतीलाल नेहरू, महात्मा गाधी आदि अनेक नेताओ के अग्रज और मान्य नेता थे, वही वह इन अनेक नेताओ का अनुगमन करने वाले अनुयायी भी थे। उनके प्रति महात्मा गाधी सहित सभी उच्चकोटि के नेताओ की अपार श्रद्धा की भावना थी। नेतृत्व के आपसी खिंचाव के कारण काग्रेस के उच्च नेताओ मे भी अनेक वार दरार पड़ गयी थी, जिसे जोडने के लिए सदैव मालवीयजी ने ही सेतु की भाँति काम किया था। कभी-कभी मालवीयजी और काग्रेस मे मतभेद हो जाता था, परन्तु मालवीयजी ने कभी भी काग्रेस को नही छोडा।'[137]

साराश

मालवीयजी नेतृत्व के क्षेत्र मे कई रूपो मे सामने आते है। ब्रिटिशकालीन भारतीय ससद् में जनता के प्रतिनिधि के रूप से नेतृत्व करने वाले मालवीयजी ने जनहित को सर्वोपरि स्थान दिया। उन्हें प्रत्येक भारतवासी हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिख, पारसी आदि विभिन्न धर्मावलम्बियो का सहज विश्वास प्राप्त था। उन्होंने सभी को भारतीय राष्ट्र की राष्ट्रीयता की ओर सभी प्रकार के साम्प्रदायिक तथा जातीय भेद-भाव को भूलकर, एकत्रित करने का प्रयास किया।

ब्रिटिशकालीन ससद् मे मालवीयजी ने जनता मे धनी और गरीव वर्ग के भेद-भाव को समाप्त करने की दिशा मे जमीन्दारी प्रथा-विरोध, ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता समाप्त करने के लिए आसान व्याजदर पर ग्रामीणो को ऋण देने की सरकारी नीति बनाने, देशी उद्योगों के संरक्षण, स्वदेशी प्रचार, शिक्षा प्रसार, रेल राष्ट्रीकरण, प्रेस ऐक्ट विरोध, प्रतिज्ञावद्ध कुली प्रथा का विरोध, जलियाँवाला हत्याकाण्ड के प्रति संसार के लोगो का ध्यानाकर्षण तथा अंग्रेजो का घोर विरोध आदि अन्यान्य क्षेत्रो मे देश का राजनीतिक प्रतिनिधित्व एवं नेतृत्व किया था, जिससे उनकी पुनर्जागरण और परिवर्तनवादी विचारधारा की पुष्टि होती है। उपर्युक्त कार्यों मे मालवीयजी ने उस युग की समाज-रचना मे आधुनिकतम कहे जाने वाले प्रगतिशील विचारों का बीजारोपण किया था। यह बात इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि मालवीयजी के बाद काग्रेस के प्रगतिशील कहे जाने वाले किसी भी कार्यक्रम मे उनके उपर्युक्त कार्यक्रमो से आगे कोई नवीन क्रान्तिकारी

परिवर्तन-विषयक कार्यक्रम पारित नही किया जा सका था जो उनके द्वारा उठाये गये कार्यों से परे कोई नवीन बात प्रकाश मे ला सका हो।

मालवीयजी की राजनीति सत्य और यथार्थ की न्यायोचित माँग को प्रकाशित करने से सम्बन्धित रही है, जहाँ छल और कपटपूर्ण स्वहित एवं स्वार्थ-साधन जैसी नीति को कोई स्थान नही था। उनकी राजनीति मे उद्देश्य तक पहुँचने के लिए भी आदर्शपथ का अनुकरण अत्यावश्यक है। उनकी राजनीति धर्माधृत मर्यादा और विश्वबन्धुत्व 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की नीति पर आधारित है, जो सत्य तथा शोषणरहित समाज रचना के परिवर्तन को साकार करने की दिशा मे लक्ष्योन्मुख है। मालवीयजी की राजनीति मे विग्रह के स्थान पर एकता का स्थान सर्वोपरि था। उनकी राजनीतिक एकता का आधार राष्ट्रीयता थी, यहाँ वह सभी जातियो तथा सम्प्रदाय के लोगो को स्वीकृत करना चाहते थे। काग्रेस के नरमदल तथा गरमदल मे विभक्त होने की स्थिति मे वह अपने विचार के (नरम) दल की दलीय राजनीति से ऊपर उठकर दोनों दलों में एकता स्थापित करते हैं।

देश की स्थिति मे सुधार हेतु वह स्वदेशी के महत्त्व को बताते हुए कहते हैं—देश की स्थिति तब सुधर सकती है, जब देश मे देशी वस्तुओं के व्यापार में वृद्धि हो और हमारे दैनिक उपयोग की वस्तुएँ देश मे उत्पन्न हों, जो महँगी होने पर भी देश की जनता द्वारा क्रय की जायें। देशभक्ति और राष्ट्रीयता उनकी राजनीतिक एकता के मूल स्तम्भ हैं, जहाँ वह देश को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में आबद्ध करना चाहते है।

मालवीयजी के अनुसार—'दूसरों का भी अपने साथ अभ्युदय हो यही श्लाघनीय राजनीति है।' अग्रेजो की फूट डालने की नीति के कारण साम्प्रदायिकता के आधार पर संसद मे भारतीय प्रतिनिधियो के सीट-निर्धारण के राष्ट्रीयता के प्रश्न पर काग्रेस के स्वराज्य और नेशनलिस्ट दल के आपसी सघर्ष के समय भी मालवीयजी ने अपनी उक्त राजनीति का ही अनुसरण किया था। उन्होने अपने प्रतिद्वन्द्वी राजनीतिज्ञों को कभी भी नीचा दिखाने का प्रयास नही किया था। किन्तु राष्ट्रीयता के मामले में संसद में उन्होंने प्रतिद्वन्द्वी दल का सदा साथ दिया था। काग्रेस की राजनीति मे हम देखते हैं कि हण्टर कमेटी के समक्ष गवाही देने के मामले मे काग्रेस का निर्णय मालवीयजी के पक्ष मे होता है। गाधीजो अपने पक्ष की पराजय से पजाब के अधिवेशन स्थल से खिन्न होकर वापस जाने की घोषणा करते है, जब यह बात मालवीयजी को ज्ञात होती है, तब वह पुनः बैठक बुलाकर एकता के लिए निर्णय गाधीजो के पक्ष मे करवाते हैं। इस प्रकार गाधीजी जहाँ विरोध मे पृथक् होने पर उतर आते हैं, मालवीयजी एकता के लिए अपने विचारों को बदल कर समझौता कर लेते हैं। परन्तु जहाँ राष्ट्रीय चरित्र अथवा राष्ट्रीयता को धक्का लग रहा हो, वहाँ मालवीयजी समझौता कदापि नही

करते थे। हिन्दू-मुसलमानों में फूट पैदा करनेवाली अंग्रेजों की साम्प्रदायिकता की नीति का मालवीयजी ने अन्त तक विरोध किया, जिसे कांग्रेस ने बहुत बाद में स्वीकार किया। इस एक बात पर वह अपनी बात की पुष्टि हेतु कांग्रेस में नेशनलिस्ट दल का भी गठन कर लेते हैं, जिसे प० जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में भारी सफलता मिली थी। उनका समर्थन सुभाषचन्द्र बोस, सरदार गोपाल सिंह कौमी, कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि ही नहीं करते; अपितु अब्दुल कलाम जैसे राष्ट्रीय मुसलमान भी करते हैं। इस प्रकार मालवीयजी की राजनीति में एक ओर समन्वय और समझौते की भावना थी, तो दूसरी ओर राष्ट्रीयता की आत्मघाती साम्प्रदायिक नीति के प्रश्न पर वह अपने विचारों का अन्त तक दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन करते हैं।

मालवीयजी ने अपनी सहज वैचारिकी के अनुसार देश को राजनीतिक नेतृत्व प्रदान किया था। वह हिन्दू धर्माध्यक्ष के रूप में भी परिवर्तन के क्षेत्र में सुधारवादी एवं प्रगतिशील मान्यताएँ स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील दिखायी देते हैं। उन्होंने दूसरे धर्मावलम्बियों को भी अपने धर्मों पर दृढ़ रहने की प्रेरणा प्रदान की थी। मालवीयजी के धर्म सम्बन्धी विचारों एवं नेतृत्व में सभी धर्मों के समन्वय की विचारधारा सन्निहित थी। वह विविध धर्मावलम्बियों में भेद नहीं मानते थे। यही कारण है कि उन्हें सभी धर्मावलम्बियों की सहज श्रद्धा और सम्मान, नेतृत्व के क्षेत्र में भी प्राप्त हुआ था। यहाँ इसके मूल कारण में हम पाते हैं कि मालवीयजी व्यक्तिगत रूप से कट्टर धार्मिक थे, किन्तु उनकी धार्मिक भावना सर्व धर्म समन्वय के अद्भुत गुण से युक्त थी। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध विचारक लेस्की ने अपने अध्ययन में पाया था कि 'अमेरिकी पृष्ठभूमि में धार्मिक समूहों की सदस्यता मानव व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों को उतना ही प्रभावित करती है, जितना धार्मिक वर्ग-संरचना।'[१२४८] उक्त बात भारत में भी उसी रूप में पायी जाती है, जैसी कि संयुक्त राज्य अमेरिका में। वस्तुतः मानव व्यवहार धार्मिक सदस्यता द्वारा ही निर्धारित होते हैं। मालवीयजी भी धर्म को चरित्र-निर्माण का प्रमुख साधन मानते थे। मानव व्यवहारों एवं अभिवृत्तियों को प्रभावित करने वाले धर्म को वह अद्वैतवाद की विचारधारा के अनुसार एकीकृत करना चाहते थे। उनके धार्मिक सम्मेलनों में महात्मा गांधी के समान राष्ट्रीय नेता के साथ-साथ शौकत अली, मु० अली आदि मुस्लिम नेता भी सम्मिलित होते थे। मालवीयजी धर्म को बहुत ही व्यापक अर्थ में लेते थे। धर्म के क्षेत्र में उन्होंने सुधारवादी कार्य करने का प्रयास किया था, जो उनके प्रगतिशील धार्मिक नेतृत्व का सूचक है। धर्माध्यक्ष के रूप में तथा कांग्रेस के अध्यक्ष एवं नेता के रूप में, मालवीयजी के नेतृत्व में परिवर्तन एवं आधुनिकता का दिग्दर्शन होता है।

मालवीयजी के नेतृत्व में उनके धार्मिक विश्वास के कारण (उनमें) अद्भुत आत्मबल दिखाई पड़ता है। प्रेस ऐक्ट के विरोध के समय तत्कालीन देश के

नरमदलीय नेता गोखले उन्हें सरकार के कोपभाजन बनने के खतरे की ओर संकेत करते हैं, किन्तु यहाँ देश के प्रेसों की स्वतन्त्रता का गला घोंटने वाले उस विधेयक के विरोध के लिए मालवीयजी शक्ति अर्जित करते हैं—अपने अटूट धार्मिक विश्वास 'गजेन्द्रमोक्ष' के पाठ द्वारा। इस प्रकार वह अपनी धार्मिक दृढ़ता के आधार पर सफलता प्राप्त करते हैं। गांधीजी भी ऐसे अवसरों पर ईश्वरी आस्था के आधार पर अपने को कार्योन्मुख करते रहे हैं। अतः यहाँ भी दोनों नेताओं के राजनीतिक नेतृत्व में समानता दिखायी पड़ती है। मालवीयजी तथा गांधीजी दोनों ही जनता के अधिकारों की माँग के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। दोनों की राजनीति एवं नेतृत्व धर्म और परमार्थ की सेवा की भावना से प्रेरित रहे हैं। मालवीयजी अपने राजनीतिक नेतृत्व में एकता को सर्वोपरि मानते हैं, और राष्ट्रीयता के लिए सभी धर्मावलम्बियों में राष्ट्रीय चरित्र के साथ ही राष्ट्रीय स्वाभिमान को जागृत करना चाहते हैं। इसके लिए वह व्यक्ति को राष्ट्रीय समष्टि में अध्यारोपित कर देना चाहते हैं, यही उनकी राजनीति की सबसे बड़ी विशेषता है। राजनीति में वह अपने पक्ष को रखते थे, न कि विरोध अथवा प्रतिरोध की बातों को। धार्मिक नेतृत्व में वह अपने धर्म की विशेषताओं को स्पष्ट करते थे, न कि दूसरे धर्मों की कमियों को। वह स्पष्ट रूप से अपने धर्म की बातों को स्थापित करना चाहते थे और हिन्दू धर्म में प्रवेश के बन्द द्वार को सबके लिए खुला रखना चाहते थे। संसदीय, राष्ट्रीय, धार्मिक, राजनीतिक एवं नेतृत्व के क्षेत्र में उनकी नीति इसी विशेषता से युक्त थी। उन्होंने अपने नेतृत्व के माध्यम से सामाजिक सुधार के क्षेत्र में कार्य करते समय इस बात का पहले ध्यान रखा था कि उनके कार्यों द्वारा किसी भी वर्ग या समुदाय के लोगों की भावनाओं को ठेस न लगे। इस भावना का उन्होंने अपने जीवन के शैक्षिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में अपने कार्य की दिशा में देश को नेतृत्व प्रदान करते समय अविच्छिन्न रूप से ध्यान रखा था। यही उनके नेतृत्व का गुण रहा है।

सन्दर्भ

1. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व,(पूर्व उद्धृत),पृ० ५१७।
2. वही, पृ० ५१७।
3. Dr. K.D. Dwivedi : Industrial and Vocational Psychology, Publication, U.P. Hindi Sansthan, Lucknow, U.P. (1974), p. 400.
4. महामना मालवीयजी, प्रकाशक : अखिल भारतीय विक्रम परिषद्, काशी, सं० २००५, पृ० १२१।

5. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत), पृ० १०६।
6. The Honourable Pt. Madan Mohan Malviya Life and Speaches, 2nd Edition, (1918), Ganesh Mahal, Madras, pp. 327-331.
7. Ibid, p. 107.
8. Ibid, pp. 415-416.
9. Ibid, pp. 417-418.
10. Ibid, (1904), pp. 359-363.
11. Proceeding : Council of Governor General (Legislative) August (1910), Vol. 49, p. 29.
12. Ibid, pp. 200-201.
13. Ibid, (1914), Vol. 52, pp. 718, 723, 1031, 1032.
14. Ibid, March (1916), Vol. 54, pp. 241-242 and 567.
15. Ibid, (1916), Vol. 54, pp. 241-242.
16. मनुस्मृति ७, १२७-१२८।
17. वही, पृ० २४५। १३३।
18. Proceeding : Council of Governor General (Lagislative) 1911, Vol. 49, p. 418.
19. Ibid, Vol. 49, pp. 419-421, Vol. 58, p. 261, 1911.
20. Ibid (1918) Vol. 56, pp. 1096, 1100.
21. Ibid, (1915), Vol. 53, p. 400.
22. Ibid, (1918), Vol. 58, p. 437.
Ibid, (1918), Vol. 56, pp. 1096-1098.
23. Ibid, (1914), Vol. 52, pp. 603-604.
24. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व(पूर्व उद्धृत),पृ० ३९१।
25. Agricultural Commission's Report, Vol. 7, p. 732 and p. 426, (1927).
26. Ibid, p. 709.
27. Twenty Fourth Indian National Congress : Report,(1909), p. 28.
28. Ibid, p. 29.
29. Ibid, p. 29.
30. Indian National Congress (Reports) Ibid (1917), Vol. 56, p. 178.
31. Ibid, (1912), Vol. 50, pp. 279-382.
32. Ibid, (1916), Vol. 54, p. 399.
33. Ibid, (1912), Vol. 50, pp. 382-383.
34. Ibid, (1916), Vol. 54, p. 399.

35. Proceeding : Council of Governor General, Vol. 49, pp. 57-62, 550-551 (1910).
36. Ibid, Vol. 53, pp. 501, 504 and 512.
37. Ibid (1918), Vol. 57.
38. Ibid (1916), Vol. 55, pp. 414, 343.
39. Debates : Indian Legislative Assembly [1927], Vol. 5, pp. 439-446.
40. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ३९९
41. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ४८।
42. वही, पृ० ५१।
43-44. पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत) पृ० १५०।
45. वही, पृ० १२०।
46. A.R. Desai : Social Background of Indian Nationalism, 3rd Edition, Popular Book Deport., Bombay (1959), p. 31.
47. Honourable Pt. Madan Mohau Malaviya Life and Speaches, op. cit. (1918), p. 205.
48. Ibid, pp. 264-265.
49. Ibid, pp. 42-43.
50 Lala Lajpat Roy : Young India, pp. 169-170 [1905]
51. Honourable Pt. Madan Mohan Malviya Life and Speaches, op. cit., pp. 33-35.
52. Ibid, p. 550.
53. मालवीयजी के लेख · (पूर्व उद्धृत), पृ० १५।
54. S. Levis Feuer (ed.) Basic Writings on Politics and Philosophy : Karl Marx, Freidrich Engels, New York : Anchor Books, Doubleday company, Inc. (1959), p. 26.
55. R.T. Lapeire and P.R. Fransworth : Social Psychology, Mcgro Hill Book Co., New York, p. 262.
56. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ४२।
57. आधुनिक भारत के निर्माता प० मदनमोहन मालवीय, प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, अक्टूबर १९७७ ई०, पृ० ७९
58. मालवीयजी के लेख (पूर्व उद्धृत), पृ० १५।
59. वही, पृ० १०८।
60. वही, पृ० १०१-१०२।
61. वही, पृ० १०८।
62. वही, पृ० १०१-१०२।

63. वही, पृ० ३० ।
64. वही, पृ० ८५ ।
65. वही, पृ० १११ ।
66. वही, पृ० १०४ ।
67. वही, पृ० ९९ ।
68. वही, पृ० १११ ।
69. वही, पृ० ६१ ।
70. वही, पृ० ६६ ।
71. वही, पृ० ७८-७९ ।
72. वही, पृ० ७९ ।
73. S G. Hulyackar, Outlines of Social Psychology, (1954) pp. 145-146.
74. Honourable Pt. Madan Mohan Malviya : Life and Speaches, op. cit., pp. 76-91.
75. Ibid, pp. 75-76, 85.
76. Ibid, pp. 104, 108.
77. M. Jha : Role of Central Legislature in the Freedom Struggle, p. 20, National Book Trust, India (1972).
78. अभ्युदय, २८ फरवरी, १९०९ ई० ।
79. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, (पूर्व उद्धृत), पृ० १०४
80. महामना पं० मदनमोहन मालवीय (खण्ड १) सम्पादक : सीताराम चतुर्वेदी, पृ० २३ ।
81. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ, पृ० ३२, ३४ ।
82. S.L. Dar and S. Somaskandan : 'History of the Banaras Hindu University, B H.U., Varanasi-5, pp 572-573.
83. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० १६८
84. वही, पृ० १६९ ।
85. वही, पृ० १७० ।
86. Honourable Pt. Madan Mohan Malaviya Life and Speaches, op. cit , p. 572 [10th August 1917]
87. मद्रास में भाषण, ३१ जनवरी १९१७ ।
88. वही ।
89 बम्बई में भाषण, १= जुलाई १९१७ ।
90. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० २२६
91. Indian National Congress : Report, 1918, pp. 23-26, 151.

92. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० १५ ।
93 वही, पृ० १२ ।
94 संस्मरण पुरुषोत्तमदास टण्डन, मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० ३ ।
95. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ३८४
96. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० ३८५ ।
97 महामना मालवीयजी : सम्पादक सीताराम चतुर्वेदी (पूर्व उद्धृत),पृ० १५५
98. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ३८६
99. वही, पृ० ३८६ ।
100. जवाहरलाल नेहरू : ऐन आटोबाइग्राफी, (नई दिल्ली), पृ० १६० ।
101. वही, पृ० १५७ ।
102 महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत), पृ० ३८६
103. वही, पृ० ३८८ ।
104. सुभाष चन्द्र बोस : इण्डियन स्ट्रगिल, पृ० २६८ ।—(महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, पृ० ५३०) ।
105. 'लीडर' २९ अक्टूबर, १९३४ ई० ।
106. वही ।
107. इण्डियन क्वाटरली रजिस्टर, सन् १९३५, जि० १, पृ० ३१५-३२४ ।
108. महामना मदनमोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व (पूर्व उद्धृत),पृ० ५३७
109. वही, पृ० ५३७ ।
110. वही, पृ० १४२ ।
111. वही, पृ० १४४ ।
112. वही, पृ० १४५ ।
113. 'प्रज्ञा' काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, अंक २१ (भाग २) २२१ (भाग १-२) एवं २३, (भाग १) वर्ष १९७६-७७ ई०, हीरक जयन्ती विशेषांक, पृ० २८ ।—(महामना पं० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत),पृ० ८४-८६
114. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० १५ ।
115. वही, पृ० १९६-२०० ।
116. महामना प० मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० ९४-९५ ।
117. वही, पृ० ७७-७८ ।
118. वही, पृ० ७७ ।
119. वही, पृ० ७९ ।
120. वही, पृ० ७९ ।

121. वही, पृ० ९३-९४।
122. वही, पृ० ८५।
123. वही, पृ० ८५।
124. वही, पृ० ६५।
125. वही, पृ० ६६।
126 वही, पृ० ५८।
127. वही, पृ० ५८-५९।
128. वही, पृ० ९५।
129. मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० १०२।
130. ४ सितम्बर, १९३५ई० भाषण (शिवाजी हाल,काशी हिन्दू विश्वविद्यालय)।
131. K. Marx Das Kapital (1906-1909) Vol. I, Chicago, p. 776
132. सन् १९३२ ई०, कलकत्ता कांग्रेस–अध्यक्षीय भाषण।
133. मद्रास में श्री बदरुद्दीन तैयबजी की अध्यक्षता में २८ दिसम्बर १८८७ ई० की तृतीय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रस्ताव का अनुमोदन भाषण।
134. पण्डित मदनमोहन मालवीय (पूर्व उद्धृत), पृ० १५९।
135. R.T. Lapiere and P.R. Farnsworth : Social Psychology Macgraw Hil Book Co., New York (1949), p. 257.
136. J.F. Brown, Psychology and the Social Order, p. 342-343.
137. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद (भारत के प्रथम राष्ट्रपति) के संस्मरण, मालवीयजी : जीवन झलकियाँ (पूर्व उद्धृत), पृ० १-२।
138. G. Lenski, 'The Sociology of Religion in the United States pp. 307-337, New York, Double Day Co. (1963).

—: o :—

अध्याय—९

निष्कर्ष

इस शोध कार्य की कुछ सीमाएँ हैं। प्रस्तुत अध्ययन भारत मे सामाजिक आन्दोलन के विचारों एवं कार्यो से सम्बद्ध है। भारतीय पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि मे मालवीयजी को अध्ययन की इकाई के रूप में लिया गया है और उनके सामाजिक चिन्तन एवं कृतित्व का समाज-वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इस सम्बन्ध मे यह उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य सामाजिक विचारको की श्रेणी मे भारतीय विचारकों को रखना उचित नही होगा। औद्योगिक दृष्टि से विकसित पश्चिम के समाज की प्रक्रिया मे कोंत, दुर्खीम, मार्क्स और मैक्स वेबर प्रभृति विचारक अपने समाज की समस्याओ का प्रतिपादन करते हैं। वर्षों की पराधीनता के बाद स्वाधीन भारतीय समाज, उनकी तुलना मे पिछड़ा हुआ है। अभी औद्योगिक दृष्टि से पश्चिम की तुलना मे विकसित होने में इसे पर्याप्त समय और साधन की आवश्यकता है।

आधुनिक भारत के स्वाधीनता संग्राम कालीन सामाजिक विचारक उपनिवेशवादी शासनाधीन समाज की गतिविधियो से उत्पन्न समस्याओं के विचारक हैं। उस समय रूढ़ियों से जकड़े हुए भारतीय समाज के सामने अशिक्षा, जाति, वर्ण, अस्पृश्यता, दहेज, बाल विवाह आदि सामाजिक समस्याओं के साथ स्वाधीनता प्राप्त करने की राष्ट्रीय समस्या थी।

पाश्चात्य समाज की प्रमुख सामाजिक समस्या उद्योगीकरण, नगरीकरण आदि के परिणामस्वरूप बिखरे हुए समाज को पुनर्गठित अथवा निर्देशित करने की थी, जबकि भारत की तत्कालीन प्रमुख समस्या अपनी संस्कृति की रक्षा और स्वाधीनता प्राप्त करने की थी। नि सन्देह भारतीय विचारको मे कोंत, दुर्खीम, मार्क्स, पैरटो, मैक्सवेबर तथा हाबहाउस के समान विचारक नही हैं। तुलनात्मक दृष्टि से देखने के पश्चात् प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय सामाजिक विचारकों की उपेक्षा कर दी जाय अथवा उन्हें अपनी बौद्धिक संवेदनशीलता का अंग बनाया जाय। इसके अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि आधुनिक समाज-विज्ञान

की अवधारणाएँ (concepts) किस सीमा तक इन विचारको पर लागू होती हैं। यदि कठोरता से वर्तमान समाज वैज्ञानिक अवधारणाओं को इन भारतीय विचारकों पर लागू किया जाता तो इनके विचारको का मूल तत्व विकृत हो जाता। अतः इनके विचारों का विश्लेषण सरल भाषा मे किया गया है और अत्यावश्यक समाजशास्त्रीय सम्प्रत्ययों की बन्दिश नही लगायी गयी है। इसी परिप्रेक्ष्य मे मालवीयजी के सामाजिक विचारों की मूल अन्तर्वस्तु को प्रस्तुत किया गया है और समाजशास्त्रीय शब्द जाल (jargon) से बचने का प्रयास किया गया है। इस अध्ययन में कुछ निर्देशिकाओं के आधार पर, जिन परिकल्पनाओ का परीक्षण किया गया है उनके निष्कर्ष निम्नलिखित हैं —

१—हमारी पहली परिकल्पना यह थी कि मालवीयजी एक विकासोन्मुख व्यक्ति थे। उनका व्यक्तित्व आत्म-निर्देशित था।

मालवीयजी ने निर्धनता का कटु अनुभव किया था। अत. गरीब के दु ख-दर्द की मानवीय भावनाओं का उन्हे पूर्ण अनुभव था। यही कारण है कि वह गरीब बुढ़िया की दु.ख भरी गाथा, वाइसराय से अपने मिलने के अप्वाइन्टमेट की परवाह किये बिना पहले सुनते है। वकालत के समय लक्ष्मी की उन पर विशेष कृपा थी। उन्होंने मकान क्रय किया, किन्तु मकान छोडते समय निर्धनता और ऋण के बोझ से बोझिल विक्रेता गृहस्वामी की पत्नी के करुणाश्रुओ को वह नहीं देख सके और मकान बिना पैसा वापस लिये ही उसे लौटा दिया। उनका व्यक्तित्व आनुवंशिकता और पर्यावरण दोनो से ही प्रभावित था। बचपन की ईसाई मिश्नरियो के मुकाबले धार्मिक प्रचार भाषण की बालकालीन प्रवृत्ति, क्रमश राष्ट्रीय दल कांग्रेस, राष्ट्र एवं समाजहित की ओर उन्मुख उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का अंग बन गयी।

हम मालवीयजी के व्यक्तित्व मे आत्म-निर्देशित व्यक्तित्व के गुण प्राप्त कर सके है। उनमे आत्म-निर्देशित व्यक्तित्व के गुण एकीकृत भावना, प्रदर्शन की भावना का अभाव, उत्साह तथा इस प्रकार के व्यक्तित्व का सबसे बडा गुण रचनात्मकता की सहज प्रवृत्ति वर्तमान थी। मालवीयजी समान रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन, भारतीय राष्ट्रीयता, सर्वधर्म समन्वय, शुद्धीकरण, प्रायश्चित्त, बाल-विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह, शिक्षा प्रसार आदि सभी क्षेत्रों मे सुधार और परिवर्तन की दिशा मे क्रियाशील थे। उनका व्यक्तित्व सुसंस्कृत तथा सास्कारिक था। उनका 'व्यक्ति' धर्म, परम्परा तथा मानवीय सच्चरित्रता का पुंज था। वह सामाजिक मूल्यों के अनुरूप 'व्यक्ति' का पूर्णरूपेण संस्करण चाहते थे। वह आदर्श-नियमो के पथ से व्यक्ति का विचलन उसका पतन मानते थे, जिससे 'व्यक्ति' को संयम द्वारा असयम से बचते हुए मूल्यवान् सत्यपथ का अनुगमन करना चाहिए। परम्पराओ को वह शास्त्रीय आवरण मे आवेष्टित मानते है, किन्तु परम्पराओं का मूल आधार शास्त्रो की अपेक्षा 'सत्य' पर आधारित तर्कसंगत प्रतिमानो को अधिक महत्व

देते हैं, यथा—शास्त्रों में, कर्मकाण्डों तथा यज्ञों में पशुबलि का उद्धरण प्रस्तुत किये जाने पर जब वह तार्किक दृष्टि से पशुबलि के औचित्य को सत्य और तर्कपरक नहीं पाते तब यह कहकर टाल देते हैं कि शास्त्रों में यह कहीं नहीं लिखा है कि पशुबलि न करने पर पाप लगता है और बिना बलि के कर्मकाण्ड नहीं किये जा सकते। यहां उनकी इस विचारधारा की पुष्टि होती है कि शास्त्रों का अन्धानुकरण करना उचित नहीं है। हम देखते हैं कि शास्त्रों के नियमों की स्थापना में मालवीयजी लौकिक तथा भौतिक पक्ष पर अधिक बल देते हैं। वह परम्पराओं तथा आदर्श नियमों के परिपथ से परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ते समय परम्पराओं के पक्ष का अन्धानुकरण नहीं करते, अपितु परम्पराओं और शास्त्रीय पथ पर बढ़ते हुए ही पुनर्जागरण और सामाजिक परिवर्तन के पथ का अनुगमन करते हैं। यही कारण है कि व्यक्तिगत रूप से वह घोर परम्परावादी दृष्टिगोचर होते हैं। गांधीजी के शब्दों में—'व्यक्तिगत रूप से परम्परावादी होते हुए भी समाज के सम्बन्ध में उनके विचार बड़े ही उदार हैं।' वह अपने विचारों को सकारात्मक रूप से साकार (मूर्त) रूप देने की दिशा में क्रिया की ओर उन्मुख रहते थे, जिसके परिणामस्वरूप उनके विचारों के आधार पर उनके कार्यों का अवलोकन करने की अपेक्षा उनके कार्यों के आधार पर उनके विचारों का अवलोकन करना अधिक उपयुक्त पाया गया है। अतः उनकी इस क्रियाशीलता के आधार पर हम पाते हैं कि उनका व्यक्तित्व आत्मनिर्देशित और भारतीय परम्परा एवं आधुनिकीकरण का अत्यन्त प्रकार्यवादी सम्मिश्रण था।

> २—हमारी दूसरी परिकल्पना यह थी कि मालवीयजी के वर्णाश्रम धर्म, जात-पांत, अछूतोद्धार, दहेज प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह सम्बन्धी विचार सुधारवादी परिवर्तनोन्मुख एवं प्रगतिशील थे।

हमारी दूसरी परिकल्पना परम्परागत भारतीय संस्थाओं से सम्बन्धित मालवीयजी के विचारों पर आधारित है।

हम यह मानकर चलते हैं कि परिवर्तन, प्रगति और सुधार तीनों मिश्रित अवधारणाएं हैं। मालवीयजी के विचारों में इनका सम्मिश्रण मिलता है। अतः इनकी पृथक्-पृथक् विवेचना सम्भव नहीं है। वर्णाश्रम धर्म हिन्दू धर्मशास्त्रों का 'मूल' है। महात्मा गांधी सहित सभी विचारकों ने इस व्यवस्था की महत्ता को एक स्वर से स्वीकार किया था। वर्णाश्रम व्यवस्था को भारत के सभी विचारकों ने समाज के लिए प्रकार्यात्मक बताया है। मालवीयजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के सम्बन्ध में समाज में जन्म तथा कर्म के आधार पर विविध प्रकार के पेशा करने वालों को अन्योन्याश्रित रूप से सम्बन्धित करने वाला वर्गीकरण बताया है। उन्होंने बताया है कि इसका आधार राम और उनके भाइयों (जो सहोदर नहीं हैं) जैसा अगाध प्रेम है, न कि विग्रह अथवा अधिकारों का वर्गगत संघर्ष। मालवीय-

जी की वर्ण-व्यवस्था हिन्दू संस्कृति के संस्कारो मे रहनेवाले भाइयो को मानवीय प्रेम-भावना की परम्परा पर आधारित है। इसमे जो जिस कार्य के योग्य है वह अपना कार्य करता है। ऊँच-नीच की भावना इस व्यवस्था के लिए विग्रहकारी है। वह शूद्र वर्ण के प्रति भी अत्यधिक उदार है। सेवा के मानवीय महत्व को उन्होने सर्वोपरि स्थान दिया है। शूद्रो में भी शिक्षा द्वारा परिवर्तन आने पर वह उन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण मे सम्मिलित करने को तैयार है। इस प्रकार हम देखते है कि मालवीयजी वर्णो की अवरुद्ध व्यवस्था के स्थान पर मुक्त तथा गतिशील व्यवस्था को स्वीकार करते है और समयानुसार उनके श्रेणी क्रम मे सशोधन स्वीकार करते है। मालवीयजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था के आर्थिक पक्ष की विवेचना नही की है। इनकी दृष्टि मे वर्ण-व्यवस्था आचार सहिता मात्र है। यह सहिता सहयोग और संगठन की है—सघर्ष की नही। अपनी नीतिप्रधान दृष्टि के कारण मालवीयजी ने वर्ग सघर्ष पर आधारित शोषण पर विमर्श नही किया है।

निम्न वर्ण के, उच्च वर्ण की परम्पराओ के सस्कृतीकरण की प्रक्रिया में, ऊपर उठने की बात भी मालवीयजी स्वीकार करते है। उस समय निम्न वर्णो के लिए उच्च वर्गो के कर्मकाण्डो (रहन-सहन) का अनुकरण करना सामाजिक रीति से मान्य नही था। मालवीयजी इस व्यवस्था को अस्वीकार करते है और इसमें वह सामाजिक प्रगतिशील परिवर्तन को स्वीकार करते है। इस सम्बन्ध मे सवर्णो द्वारा उठायी गयी आपत्तियो के सम्बन्ध में उन्होने कहा था—'निम्न वर्ण की बहुएँ यदि पालकी मे जाती है, आप लोगों की भाँति रहने और अपनी स्थिति उन्नत करने का प्रयास करती है, तो उनसे द्वेष क्यों करते हो ?' अत हम पाते है कि गतिशील परिवर्तन के क्षेत्र मे मालवीयजी के विचार प्रगतिशील है। मनुस्मृति का उद्धरण प्रस्तुत करते हुए वह स्वीकार करते है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र कर्म के अनुसार होते है। यदि गुण नही तो वर्ण धर्म नही। इसी प्रकार आयु के अनुसार आश्रम व्यवस्था को भी मालवीयजी महत्वपूर्ण मानते थे। आयु मे बडे होने के कारण वह दादाभाई नौरोजी तथा उनके समकालीन नेताओ को पूज्य मानते थे। इस सम्बन्ध मे मालवीयजी और गाधीजी के विचार समान थे। परन्तु मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वह किसी भी कार्य की वैचारिक पृष्ठभूमि उपस्थित करने के साथ ही उसका स्वत- अनुकरण करके नेतृत्व भी प्रदान करते थे। बाल विवाह का उन्होने खण्डन किया। शास्त्रीय पक्ष उपस्थित किये जाने पर उन्होंने कहा कि शास्त्रीय व्यवस्था के अनुसार मुझे नरक मे जाना मजूर है, किन्तु बाल विवाह करना मजूर नही है। उनकी यह विशेषता थी कि वह कोई भी प्रगतिशील कार्य क्रमशः करते हुए आगे बढते थे। सवर्ण विवाह के सम्बन्ध में सबसे पहले उन्होने सभी ब्राह्मणों को सार्वजनिक रूप से एक घोषित किया, तत्पश्चात् अपने कुल की कन्याओ का विवाह ब्राह्मणो के क्षेत्रीय सीमित क्षेत्र से ऊपर उठकर अन्य सनाढ्य आदि ब्राह्मणो मे किया। दहेज प्रथा के विरोध

मे उन्होने स्वतः इस क्षेत्र मे पहल की। विधवा विवाह के सम्बन्ध मे भी वह उपदेश देने के बजाय विधवा का पुनर्विवाह करा देते है, किन्तु इस क्षेत्र में कुछ अधिक न कर पाने पर खेद व्यक्त करते हैं।

> ३—हमारी तीसरी परिकल्पना यह थी कि मालवीयजी के शिक्षा और समाज सम्बन्धी विचार वर्तमान प्रचलित पुस्तकीय शिक्षा प्रणाली के विपरीत व्यावहारिक जीवन मे उपयोगी, रोजगारपरक तथा व्यवहृत शिक्षा व्यवस्था पर आधारित थे, जो प्राचीन और आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का समन्वय है।

हमारी तीसरी परिकल्पना शिक्षा जगत् मे मालवीयजी के योगदान से सम्बन्धित है। हम यह मानकर चले थे कि मालवीयजी की शिक्षा-व्यवस्था, शिक्षा की वर्तमान प्रचलित व्यवस्था में आमूल परिवर्तन से सम्बन्धित थी। वह शिक्षा को चरित्र निर्माण का साधन मानते थे और पुरुषो की अपेक्षा स्त्री-शिक्षा पर अधिक बल देते थे। वह स्त्रियों को ऐसी शिक्षा प्रदान कराना चाहते थे, जो राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकता के अनुरूप उसे भावी नागरिक दे सके।

शिक्षा के क्षेत्र मे वह प्राचीन धर्म, दर्शन, कला आदि की शिक्षा तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्राविधिकी की शिक्षा की आधुनिकतम व्यवस्था, दोनों को एक दूसरे की पूरक मानते थे। मालवीयजी शिक्षा को व्यवहृत स्वरूप देना चाहते थे। वह यह चाहते थे कि शिक्षा विद्यालयों से ही ऐसी होनी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों मे आजीविका अर्जित करने की पूर्ण क्षमता प्राप्त हो जाय। शिक्षार्थी यदि उद्योग क्षेत्र मे जाने वाला है तो विद्यालय मे उसे उद्योग करने (उत्पादन-खपत आदि) की शिक्षा पूर्णरूपेण दी जानी चाहिए, जहाँ से शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसे अपने कार्य क्षेत्र का बाजार न ढूंढना पड़े अथवा दर-दर की ठोकरें न खानी पड़ें।

भारत जैसे कृषिप्रधान देश के लिए कृषि-उद्योगपरक शिक्षा देश की शिक्षा-व्यवस्था की माँग है। उनके अनुसार—शिक्षा का ज्ञान किताबी ज्ञान न होकर, व्यावहारिक होना चाहिए। मालवीयजी उद्देश्यपरक शिक्षा की व्यवहृत पद्धति विकसित करने के लिए सरकार के सक्रिय योगदान की अपेक्षा करते थे। देश में बालक-बालिकाओं के लिए वह कम-से-कम प्राइमरी स्तर तक की नि:शुल्क शिक्षा अनिवार्य बनाना चाहते थे।

पुरुषो और स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध मे दोनो की वर्तमान पृथक्-पृथक् शिक्षा-व्यवस्था के विपरीत पुरुषों में स्त्रियोचित्त और स्त्रियों में पुरुषोचित गुण-विकास के लिए वह सह-शिक्षा व्यवस्था को आवश्यक मानते थे। विश्वविद्यालयीय शिक्षा में मालवीयजी ने योग्यता-क्रम पर विशेष बल दिया है। उनके अनुसार—नीचे से ऊपर तक की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। गांधीजी ने भी मातृभाषा में शिक्षा देने पर विशेष बल दिया था। अतः यहाँ पर भी

मालवीयजी तथा गाधीजी के विचार समान है। दोनों ही विदेशी भाषा मे दी जाने वाली शिक्षा को अव्यावहारिक एव अप्राकृतिक मानते थे।

मालवीयजी के शिक्षा-सम्बन्धी विचार परिभाषाओं के खूबसूरत शाब्दिक जाल में अभिव्यक्त न होकर अत्यधिक व्यावहारिक है। आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के जटिल समाज मे प्राविधिकी और वैज्ञानिक साज-सामान के उत्पादन और व्यवहार द्वारा मानव की आवश्यकताएँ बढ़कर, विकसित हो चुकी है। अतः मालवीयजी यह चाहते थे कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो इस प्रकार के आधुनिक जटिल समाज में व्यक्ति में ऐसे गुणों का विकास कर सके कि वह कम-से-कम अपनी जीविका अर्जित करने की योग्यता शिक्षा द्वारा अवश्य प्राप्त कर ले। उनके अनुसार—आधुनिक वैज्ञानिक युग की शिक्षा-व्यवस्था मे उक्त परिवर्तनवादी माँगों के अनुरूप परिवर्तन और सुधार नितान्त आवश्यक है। मालवीयजी की शिक्षा-व्यवस्था का साकार रूप उनके द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय है, जहाँ अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचारों को साकार रूप देने की दिशा मे उन्होंने प्रयास किया था, जिसे उन्होंने आधुनिक युग का गुरुकुल बताया था। यहाँ उन्होंने ऊपर उल्लिखित व्यवहृत रोजगारपरक शिक्षा, धर्म-दर्शन, कला-साहित्य के साथ-साथ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, प्राविधिकी, कृषि विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, औषधि निर्माण; उपभोग्य-सामग्री उत्पादन, डेरी फार्म, कृषि फार्म, औषधि निर्माणशाला, साबुन आदि उपयोगी वस्तु निर्माण, आधुनिक अभियान्त्रिकी के उपकरणों का निर्माण और मरम्मत कार्यशाला की स्थापना की थी, जहाँ छात्र-छात्राओं को रोजगारपरक प्रशिक्षण दिया जा सके। वह विश्वविद्यालय को औद्योगिक इकाई के रूप मे विकसित करके, आधुनिक औद्योगिक युग के निमित्त छात्र-छात्राओं को प्रशिक्षित करना चाहते थे, जिससे छात्र स्वावलम्बी बन सकें और उनमे अपनी आजीविका अर्जित करने की क्षमता उत्पन्न हो सके। इस प्रकार हम पाते हैं कि मालवीयजी के शिक्षा तथा समाज सम्बन्धी विचार एवं कार्य आधुनिक एवं प्रगतिशील थे।

> ४—हमारी चौथी परिकल्पना यह थी कि मालवीयजी का नेतृत्व एवं राजनीतिक विचार धार्मिक, राष्ट्रीय, सामाजिक आदि सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील तथा परिवर्तनोन्मुख थे।

धार्मिक

धर्म के सम्बन्ध मे भी मालवीयजी के विचार समन्वयवादी थे। वह संसार के प्रचलित धर्मों के आधार पर मानव समाज को विभिन्न सम्प्रदायो मे विभक्त करने के विरोधी थे। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का विश्वनाथ मन्दिर बनवाने का संकल्प करने वाले मालवीयजी, मुसलमानो की उपासना के लिए मस्जिद भी बनवाते हैं। स्वयं संध्योपासन करते है, तो बगल मे यात्रा कर रहे मुसलमान

कार्यकर्त्ता को, जो मालवीयजी के संकोच से नमाज नही पढ रहा था, नमाज अदा करने के लिए प्रेरित करते हैं। वह मन्दिर, मस्जिद और गिरजाघर से गुजरते हुए सिर नवाते हैं। साम्प्रदायिक दंगो के अवसर पर केवल हिन्दुओं को सहायता देते समय वह दबाव डालकर हिन्दू समाज-सेवी दानवीर श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा मुसलमान पीड़ितों को भी सहायता प्रदान करवाते हैं।

धर्म के सम्बन्ध में मालवीयजी के अपने विचार थे। उनके अनुसार—विश्व के सभी धर्म सत्य, प्रेम और सद्भावना पर आधारित हैं। अतः विविध धर्मावलम्बियो को परस्पर द्वेष और भेद नही मानना चाहिए। मालवीयजी द्वारा आयोजित १९२९ ई० में बेलगाँव कांग्रेस के साथ हिन्दू महासभा के विशेष अधिवेशन में सभी सम्प्रदाय के उच्चकोटि के नेता महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय, देशबन्धु चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, श्रद्धानन्द स्वामी के साथ ही मौलाना शौकत अली तथा मुहम्मद अली के समान मुसलमान भी सम्मिलित होते हैं। उनकी यह विशेषता थी कि वह सार्वजनिक सभाओं में सामूहिक रूप से निर्णय किया करते थे। कानपुर हिन्दू-मुस्लिम दंगे के तत्काल बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता का कानपुर मे ही आयोजन कराने का साहस मालवीयजी ही कर सकते थे। दंगे के तनाव के कारण मालवीयजी के इस आयोजन को उच्चकोटि के नेता भी सशंक दृष्टि से देख रहे थे। उन्हें भय था कि इससे दंगा भड़क उठेगा, किन्तु मालवीयजी ने उस सम्मेलन में हिन्दुओ और मुसलमानों को गले मिलाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवीयजी अपने कार्यों का मनोवैज्ञानिक पक्ष भी रखते थे और वह हिन्दू और मुसलमानो का, दंगे के तनाव के समय मनुष्यता की ओर ध्यान केन्द्रित कर 'एकता का मंच' स्थापित करते है।

मालवीयजी के अनुसार—जैसे सभी को अपने परिवार में रहकर परिवार के नियमों का पालन करना आवश्यक है, उसी प्रकार विभिन्न धर्मों में रहकर धार्मिक नियमो का पालन करना भी आवश्यक है। वह यह मानते थे कि मित्र-मित्र के, पति-पत्नी के, भाई-भाई के, माता-पिता के यहाँ तक कि एक देश के दूसरे देश से सम्बन्ध भी धर्म पर आधारित है। अतः लौकिक सम्बन्धों के लिए धर्म अपरिहार्य है। चाहे वह लौकिक धर्म हो अथवा पारलौकिक (ईश्वरीय) धर्म, परन्तु सामाजिक सम्बन्धो के लिए किसी-न-किसी अंश में धर्म की नियंत्रक भूमिका आवश्यक है।

मालवीयजी की धार्मिक विचारधारा की उपर्युक्त विवेचनाओं के आधार पर यह पाया गया कि वह चाहते थे कि संसार के सभी धर्मावलम्बी दूसरे धर्मों के प्रति बिना द्वेष और विभेद रखे, अपने धर्मों का निष्ठापूर्वक पालन करें। परम्पराओं द्वारा व्याप्त कुरीतियों के परिष्करण हेतु वह समाज में सम्मेलनों का आयोजन करके, उनमें सामूहिक निर्णय लेते थे, यह उनकी विशेष कार्यपद्धति थी।

आर्य समाज की भाँति मालवीयजी ने सनातन धर्म में शुद्धीकरण का कार्य आरम्भ किया था, परन्तु उनके शुद्धीकरण और आर्य समाज के शुद्धीकरण में मूल अन्तर यह था कि मालवीयजी सनातन धर्म में ही शुद्धीकरण करना चाहते थे और आर्य समाज सनातन धर्म के परे, वेदों को आधार मानकर आर्य समाज में। दोनों की वेदों पर स्वाभाविक आस्था थी। यहाँ मालवीयजी यह चाहते थे कि बिना किसी भेदभाव के सभी धर्मावलम्बी अपने धर्म का प्रचार बिना दूसरे धर्म की निन्दा किये हुए धर्म के आन्तरिक अर्थ के प्रकाशन हेतु करें, न कि साम्प्रदायिक तनाव के रूप में दूसरे धर्म को लक्ष्य बनाकर उसे नीचा दिखाकर। यह व्यवस्था देते हैं कि जिसे जो धर्म उचित जँचे वह उस धर्म को स्वीकार करे। मालवीयजी अपने धर्म प्रचार में दूसरे धर्म की कमियों को दिखाना अनुचित मानते थे। उनका विचार था कि धार्मिक प्रचार धर्म के रहस्यों की अभिव्यक्ति हेतु किया जाय, न कि एक दूसरे धर्म को लांछित करने के लिए। महात्मा गाधी आर्यसमाज और स्वामी श्रद्धानन्द के शुद्धीकरण तथा मुसलमानों की तबदीली के विरोधी थे, परन्तु मालवीयजी की उक्त समन्वयवादी व्यवस्था से वह भी सहमत थे। मालवीयजी की इसी समन्वयवादी विचारधारा का ही परिणाम है कि उनके समकालीन जिन्ना जैसे अन्यान्य मुसलमान भी उनका सम्मान करते थे और उनकी प्रशस्ति में एक तरफ जहाँ विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने खण्ड काव्य लिखा, वहीं प्रसिद्ध मुसलमान कवियों ने भी उनका गुणगान किया था।

मालवीयजी की यह विशेषता थी कि वह किसी भी क्षेत्र में कार्य करने का व्यवहार-पक्ष सामने रखते थे। धार्मिक भावना से प्रेरित होकर, जहाँ वह गांधीजी की अध्यक्षता में गोवधबन्दी-सबंधी कार्य करवाते हैं वहाँ, दूसरों को धार्मिक आचरण करने की बात सिखाने के पूर्व स्वयं भी धर्माचरण करते हैं और धार्मिक आचरण एवं आचार-व्यवहार के सम्बन्ध में किसी को भी उँगली उठाने का मौका नहीं देते। इतने बड़े-बड़े सामाजिक कार्य पूरा करने वाले मालवीयजी के चरित्र पर आज तक समाज का कोई व्यक्ति लांछन नहीं लगा सका है। यह उनके धर्म और कार्य का सापेक्ष मानवीय रूप ही माना जा सकता है। उनके विचार से सब लोगों द्वारा धर्म का आचरण करने से समाज तथा राष्ट्र की समृद्धि होती है। सामाजिक तथा राष्ट्रीय चरित्र के समुन्नयन हेतु सभी का अपने-अपने धर्मों का निष्ठापूर्वक पालन करना आवश्यक है। अतः हम पाते हैं कि मालवीयजी के धार्मिक विचार समन्वयवादी तथा प्रगतिशील थे, जिनमें विश्व के विविध धर्मों के विभेदवादी स्वरूप की अपेक्षा समन्वयवादी प्रगतिशील विचार सन्निहित थे।

राजनीति एवं नेतृत्व

पण्डित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में 'बहुत-से वे लोग भी जो (मालवीयजी से) सहमत नहीं थे और राजनीति में उनका अन

थे, वे भी उनका आदर करते थे और उनसे स्नेह रखते थे। अपनी आयु और लम्बी सार्वजनिक सेवा के कारण वे भारतीय राजनीति के वरिष्ठ सदस्य थे।'

मालवीयजी की राजनीति सत्य और यथार्थ पर आधारित रही है। कांग्रेस, संसद अथवा समाज में मतभेद होना स्वाभाविक होता है। मालवीयजी कांग्रेस के वैयक्तिक स्तर पर किसी अन्य नेता से होने वाले राजनीतिक मतभेद के समय एकता के लिए सदैव अपने विचारों का उत्सर्ग कर दिया करते थे। यथा, पंजाब में हण्टर कमेटी की गवाही के प्रश्न पर कांग्रेस का निर्णय कांग्रेसाध्यक्ष मालवीयजी के पक्ष में होता है। यहाँ गांधीजी के पक्ष की पराजय होती है। अतः गांधीजी पंजाब छोड़कर वापस जाने का निर्णय करते हैं। उक्त बात जब मालवीयजी को ज्ञात होती है तब वह अपने पक्ष के लोगों को गांधी के विचारों से सहमत कराते हैं और पुनः कांग्रेस की बैठक बुलाकर निर्णय गांधीजी के पक्ष में कराते हैं। गरमदल और नरमदल के मतभेद से कांग्रेस के टूटने की स्थिति में भी मालवीयजी ने समझौता कराया था। साम्प्रदायिकता के आधार पर संसद की सीटों के निर्धारण की समस्या पर अंग्रेजों की फूट डालने की नीति का मालवीयजी ने विरोध किया और भारतीय निर्वाचकों को हिन्दू, मुसलमान, दलित वर्ग, पिछड़ा वर्ग, भारतीय ईसाई, सिख, व्यवसायी आदि श्रेणियों में विभक्त करने की नीति को देश की एकता के लिए घातक बताया। कांग्रेस से उक्त साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर मतभेद होने पर उन्होंने नेशनलिस्ट दल का गठन किया और उन्हें, प० नेहरू के शब्दों में—भारी सफलता मिली। साम्प्रदायिकता के प्रश्न पर अब्दुल कलाम आदि बहुत-से राष्ट्रीय मुसलमान भी मालवीयजी के पक्ष में थे। इनके विरोध में इनके दल के विपरीत प० मोतीलाल नेहरू ने स्वराज्य दल का गठन किया था। चुनाव-सभाओं में मोतीलालजी नेशनलिस्ट पार्टी के नेता मालवीयजी और लाला लाजपत राय पर व्यक्तिगत आक्षेप भी करते थे, जिसके कारण मोतीलाल तथा लाजपत राय में विरोध बहुत बढ़ गया, जिसे गांधीजी ने समाप्त कराया था, किन्तु मालवीयजी ने कभी भी अपनी चुनाव-सभाओं में पण्डित मोतीलालजी के खिलाफ कुछ नहीं कहा। वह अपनी सभाओं में बराबर उनकी प्रशंसा ही किया करते थे। मालवीयजी ने अंग्रेजों की साम्प्रदायिक फूट डालने की नीति के विरोध के अतिरिक्त संसद में तथा समाज में सदैव कांग्रेस तथा मोतीलालजी का साथ दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रजातन्त्रीय राजनीति में मतभेद की स्थिति में मालवीयजी जनतान्त्रिक विचार रखते थे और उनकी राजनीति में व्यक्तिगत विरोध को स्थान नहीं था।

राजनीति में उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह राष्ट्रीय स्वाधीनता के हित को सर्वाधिक महत्व देते थे और उन्होंने कांग्रेस को कभी भी नहीं छोड़ा। स्वाधीनता के पूर्व अपने अन्तिम समय में भी जब कांग्रेस टूट रही थी, उन्होंने

पहले की भांति १९३२-३३ ई० में भी कांग्रेस की अध्यक्षता को और गिरफ्तार हुए। इस प्रकार मालवीयजी राष्ट्रवादी विचारधारा के नेता एवं राजनीतिज्ञ थे।

विश्व के प्रायः सभी समाज-सुधारक अपने सुधारवादी विचारो के अनुसार नेतृत्व करते रहे हैं, जिसमे उनकी विचारधारा की अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। मालवीयजी की विचारधारा के अवलोकन मे यह पाया गया कि वह अपने विचारो को सदैव कार्यरूप में परिणत करने की दिशा मे प्रयत्नशील रहे। दूसरे शब्दो में हम कह सकते हैं कि मालवीयजी 'ऐक्शन ओरिएण्टेड' (व्यक्ति) थे। उनकी यह प्रमुख विशेषता थी कि वह जो कुछ सोचते-विचारते थे, उसका स्वयं नेतृत्व भी करते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि विचार क्रिया रूप में कार्यान्वित होकर, उनके कामों मे समाहित हो गये हैं। अतः इस अध्ययन के मूल्यांकन की शेष अन्य बातो की विवेचना उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक नेतृत्व के प्रसग मे (एकीकृत करके) करने का प्रयास भी सार्थक हो सका है।

मालवीयजी के समय में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन और स्वराज्य-प्राप्ति उस युग की सबसे बड़ी आवश्यकता थी। मालवीयजी और गांधीजी दोनो नेताओं ने इस आन्दोलन के प्रसग में जन-जागृति के लिए रूढ़ियो और परम्पराओं के आधार पर विभक्त हिन्दू समाज की कुरीतियों को दूर कर, समाज मे एकता और पुनर्जागरण पैदा करने का समान रूप से प्रयास किया था। एकता में बाधक कुरीतियो एव साम्प्रदायिकता आदि के बहु-पथवाद के परिष्कार के प्रयास में लगे मालवीयजी ने देश के सभी धर्मावलम्बियों के लिए जर्मनी की भांति राष्ट्रीय चरित्र को देश के आधारभूत धर्म के रूप मे विकसित करने पर विशेष बल दिया था।

समाज में राष्ट्रीय कांग्रेस, हिन्दू महासभा, सनातन धर्म महासभा, महावीर दल, भारतीय स्काउट दल आदि के माध्यम से सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक कार्य के क्षेत्र में मालवीयजी समान रूप से सक्रिय थे। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी आत्मकथा मे हिन्दू महासभा जैसी सस्था की लोकप्रियता की चर्चा करते हुए लिखा है कि जब तक प० मालवीयजी इसके सूत्रधार थे, यह सस्था साम्प्रदायिकता से दूर उदात्त हिन्दू संस्था थी। मालवीयजी ने जहाँ शान्तिपूर्ण प्रयासो द्वारा जनजागृति पैदा कर, स्वराज्य प्राप्त करना अपना उद्देश्य बनाया था, वहीं वह महान् उग्रवादी क्रान्तिकारी चन्द्रशेखर आजाद, भाई परमानन्द, लोकमान्य तिलक की उग्र विचारधारा के समर्थक पजाब केशरी लाला लाजपत राय जैसे अन्यान्य क्रान्तिकारियो के भी पथ प्रदर्शक एवं समर्थक थे। चौरी-चौरा हत्याकाण्ड के शताधिक क्रान्तिकारियों को, पंजाब षड्यंत्र द्वारा ब्रिटिश सत्ता का तख्ता पलटने के अभियुक्त महान् क्रान्तिकारी भाई परमानन्द जैसे क्रान्तिकारियो को प्रेरणा देते हैं तथा उनको मृत्युदण्ड से बचाने का प्रयास, उनके (मालवीयजी के) विद्रोही दोहरे राजनीतिक स्वरूप का द्योतक है। इसलिए पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि 'मालवीयजी सुधारवादियो

तथा उग्रवादियों के बीच की कड़ी थे।' सम्भवतः उनकी इन्ही राजनीतिक गतिविधियों के कारण ही ब्रिटिश सरकार के किसी उच्चतम पदाधिकारी ने इन्हें 'आस्तीन का साँप' कहा था। अतः हम पाते हैं कि शत्रु का भी अपने साथ अभ्युदय की बात करने वाले मालवीयजी की रणनीति और राजनीति, सुधारवाद और उग्रवाद का समन्वय थी, जिसके 'मूल' में उनकी राष्ट्रीयता और राष्ट्रभक्ति की मानवीय भावना सन्निहित थी।

मालवीयजी ने प्रान्तीय विधान कौंसिल तथा भारतीय विधान कौंसिल में बीसों वर्ष तक भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व किया था। दोनों ही सदनों में उन्होंने देश की अनेक प्रकार से सेवाएँ की थी। इसके माध्यम से समाज-सुधार तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों का सचालन करने वाले मालवीयजी के ससद में किये गये कार्यों के अवलोकन द्वारा उनके प्रगतिशील और सुधारवादी तथा प्रजातांत्रिक अर्थतंत्रीय विचारो की भी पुष्टि होती है।

आर्थिक नीति

ब्रिटिश सरकार के केन्द्रीय राजस्व व्ययक की मदो की असमानता, छोटे प्रान्तों के राजस्व-वितरण में जनसंख्या की उपेक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर असमान राजस्व के कुप्रभाव के परिणामों, नौकरशाही तथा बेगार प्रथा निवारण, ३० प्रतिशत कृषि लगान में कमी तथा स्थायी कृषि बन्दोबस्त, ग्रामीण ऋण-ग्रस्तता से मुक्ति हेतु कम ब्याजदर पर बैंकों द्वारा ऋण व्यवस्था, स्वदेशी उद्योग विकासनीति तथा बैंको द्वारा लघु उद्योगों को सहायता, रेल राष्ट्रीयकरण, जमीन्दारी व्यवस्था विरोध, प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा-विरोध, प्रेस ऐक्ट विरोध, रगभेद नीति विरोध तथा सरकारी उच्च नौकरियो मे भारतीयो को समान स्थान दिलाने आदि, सुधारवादी तथा प्रजातंत्रीय एवं अर्थतंत्रीय व्यवस्था आदि से सम्बन्धित मालवीयजी के उपर्युक्त कार्य उनकी परिवर्तनवादी एवं पुनर्जागरणवादी विचारधारा के द्योतक है। यही कारण है कि आज तक कांग्रेस के इतिहास में, प्रगतिशील कहे जाने वाले अर्थतंत्रीय प्रस्ताव मालवीयजी के उपर्युक्त अर्थतंत्रीय विचारो से परे कोई नवीन विचार उपर्युक्त माँगों से सम्बद्ध कार्यों के परे नही लाये जा सके। रेलों के राष्ट्रीयकरण तथा बैंक द्वारा ग्रामीण निर्धनवर्गीय कृषकों की सहायता आदि से सम्बन्धित विचार मालवीयजी के अति आधुनिक विचारों के परिचायक हैं। गोखले प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा को समाप्त कराने मे असफल हो गये थे, जिसे मालवीयजी ने समाप्त कराया था। इसी प्रकार प्रेस ऐक्ट का गोखले ने समर्थन किया था, परन्तु मालवीयजी के विरोध के ही कारण वह पारित नहीं हो सका था।

अंग्रेज सरकार द्वारा फूट डालने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय लिए जाने पर कांग्रेस ने उक्त विधेयक से सहमत न होते हुए भी यथास्थिति बनाये रखने के लिए मुसलमानो के विरोध के भय से राष्ट्रीय एकता को समाप्त करने वाले सरकार के

उक्त निर्णय का विरोध नहीं किया, किन्तु मालवीयजी तथा पंजाब केसरी लाला लाजपत राय ने उसका डटकर विरोध किया। यहाँ उन्हें कांग्रेस तथा मुसलमानों के संयुक्त विरोध के बावजूद भी पर्याप्त सीटें मिली थीं। बाद में कांग्रेस ने भी इस प्रस्ताव का मालवीयजी की ही भाँति विरोध किया था। मालवीयजी के नेतृत्व की यह भी विशेषता थी कि वह युग में घटित होने वाली बातों का सहज पूर्वानुमान लगा लेते थे। कांग्रेस में ऐसे अन्यान्य अवसरों के आने पर उन्होंने सदा कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन किया था।

शास्त्रों के परम्परागत सातत्य की मूल कड़ी में प्राचीन और आधुनिक शिक्षा के समन्वित रूप, मदनमोहन मालवीय में समवेत रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय सुधारवादी विचारकों की भाँति उनकी विचारधारा आधुनिकीकरण और तार्किक प्रमाण की आधार-शिला पर सुधार की दिशा में शास्त्रीय मूल (आत्मा) की स्थिरता के साथ परिवर्तनशील रही है। इस अध्ययन में मालवीयजी के विचार और कृतित्व के आधार पर यह पाया गया कि उनके विचार सुधारवादी एवं परिवर्तनोन्मुख थे।

> ५. हमारी पाँचवी और अन्तिम परिकल्पना थी कि मालवीयजी ने पश्चिमीकरण से प्रभावित पुनर्जागरण और परिवर्तन की सुधारवादी मान्यताओं को भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में स्थापित करने का प्रयास किया था। उनके विचारों में उनके पूर्ववर्ती तथा समवर्ती समाज-सुधारकों के विचारों में समता थी। भारतीय समाज व्यवस्था के सातत्य को शाश्वत रखते हुए मालवीयजी भारतीय समाज व्यवस्था को अनुकूली (adaptive) बनाना चाहते थे।

हमारी उक्त अन्तिम परिकल्पना मालवीयजी के सम्पूर्ण सामाजिक विचारों की मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्धित है। यह परिकल्पना हमारे शोध-प्रबन्ध का केन्द्र बिन्दु रही है। हम यह मानकर चले हैं कि इस परिकल्पना के निरीक्षण के तथ्य मालवीयजी के राजनीतिक, शैक्षिक और सुधारवादी कार्य-क्रमों से निरूपित किये गये हैं।

भारत में पुनर्जागरण काल के प्रवर्तकों की जागृति का आधार पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क से आरम्भ होता है। इस जन-जागृति के जनक राजा राममोहन राय तथा उनके समवर्ती तथा परवर्ती सुधारकों ने सामाजिक कुरीतियों के परिष्करण की दिशा में सुधारवादी कार्य किये हैं। परन्तु रीतियों और कुरीतियों के परिष्करण के लिए मूल आधार शास्त्रों की मूल मान्यता से परे कोई परिष्करण असम्भव था। अतः परिष्करण के लिए इन पुनर्जागरणकालीन समाज सुधारकों को अपने कार्यों के औचित्य हेतु वेदों की ओर उन्मुख होना पड़ा था। यहाँ हम यह भी देखते हैं कि धर्मशास्त्रों के आचार नियम आदि से सम्बन्धित विचारों तथा परस्पर विरोधी शास्त्रीय विचारों के प्रसंग में उन्हें सुधारवादी विचारों को वेदों

के सन्दर्भ में सत्यापित करने का प्रयास करना पडा था। भारतीय पुनर्जागरण काल के प्राय: सभी विचारको ने अपने-अपने समय की प्रमुख सामाजिक कुरीतियों के निवारणार्थ सुधार हेतु इसी पथ का अनुगमन किया था। आधुनिकीकरण के क्षेत्र मे मालवीयजी और गाधीजी की सामाजिक परिवर्तनवादी विचारधाराएँ इन्ही विचारो की मान्यताओं से युक्त थी। इस क्षेत्र मे हम पाते है कि मालवीयजी धर्मशास्त्रों मे मनुस्मृति को प्रमुख स्थान देते हैं। अत: शास्त्रो की ओर पुनर्जागरणकालीन सुधारकों की उन्मुखता के प्रसंग मे मनुस्मृति की मूल मान्यता के प्रस्तुतीकरण मे यह पाया गया कि मनुस्मृति की समाज-व्यवस्था का मूल आधार स्तरीकरण पर आधारित है, परन्तु मालवीयजी के विचार, इस स्तरीकरण की समाज-व्यवस्था से परे समता और समन्वय पर आधारित हैं। स्तरीकरण, राजतंत्र, राजभक्ति की इस व्यवस्था को उच्चवर्गीय शास्त्रकारो ने उच्च तथा निम्न वर्गभेद के आधार पर अन्यान्य सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कर्मकाण्डो द्वारा इस व्यवस्था को कायम रखने का प्रयास किया है। वर्णाश्रम तथा संस्कार आदि के समाजशास्त्रीय महत्व की इस समाज व्यवस्था की अपनी विशेषताएँ है, जिनको प्राय: सभी समाजशास्त्रियो तथा मानवशास्त्रियो ने महत्वपूर्ण बताया है। अत. शास्त्रों के विषय की उत्कृष्टता भारतीय पुनर्जागरणकाल मे भी स्वीकार की गयी थी। यद्यपि व्यावहारिक रूप से मनुस्मृति की पूरी-पूरी समाज-व्यवस्था कही भी वर्तमान नही पायी जाती, किन्तु भारतीय समाज के संस्कृतीकरण की गतिशीलता का आज भी वह आधार बनी हुई है, जो सतत गतिशील या शाश्वत है। यहाँ मालवीयजी और गाधीजी तथा उनके पूर्ववर्ती विचारको की विचारधाराएँ समान हैं। इस समाज-व्यवस्था के सातत्य के उक्त मूल केन्द्र-बिन्दु के परे की समाज-व्यवस्था को जीवित रखने के लिए मालवीयजी भारतीय शास्त्रीय विचारधारा के अन्तर्गत नवीनता तथा आधुनिकता के परम्परा मिश्रित नवान्वेषक के रूप मे आते हैं। उन्होंने मनु की स्तरीकृत भारतीय समाज-व्यवस्था का उपयोगितावादी एवं आधुनिक सन्दर्भ में उसका व्यवहारवादी स्वरूप रखने का प्रयास किया है।

उन्होंने बार-बार इस बात को दुहराया था कि मैं मनुष्यता के आगे जात-पाँत नही मानता। वह हर कीमत पर समाज को शाश्वत रखने के लिए 'एकता' को सर्वोपरि महत्व देते थे। उन्होंने अन्त्यजों को भी एकता के लिए गले लगाया और कहा कि मैं उनकी (हरिजन भाइयों को) चरण-रज तक लेने को तैयार हूँ। मालवीयजी ने कई अवसरो पर अस्पृश्यता को अशास्त्रीय बताया था। १९३४ई० की वाराणसी की गाधीजी की सभा मे पण्डितो द्वारा अस्पृश्यता को शास्त्रीय बताने पर मालवीयजी ने शास्त्रों का व्यापक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए इसे अशास्त्रीय बताया था। यहाँ हम देखते है कि इस प्रकार की प्रचलित कुरीतियो के परिष्कार हेतु मालवीयजी शास्त्रो का प्रमाण भी प्रस्तुत करते है, किन्तु बाल-विवाह जैसी कुरीतियो के निवारण हेतु वह नरक मे जाने को भी तैयार हो जाते

है और वहाँ वह शास्त्रीय प्रमाण से ऊपर उठकर समाज सुधार को सर्वोपरि महत्व देते है।

सामाजिक प्रथा, परम्परा आदि मे सुधार करने मे भी मालवीयजी की अपनी विधा थी। उनके सभी प्रकार के सुधारवादी कार्य सकारात्मक होते थे। अन्त्य-जोद्धार के क्षेत्र में उनका कार्य केवल भाषण देकर अपनी बात बताने तक ही सीमित नही था, अपितु उन्होने सभा बुलाकर जनता से प्रतिज्ञा करायी कि हरिजन-मन्दिर-प्रवेश, कूप, तालाब, सार्वजनिक स्थल, स्कूल तथा सार्वजनिक मार्ग आदि पर जाने तथा उनके उपयोग करने के क्षेत्र मे अन्त्यजो को अन्य सवर्णो के समान अधिकार होगा। मालवीयजी के इस प्रकार के कार्यों के पीछे उनकी सबसे बड़ी भावना यह थी कि वह उभय पक्षों के अन्तर्द्वन्द्वो को, हर सम्भव मनोवैज्ञानिक प्रयासो द्वारा उद्देश्य और कार्य के शास्त्रीय औचित्य के माध्यम से कार्यरूप मे परिणत करते समय बचा लेते थे। गाधीजी भी अपने अन्त्यज उद्धार कार्य-क्रम मे मालवीयजी के उक्त कार्यो का उदाहरण देकर, यह बताते है कि मालवीयजी महाराज ने यह सिद्ध कर दिया है कि अस्पृश्यता अशास्त्रीय है। अत हम देखते है कि मालवीयजी के कार्य का उक्त सापेक्ष महत्व और व्यवहृत पक्ष गाधीजी भी स्वीकार करते है।

मालवीयजी अपनी परिवर्तनवादी विचारधारा को परम्परावादी शास्त्रीय विचारधारा के सन्दर्भ मे शास्त्रसम्मत प्रमाणित करने के लिए भी तत्पर दिखायी देते है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह अपने सुधार और प्रगतिशील कार्यों को करने के सम्बन्ध में केवल वक्तव्य द्वारा ही अपने कथन या औचित्य को स्थापित नही करते थे, अपितु (उनकी सबसे बडी विशेषता यह थी कि) वह अपने कार्यों का सामाजिक प्रयोग, कार्यो को व्यवहृत रूप प्रदान करके करते थे, जिससे समाज मे उनका प्रयोग सुधारवाद के क्षेत्र मे अधिक व्यावहारिक एवं कारगर होता था, यथा—हरिजनों की सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए ब्राह्मण से अन्त्यज पर्यन्त तक को उन्होने एक ही मण्डप मे दीक्षा देना आरम्भ किया था, जिसमें अस्पृश्यता का भेदभाव नही था। कार्य आरम्भ करने के पहले उन्होंने अपने दीक्षा कार्यक्रम को शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए विद्वत् परिषद् की बैठक बुलाकर, तर्कों के आधार पर अपनी भावी योजना की पुष्टि करायी थी। इस कार्य मे उन्होने उच्च वर्णो को भी सम्मिलित किया था, जिससे परस्पर मेल बढे। इस प्रकार मालवीयजी ने वृहत् पैमाने पर अन्त्यजोत्थान का यह कार्यक्रम सफलतापूर्वक चलाया, परन्तु कलकत्ते मे सवर्णो ने इसका घोर विरोध किया। उन लोगो ने मन्त्रदीक्षा मण्डप नष्ट किया और मालवीयजी के ऊपर कीचड फेंका। मालवीयजी दृढतापूर्वक उनको अपने कार्यो के औचित्य का शास्त्रीय तार्किक पक्ष बताते रहे। धीरे-धीरे लोगो मे बहुतो ने उनके तर्कों के आधार पर प्रतिपादित अस्पृश्यता-विषयक विचारों को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार भारतीय समाज-

व्यवस्था की शास्त्रीय विचारधारा में परम्परावादी होते हुए भी विशेष रूप से उनकी समाज के सम्बन्ध में उदार तथा परिवर्तनवादी विचारधारा की पुष्टि होती है।

मालवीयजी खान-पान, स्नान आदि को शुचिता (पवित्रता) के लिए आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार—इस प्रकार सफाई और शुद्धता से रहने का अर्थ किसी से घृणा करना नहीं है, किन्तु इस प्रकार समाज के सभी वर्ग को रहने का यथाशक्ति प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार भारतीय समाज व्यवस्था के स्वरूप के प्रसंग में मालवीयजी एक ओर परम्पराओं के सन्दर्भ में सतत गतिशील रूप से पूजा-पाठ, रहन-सहन, वेष-भूषा, खान-पान आदि शास्त्रीय शाश्वत मान्यताओं के प्रति परम्परावादी हैं तो दूसरी ओर पुनर्जागरणकाल के सुधारवादी राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, थी माण्डलिक तथा गाधीजी की भाँति कोई भी नवीन परिवर्तन विषयक सामाजिक कार्य करने के पूर्व उस कार्य को सम्मेलन आयोजित करके, शास्त्रसम्मत प्रमाणित करने के पश्चात् सुधार और पुनर्जागरण के क्षेत्र में गतिशील होते हैं। अतः इससे यह प्रमाणित होता है कि महामना मालवीय 'मूल' शास्त्रीय मान्यताओं के विषय में व्यक्तिश: परम्परावादी होते हुए भी सामाजिक क्षेत्र में प्रगतिशील विचार रखते थे। मालवीयजी की यह प्रमुख विशेषता थी कि वह अपने प्रगतिशील और परिवर्तनवादी कार्यों के पक्ष के लोगों तथा परिवर्तन के विपक्ष या विरोधियों को तर्कों के आधार पर समन्वित रूप से ले चलने का प्रयास करते थे। हरिजन मन्दिर प्रवेश तथा उनके लिए कूप,बावली, स्कूल तथा सार्वजनिक स्थानों पर लगी मनाही के सम्बन्ध में वह पहले सामूहिक रूप से उक्त कार्यों का औचित्य प्रमाणित करते हैं, पुनः कार्यक्षेत्र में क्रियाशील होते हैं। उन्होंने सवर्णों से हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश करने में बाधा न देने का आग्रह करने के साथ ही हरिजनों को भी सलाह दी कि जहाँ लोग स्वेच्छया मन्दिर प्रवेश न करने दें वहाँ वे बलपूर्वक प्रवेश करने का प्रयास न करें। इस प्रकार की अन्यान्य सामाजिक एवं राजनीतिक मान्यताओं के आधार पर यह बात प्रमाणित होती है कि मालवीयजी अपने सुधारवादी प्रयासों के सन्दर्भ में सामाजिक वर्गगत द्वन्द्व के स्थान पर सामाजिक सहयोग द्वारा किये जाने वाले परिवर्तन को वरीयता देते थे। अध्ययन के मध्य यह पाया गया कि मालवीयजी के पूर्ववर्ती विचारक राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर तथा समवर्ती विचारक महात्मा गाधी आदि के विचारों की मूल मान्यता भारतीय वेदशास्त्र की मूल मान्यता को दिशा में समान थी। वर्णाश्रम धर्म, शिक्षा, सामाजिक सुधार (दहेज प्रथा), बाल-विवाह, विधवा विवाह, अछूतोद्धार आदि के क्षेत्र में मालवीयजी का कार्य प्रगतिशील और सुधारवादी रहा है।

मालवीयजी ज्ञान-विज्ञान और प्राविधिकी के क्षेत्र में भी देश का पूर्ण आधुनिकीकरण चाहते थे। वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के विकसित साधनों

से भारतीय जनता को लाभान्वित कराना चाहते थे। एक बार प्रयाग में गांधीजी मालवीयजी के यहाँ ठहरे थे। मालवीयजी के साथ गाधीजी भी घूमने निकले थे। मालवीयजी ने विद्यार्थियों के रहने के लिए एक विशाल बोर्डिंग हाउस का निर्माण कराया था। रास्ते में बिजली-पंखो से सुसज्जित उस आधुनिक विशाल भवन को देखकर, गाधीजी ने मालवीयजी से कहा—'भाई जान, इस आधुनिक बोर्डिंग हाउस का प्रयाग में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के लिए निर्माण कराकर,ग्रामीण क्षेत्रों के इन विद्यार्थियों को इस आधुनिकतम बोर्डिंग हाउस में रखकर,आप इनकी आदत खराब कर रहे हैं। इन सुविधाओं में रहने के बाद ये विद्यार्थी अपने ग्रामीण घरों में कैसे रह सकेंगे?' मालवीयजी ने कहा कि 'मैं तो इस प्रकार सारे देश की आदत खराब कर देना चाहता हूँ, ताकि आधुनिक बिजली-पखों का अभाव-बोध करने के बाद, भारतीय जनता इन आधुनिक साधनो को जुटाने की ओर सक्रिय हो।' इस प्रकार मालवीयजी देश के आधुनिकीकरण का विचार रखते थे। उनका विश्वास था कि परिवर्तन नयी पीढ़ी द्वारा ही सम्भव है। अतः वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के सम्पूर्ण देश में प्रसारण के लिए नयी पीढ़ी में आधुनिकता और आधुनिक साधनों के प्रति चेतना पैदा करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।

उक्त प्राविधिक आधुनिकीकरण के अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्रों में भी मालवीयजी ने भारतीय समाज के इस तथ्य को समझा था कि भारतीय समाज-व्यवस्था के प्रति देश का बहुत बड़ा वर्ग निष्ठावान् है। इस सम्बन्ध में एक वर्ग जो प्रतिष्ठावाले साधनों और अधिकारों से सम्पन्न होता है, और दूसरा वह वर्ग जो इन अधिकारों से वंचित रहता है, सामाजिक स्तरीकरण में निहित भिन्नता, तनाव तथा सम्भाव्य विशृंखलता के नवीन कारणों को जन्म देता है। इस प्रकार प्रमुख नवोद्भूत भावनाओं के लिए सुविधा की स्थिति का उपयोग करने से तनाव अधिक बढ़ जाता है। मालवीयजी की परिवर्तनवादी नीति की यह विशेषता रही है कि वह सामाजिक कुरीतियों एवं परम्पराओं से सम्बन्धित कोई भी सामाजिक कार्य करने के पूर्व उसका शास्त्रसम्मत स्वरूप सार्वजनिक रूप से प्रतिपादित कर लेते थे। उसका परिणाम यह होता था कि अधिकार-सम्पन्न वर्ग के बहुसंख्यक लोग सार्वजनिक मंच पर उनकी बातों से सहमत हो जाते थे, जिससे मालवीयजी अपने कार्यक्रम को निर्बाध रूप से सफलतापूर्वक कार्यान्वित करते थे। इन बातों के अवगाहन से उनके सुधारवादी परिवर्तनोन्मुख तथा प्रगतिशील विचारधारा की सहज रूप में सम्पुष्टि होती है, जिसके आधार पर पुनर्जागरण और परिवर्तन के सन्दर्भ में उनके सामाजिक विचारो के इस अध्ययन की सार्थकता प्रतिपादित होती है।

—: ० :—



BIBLIOGRAPHY

'Abhyuday', Hindi Journal, Prayag, U.P., 1909.

'Adhunik Bharat Ke Nirmata Pt. Madan Mohan Malviya' (ed.) Govt. of India, Delhi, 1970.

Agrawal, B.R. 'In a Mobile Community in a Symposium Caste and Joint Family', Sociological Bulletin, Vol. IV, No.2, September 1955.

Allport, G.W. 'Personality' : A Psychological Interpretation, Inc. 1937

Altekar, A.S., 'The Position of Women in Hindu Civilization,' *The Cultural Publication, B.H.U., 1939.*

Atal, Yogesh. 'Conceptual Framework for Analysis of Caste' Sociological Bulletin, Vol. XVI, No. 2, September 1967.

'Autobiography of Sri C. Sankaran Nair', Madras 1966.

Bendix, R., Lipoel, S.M., 'Karl Marx', Theory of Social Class in Status and Power, Glencoe, 1953.

'Bharatiya Samaj Vijnan Samiksa', Department of Sociology, Banaras Hindu University, Varanasi.

Bose, Subhas *Chandra. (1920-1942). 'The Indian Struggle'*, Bombay, 1964.

Brameld. Theodore, 'Education As Power', Inc. 67, New York.

Chakrawarti, D., and Bhattacharya, C., : 'Congress In Evolution', A Collection of Congress Resolutions from 1885-1934, Calcutta.

Chanda, Tara. 'History of the Freedom Moveme[illegible] *Vol. I & II, New Delhi, 1967.*

Chaturvedi,Sita Ram. 'Mahamana Pt.Madan Mohan Malviya', Varanasi, Samvat 1993 Vikram.

Chaudhari, Ram Narain. Ahmedabad, 1948.

Chaudhari, Ram Narain, Gandhi, Mahatma' M.K., (Hindi) Ahmedabad 1948.

Chinta Mani, C.Y., 'Indian Political, Science', Delhi, 1940.

Collection : 'Thoughts of Mahamana Malviya' 'Sanatan Dharma', Year 3, Issue 13, 20th October, 1935.

Conference-Speech, Hindu Mahasabha, Organized in the Campus of the All India Congress, 31st December, 1922. and Magh Krishna 30, Samvat, 1980.

Convocation Speeches of Mahamana Pt. Madan Mohan Malaviya, Banaras Hindu University,Varanasi,1929-30.

Cross, C.M.P.'The Development of Self Government in India', 1856-1914, Chicago, 1922.

Crow, L.C & Crow A., 'Introduction to Education',New York, 1964.

Dar, S.L. and Somoskandan,S., 'History of the Banaras Hindu University', B.H.U., 1966.

Das, M.N., 'India Under Morley and Minto', London, 1964.

Debates : Legislative Assembly, Vol. 5, 1927.

Desai, A.R., 'Social Background of Indian Nationalism', Bombay, 1956.

Davis, Kingley, 'Human Society', New York, 1969.

Dube, S C., 'Indian Sociology At the Turning Point' (Presidential Address; All India Sociological Conference) Chandigarh, 1976.

'Modernization and its Adaptive Demand on Indian Society', National Council of Educational Research and Training, New Delhi, 1967.

Dwivedi, Dr. K.D., 'Ananda Varta', Issue 4, Varanasi 1978.
Social Psychology, Hindi Sansthan, Lucknow 1978.
'Industrial and Vocational Psychology', Hindi Sansthan, Lucknow 1974.

Eisenstadt, S.N., Modernization : Protest and Change Prentice-Hall of India Pvt., Ltd. New Delhi 1969.

'*Encyclopaedia of Social Sciences*', *Vol. XIII, The Macmillan* Company, U.S.A., 1934.

Feuer, S.Levis, (ed).'Basic Writing on Politics and Philosophy' : Karl Marx, New York 1959.

Gandhi, M.K., The Collective Works of Mahatma Gandhi, Vol. 30, New Delhi, 1968.
Young India, 1924-26, 1927-28.

Gautam Grih Sutra, (Dharm Shastra)

Ghurye, G.S., 'Caste and Class in India', Popular Book Depot, Bombay 1947.

Gomil Grih Sutra, (Dharm Shastra)

Gwyer, Maurice and Appadorai, A., 'Camp, Speeches and Documents on the Indian Constitution' 1921-1947, Vol. I & II, London 1957.

Hindustan Review, December 1946.

Hiranya Keshi, Grih Sutra (Dharm Shastra)

Hulyackar, S.G., 'Outlines of Social Psychology', 1954

India, Legislative Assembly, Debates 1912-1930

India, Proceedings of the Legislative Council of the Governer General, Calcutta, 1862-1920.

Indian National Congress (Reports), Vol. 56, 1917, Vol. 50, 1912, Vol. 54, 1916.

Jha, Manoranjan., Role of Central Legislature in the Freedom Struggle, *New Delhi 1971.*

Johnson Harry,M., 'Social, Sociology : A Systematic Introduction', India, Bombay, 1966.

Joshi, V.C., 'Lala Lajpat Rai, : Writing and Speeches', Vol. 2, Delhi, 1966.

Khan Ahmad, 'Sir Saiyad Ki Takareer' 1887.

Kunzru, H.N., Shastri,K.A. Nilakantha, eds. A Great Liberal : Speeches and Writings of Sir P.S. Shivaswami Aiyar, Bombay 1965.

Lal, Mukut Bihari., 'Mahamana Madan Mohan Malviya : Jeevan aur Netritva', B.H.U., Varanasi 1978.

Lapier, R T. and Franswerth, P.R., 'Social Psychology', New York, 1946.

Leader (Newspaper) Allahabad 1934.

Lerner,D , 'The Passing of Traditional Society,' Glencoe, 1958.

Lerner Daniel, 'Communication System and Social System Behavioural' Sciences, Vol. 2, No. 4, October 1957.

MacIver and Page., 'Society : A Text Book of Sociology', New York, 1937.

Mahamana Malviya Jee, Kashi, Samvat 2005.

Malviyaji Birth Commemoration 1961, Vol. I

Malviyaji Ke Lekh Aur Bhashan, (Dharmik) Part I, Varanasi, 1961.

Malviya, P.K , 'Malviyaji : Jeevan Jhalkiya',

Manusmriti (Dharm Shastra)

Maslow,A.M.,'Self-actualizing People : A Study of Psychological Health, Personality Symposium', No. 1, New York 1950.

Mehrotra, S.R., 'The Emergence of Indian National Congress', Delhi, 1917.

Menon, V P., 'Transfer of Power in India', New Delhi 1968.

Merton, R , 'Socal Theory and Social Structure', Macmillan, New York 1949.

Mitakshara (Dharma Shastra).

Montagu, Edwin S., 'An Indian Diary', London 1930.

Mukherjee, S.N , 'Education in India, To-day and Tomorrow' 1964.

Murphy, G., 'Personality : A Bio-Social Approach to Origins and Structure', New York, 1947.

Nehru Jawahar Lal, An Autobiography, New Delhi 1962.

News Papers 'Aj' 1946., 'Indian Peoples' 1903, 'Leader' 1909.

Pandey, R., India's Youth at the Crossroads, Varanasi 1974.

'Pandit Madan Mohan Malviya : Creator of Modern India', Publication Division, Govt. of India, New Delhi 1977.

Panikkar, K.M., and Persad, A., (ed.), 'The Voice of Freedom Selected Speeches Pt Motilal Nehru', Bombay 1961.

Prabhu, P.N., 'Hindu Social Organization', Popular Book Depot, Bombay 1954.

'Prayana', Diamond Jubilee (Special Issue of B.H.U. Journal) 1976-77.

'Presidentias Address of All India Congress', Calcutta 1932.

Proceedingl : Council of Governor General (Legislative, Vol.49, 1910., Vol. 52, 1914, Vol 54, 1916, Vol. 49, 1911, Vol. 59, 1911, Vol. 56, 1918, Vol. 53, 1915, Vol. 58, 1918, Vol 52, 1914,Vol. 49, 1910,Vol. 57, 1918, Vol, 55,1916.

Radhakrishnan, 'Hindu Dharma Aur Samaj', Delhi.

Sitaramayya, B., Pattabhi 'Gandhi and Gandhism' (Hindi), Agra 1959.

Report of Agricultural Commission Vol. 7, 1927.

Report of Educational Commission 1964-1966.

Sampurnananda, 'Parampara Aur Adhunikata', Gyan Mandal Ltd., Varanasi 1962.

Saran Parmatma, 'The Impirical Legislative Council of India', New Delhi 1961.

Scott John Paul and Scott,Sarah, F , Social Control and Social Change, Chicago and London 1971.

Sharma, K., 'Bhartiy Samaj aur Samskriti', Kishore Publishing . House, Kanpur 1962.

Shastri, Raja Ram, 'Samaj Vijnan', Publication Division,Govt. of India 1962.

Singh, Yogendra, 'Modernization of Indian Tradition' (A Systematic Study of Social Change), Delhi, 1973.

Sitaramayya, B. Pattabhi, 'History of the Indian National Congress', Vol. II, Bombay 1946.

Sorokin, Pitirim, A., 'Social Cultural Mobility', Illinios, 1968.

Speeches : III All India National Congress, in 1887.

Speeches of Pt. Madan Mohan Malviya, Delhi,Lahour,Punjab, Kanpur, Prayag, Calcutta, Bombay, Lucknow, Madras, Ahmedabad and Varanasi,—Mahamana Pt. Madan Mohan Malviya (ed.) Sita Ram Chaturvedi, Op. cit.

Srinivas, M.N., 'Social Change in Modern India', Bombay 1972.

Tandon,P., Mahamana Malviyji : Birth Centenary Commemoration, Vol. 1961.

Tharpe, L.P., Schimuller, A.M., 'Personality an Inter-disciplinary Approach', New Delhi 1965.

'The Honourable Pt. Madan Mohan Malviya : Life and Speeches, 2nd edition, Madras 1918.

Tripathi, Ram Naresh, 'Malviyaji Ke Sath Tees Din' 1946, Malviyaji Jewan Aur Netritva, B.H.U. 1978.

Tylor, E.B., 'Primitive Culture', Chapter 11, 18, London, 1930.

Uttisthat Jagrat (Swami Viveka Nanda Ka Sandesh), Varanasi 1950.

Vasudeo Sharan, 'Mahamana Shri Pt. Madan Mohan Malviya Ke Lekh Aur Bhasan', Varanasi 1961.

Vasudeva, P., 'Social Change An Analysis of Attitudes and Personality' New Delhi 1976.

Vrihat Sanhita 34-19.

Vyas, Braj Mohan, 'Mahamana Malviyaji', Allahabad 1951.

Weber, M., 'Class Status and Poverty in Class Status and Power', Glencoe 1953.

Young K., A Hand Book of Social Psychology, London 1952.

—: o :—

डा० कृष्णदत्त द्विवेदी (जन्म संवत् १९९५ वि०, मीरजापुर, उ० प्र०) ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा प्राप्त की। सम्प्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समाजविज्ञान विभाग में सम्पादन के साथ अध्यापन, सेवारत विभाग द्वारा प्रकाशित "भारतीय समाज विज्ञान समीक्षा" (हिन्दी शोध पत्रिका) तथा सामाजिक विज्ञान संकाय द्वारा प्रकाशित SOCIAL SCIENCE REVIEW (english) पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक। औद्योगिक एवं व्यावसायिक मनोविज्ञान, (उ० प्र० राजकीय सरकार द्वारा शिक्षा के उत्कृष्टतम पुरस्कार प्राप्त) "समाज मनोविज्ञान", समाज मनोविज्ञान की रूप-रेखा आदि आपकी अन्य कृतियाँ हैं। समय-समय पर देश की पत्र-पत्रिकाओं में शोध-निबन्ध, तथा समालोचनात्मक निबन्ध प्रकाशित होते रहते हैं।